पीड़ाओं की प्रतिध्वनियाँ

प्रफुल्ल सिंह "बेचैन कलम"

BOOK RIVERS
WE CREATE READERS

पीड़ाओं की प्रतिध्वनियाँ

©लेखक के अधीन

लेखक नाम– प्रफुल्ल सिंह ''बेचैन कलम''

प्रकाशक

बुक रिवर्स प्रकाशन

प्रकाशन वर्ष	:	**2021**
प्रकाशक ईमेल	:	**publish@bookrivers.com**
वेबसाइट	:	**www.bookrivers.com**
पृष्ठ संख्या	:	**170**
मूल्य	:	**220**
ISBN	:	**978-93-5515-091-2**

नोट :– सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। यह पुस्तक इस शर्त पर विक्रय की जा रही है कि लेखक की पूर्वानुमति के बिना इसे व्यावसायिक अथवा अन्य किसी भी रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता।

कुछ शब्द

मैंने अपने जीवन में ऐसी किसी महामारी या आपदा के बारे में नहीं सुना जिसके ताप से लगभग पूरा विश्व झुलस उठा हो। हमारे पूर्वजों ने भीषण महामारियाँ देखीं। हमने उनकी कहानियाँ सुनीं। उन महामारियों में स्पेनिश फ्लू सबसे संहारक रही। कोरोना या कोविड 19 एक विचित्र महामारी के रूप में सामने आई जिसने प्रकृति और उसकी आंतरिक सहज गति, लय को लांघ कर अपनी अदम्य महत्वाकांक्षा से विश्व को हांकने वाले मनुष्यों को नाथ कर रख दिया। इस महामारी की मारक क्षमता से कहीं बड़ी तो इसकी यंत्रणा थी। पाशबद्ध जीवन की हताशा, सामूहिक गृहकैद की छटपटाहट, डर और अनिश्चितता ने दुनिया की विशाल जनसंख्या को झकझोर कर रख दिया। इसके आर्थिक झटके तो लंबे समय तक अनुभव होते ही रहेंगे। यह आपदा भारत के मुकाबले पश्चिमी देशों पर अधिक आई। एक विशाल जनसंख्या वाला देश भारत, जैसे कोई दैवीय कृपा से इसका दंश झेल कर उठ खड़ा हुआ और संपूर्ण मानव सभ्यता के लिए उदाहरण बना। तथापि भारत ने मृत्यु , भय और अवसाद के अत्यंत लंबे दिन भोगे। कोविड ने परोक्ष रूप से मुझे स्वजनहीन किया। वह कोरोना के कारण कोरोनाजन्य परिस्थितियों से विवश हो हार गए। अपनों को अपनी आँखों के सामने से जाते हुए देखना एक टीसती स्मृति है। यह पुस्तक कोरोना काल की यंत्रणाओं, मानवीय दुखों उसके असहाय, अशक्त अनुभव करने के विकराल क्षणों को शब्दों में उतारने का छोटा सा प्रयास है। इसका भूगोल सीमित है , भावभूमि बड़ी है। यह एक व्यक्ति की दृष्टि है, जो भारत में वर्ष 2020 में कोरोना के प्रारंभिक दिनों को हव्वा या मीडिया का शोर मानता है, धीरे–धीरे स्वयं उसकी लपटों से घिरता चला जाता है और अंततः भयमुक्त हो जाता है। किन्तु विडम्बना यह कि भय और त्रास के कठिनतर दिन एक बार फिर लौट आते हैं। यह भी मनुष्य की अक्खड़ जिजीविषा का ही प्रमाण है कि वह स्वयं को भय और त्रास से एक दिन अचानक ही विलगा लेता है क्योंकि मृत्यु से कहीं अधिक भयास्पद, त्रासद और कठोर है जीवन की स्वतंत्रता का छिन जाना। मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल रहा, इसका निर्णय पाठक करेंगे। किन्तु यह कथा सत्य की नींव पर खड़ी हुई है। केवल पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं।

हाँ, कल्पनाओं के कुछ कक्ष, बरामदे और गलियारे इसमें अनिवार्य रूप से हैं।

इति ....

एक

दरवाजा बंद कर ड्राइंग रुम में वापस मुड़ा ही था माधव.....कि सामने पड़े अखबार पर उसकी नज़र ठहर गई। हेडलाइन थी; कोरोना से भारत में पहली मौत.....। एक पल के लिए उसे लगा जैसे कोई आहट हुई हो। दूर द्रिम–द्रिम कर बजता एक रहस्यमय स्वर! जो अचानक तेज़ होकर पास सुनाई देने लगता है। खबर उसके मन में हलचल मचा गई। उसने अखबार उठा लिया। कुछ व्यग्र होकर पढ़ने लगा। कर्नाटक के कलबुर्गी में छिहत्तर साल के एक व्यक्ति की मौत हुई थी। देश भर में पचहत्तर मामले सामने आए, ऐसा अखबार पुष्ट कर रहा था। दिल्ली में कोराना के छह मरीज थे। यह बारह मार्च 2020 का समाचार था।

माधव ने रिपोर्ट पढ़ने के बाद लंबी सांस ली। जिस व्यग्रता से वह समाचार पत्र पर झुका था, उतनी ही सहजता से उठ गया। इतने बड़े देश में पचहत्तर मामले.....क्या है, कुछ नहीं! दिल्ली में डेंगू के ही हजारों–हजार मरीज हर साल आते हैं! न जाने कितनों की मौत हो जाती है! सामान्य फ्लू... ....मलेरिया.....चिकनगुनिया.....और न जाने कौन–कौन सी बीमारियाँ तो लोगों को घेरती ही रहती हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए उसने अखबार को दुबारा जरा उपहासात्मक दृष्टि से देखा। सनसनी फैलाने में सिकंदर हैं ये लोग.....! खबर को यूँ तैयार करते हैं जैसे ब्यूटी कॉन्टेस्ट में लड़कियों को तैयार किया जाता है! अभी कोरोना दुनिया के कई देशों में कोहराम मचा रहा तो भारत को भला उससे अलग कैसे रखा जाये! दिखाओ.. .....बढ़–चढ़ कर.....दुख और भय का बाजार तो यहाँ खूब लगता है।

अखबार उठा कर उसने मेज के नीचे रख दिया। साढ़े दस बजे उसे एक जरूरी मीटिंग में होना था। वह नहाने के लिए जा ही रहा था कि विजया ने टोका.....

''बहुत गौर से पढ़ रहे थे....क्या बात है?''

''कोरोना.....!''

''क्या मतलब?''

''कर्नाटक में कोरोना से एक मरीज की मौत हो गई है। भारत में पहली मौत है, वही खबर थी। इस देश में न जाने कितनी मौतें एक दिन में होती हैं। अखबार उनके बारे में छापते हैं क्या? अभी पूरी दुनिया में

फल–फूल रहे डर के इस व्यापार में कूद पड़े हैं। भारत में कोविड का पहला शिकार है और ये ऐसे लिख रहे जैसे सीमा पर पाकिस्तान से जंग छिड़ गई हो.....हद है!''

''हम्म....कितनी मरीज़ हैं अभी हमारे देश में?''

''मुश्किल से पचहत्तर। जिस पर मीडिया वालों का पागलपन है। सोचो, एक सौ तीस करोड़ की आबादी में पचहत्तर संक्रमण! एक मौत और अखबार की सबसे पहली, प्रमुख खबर।''

विजया चुप रह गई। माधव भिनभिनाता हुआ बाथरूम में घुस गया। नहा धोकर वह बाहर आया। पत्नी ने इशारों में नाश्ता करने को कहा। वह चुपचाप बैठकर पराठे खाने लगा। खाते हुए उसने अपने मोबाइल फोन में समय देखा। पौने दस बजने वाले थे। अच्छा.....पौने दस हो गए! देर होने का समय यहाँ से शुरू हो चुका था। जैसे घड़ी देखते हुए आदमी चुपचाप टिक–टिक करता हुआ तौलता है कि अच्छा यहाँ से वहाँ तक जाने में और गंतव्य पर पहुँचने में इतना तो वक्त लग ही सकता है! मेट्रो में तकरीबन पच्चीस मिनट की यात्रा के अलावा स्टेशन पहुँचने और उतर कर प्रकाशक के दफ्तर तक जाने का समय भी शामिल कर लिया जाये तो चालीस मिनट लगने ही थे। उसने आखिरी कौर मुँह में ठूँस कर हाथ धोया। फटाफट जूते पहने। बाल यहाँ–वहाँ से बिखरे–बिखरे उड़ रहे थे। उन्हें वैसा ही छोड़कर वह दनदनाता हुआ सीढ़ियाँ उतरने लगा।

अपार्टमेंट के बाहर अपनी धुन में चले जा रहे एक ई–रिक्शा वाले को उसने आवाज दी। वह कुछ आगे बढ़ चुका था। माधव की आवाज सुनकर पीछे पलटा। रिक्शा घुमाकर उसकी ओर आने लगा। उसके तीन पहियों में से एक पहिया ज़रा डोल–डोल कर घूम रहा था। पास आते हुए उसने सुना; उस पहिए से टक्क–टक्क की आवाज आ रही थी। रिक्शा पर बैठते हुए उसे खीज हुई, जैसे वह अपनी अवस्था के एकांत और उसकी लयात्मकता से कोई छेड़छाड़ नहीं चाहता हो लेकिन अनावश्यक छेड़छाड़ हो रही हो वह चुपचाप उसे सुनने को बाध्य हो। उसे छोड़कर किसी और रिक्शे पर सवार होने का समय नहीं था। स्टेशन के पास उतरते हुए उसने रिक्शा वाले को दस का नोट थमा कर कहा; भाई.....इसे ठीक करवा लो.....स्पीड़ ब्रेकर पर जब तुम उछालते हो तो पीठ में दुगनी चोट लगती है! रिक्शाचालक ने कुछ अनमने ढंग से उसे देखा। मानों कह रहा हो.... हमें तो नहीं लगती पीठ में चोट, दिन भर चलाते हैं इसे! वहाँ से दोनों अपने–अपने रास्ते चले।

रिक्शावाला सीढ़ी से उतर रहे लोगों में संभावित सवारी खोजता हुआ अपना तिपहिया घुमा रहा था। माधव प्लेटफार्म की ओर आगे बढ़ रहा था।

पहले तल पर बीस–पच्चीस लोग अलग–अलग जगहों पर बिखरे हुए थे। कुछ प्लेटफार्म के अंत में खड़े थे। कुछ बीच में यहाँ–वहाँ चहलकदमी कर रहे थे। सबके अपने–अपने ठौर ठिकाने, अपने गंतव्य स्थल, अपनी मंजिलें.....अपने कामकाज। एक संसार के भीतर कितने अलग–अलग, असीम संसार का मानचित्र था! प्लेटफार्म के ऊपर बिजली के तार पर पास–पास बैठे कबूतर कभी बाएँ तो कभी दाएँ ताकते। सूचना पट दिखला रहा था कि द्वारका के लिए जाने वाली मेट्रो दो मिनट में आने वाली है। माधव ने अंदाजा लगाया कि ट्रेन अशोक नगर पहुँच गई होगी। यानी, ठीक एक स्टेशन पीछे है अभी। इस वक्त अमूमन भीड़ होती है। यह दफ्तर और कामकाज से जाने वालों का समय होता है।

मेट्रो का दरवाज़ा खुला तो पीछे से पीठ में धक्का देती एक अंगुली उसे भीतर तक ठेल गई। उसने कुछ झल्लाहट से पलट कर देखा। जिसने उसे ठेला था.....वह निर्विकार भाव से खड़ा था। पूर्णतः अनभिज्ञ! जैसे उसने कुछ किया ही न हो। यह तो हर दिन का किस्सा है। कई बार तो इतनी भीड़ होती कि आदमी आदमियों के रेले से धक्का दिये जाते हुए खुद–ब–खुद भीतर दाखिल हो जाता है। भीतर मुँड से मुँड.....साँस से साँस टकराती। कोई पीठ पर बैग टाँग खड़ा हो गया तो और आफ़त। आज टिकने की जगह थी। उसने डिब्बे के बीच में बने पाए पर पीठ अड़ा दी। ऊपर हैंडरेस्ट में अपनी हथेलियाँ फँसा कर बाहर झाँकने लगा।

इधर–उधर नज़रें दौड़ाते हुए माधव ने देखा कि कुछ लोग चेहरे पर मास्क लगाए हुए हैं। उसे लगा आज मास्क लगाकर चलने वालों की संख्या कल या बीते दिनों के मुकाबले ज्यादा है। वह खुद नहीं समझ पा रहा था कि मास्क लगाए लोग दिल्ली की आबोहवा में हमेशा के लिए घुल चुके जहर से खुद को बचाए रखने के लिए ऐसा कर रहे हैं या चीनी वायरस ने उन्हें भी डरा दिया है। उसने ध्यान से भीड़ को देखना शुरू किया। डिब्बे में नौ लोग मास्क पहने मौजूद थे। वह लगभग आश्वस्त हो चुका था कि डर पसरने लगा है। वैसे भी मेट्रो के भीतर प्रदूषण नहीं होता। तभी अचानक सीट पर बैठे दो लोगों को आपस में बात करते हुए सुना उसने–''अब तो इधर भी फैलने लगी बीमारी.....!''

''हाँ.....''

''दिल्ली में ही आठ–दस मरीज मिल चुके हैं।''

''आठ–दस तो सरकार बता रही है....पता नहीं कित्ते होंगे। पचास के पार ही होगा आँकड़ा..... ।''

''देख लेना, आने वाले दिनों में क्या गत होती है देश की! यहाँ फैल गई बीमारी तो.....!!

''फैल गई क्या? फैल रही है। फैल जाएगी। हर देश में ऐसे ही फैली है। यहाँ तो असली खेल अब शुरू होगा।'' इसके बाद शांति छा गई।

माधव सोचने लगा–अच्छा.....सरकार जो कहती है वह सच नहीं होता! या ऐसी स्थिति में सरकारी आँकड़े या दावे हमेशा झूठ होते हैं! उसके चेहरे पर हल्की सी व्यंग्यात्मक मुस्कान दौड़ गई। मुस्कान की दो वजहें थीं। एक तो यह कि सरकार की बातों को लोग अक्सर शंका से सुनते हैं। दूसरा यह कि लोग.....कम से कम, कुछ लोग तो यह मान ही रहे हैं कि कोविड–19 से भारत में हालात बिगड़ने वाले हैं।

ट्रेन राजीव चौक पर धीमी हुई, फिर थम गई। धपा–धप की भागदौड़ और ठेलमठेल में आधा डिब्बा खाली हो गया और देखते ही देखते उतना ही भर भी गया। प्लेटफार्म पर उतरते हुए उसने पलट कर रेल को देखा। वह छूट चुकी थी। बहुत सारे चेहरे उसकी आँखों में उतर–उतर कर मिटे जा रहे थे। उन्हें हर पल नए चेहरे बाहर किये जा रहे थे। कुछ ही सेकेंड में रेल का पिछला डिब्बा रेंगता हुए एक सुरंग को पार कर गया। एक शांत लंबा–सा–साँप अँधेरी खोह में टेढ़ा–मेढ़ा सा बिछा दिखाई दे रहा था। कुछ बत्तियाँ यहाँ–वहाँ जल रही थीं। उसका ध्यान टूट गया। हौले से कदम बढ़ाते हुए वह एस्केलेटर की ओर चल पड़ा।

कनाट प्लेस में वासंतिक धूप खिली थी। यद्यपि इस साल सर्दी जरा लंबा खिंच गई थी तो शिशिरांत में भी शिशिर की जाती हुई–सी–सिहरन रह गई। कुछ लोग अब तक हाफ स्वेटर पहने घूम रहे थे। वह तेज़ कदमों से चलते हुए इनर सर्किल को पार कर गया। जीवन भारती बिल्डिंग के पास गुजरते हुए उसने जनपथ की दुकानों पर उड़ती हुई निगाह डाली। दो क्षण को ठहरा। क्यों ठहरा.....नहीं जानता। कई बार आदमी अनावश्यक ठहर जाता है। ठहरते हुए उसे पता नहीं चला कि वह ठहरा हुआ है। फिर चल पड़ा और पीछे की एक इमारत में घुस गया।

आज प्रकाशक से उसकी ज़रूरी बातचीत थी। पहले तल पर ही छोटा सा दफ्तर था। दो छोटे–छोटे कमरे। एक कहने को रिसेप्शन जैसा.....दूसरा

कामकाज का। जहाँ प्रकाशक और तीन–चार सहायक लोग बैठते थे, वहाँ घुअन थी। यूँ तो दोनों कमरे साफ–सुथरे थे पर धूप और प्राकृतिक हवाओं से दूर उन कमरों में बासी गंध थी। एक ऐसी गंध जो आम सहन की हवा से अलग होती है, उस गंध में दफ्तर का नीरस, बुझा–बुझा सा आलोक होता है। उसने रिसेप्शन पर बैठी महिला से कहा–''अशोक जी से कह दीजिए कि माधव आया है।''

''अच्छा।''

तब तक प्रकाशक ने उसे देख लिया। उसने वहीं से आवाज़ लगाई–''अरे माधव जी, यहाँ आ जाइये।''

माधव फीकी–सी मुस्कुराहट लिए दूसरे कमरे में दाखिल हुआ। कुछ देर तक चुप्पी छाई रही। फिर उसने एक सिलसिला सा शुरू करते हुए पूछा–

''अभी अगर पांडुलिपि सौंप दूँ तो कितना समय लगेगा?''

''करीब पैंतालीस दिन तो लग ही जाएँगे।''

''अच्छा.....इससे पहले नहीं हो सकता?''

''नहीं, थोड़ा पिछला काम पड़ा है। उसे निबटाना होगा। कोशिश करूँगा कि महीना भर में ही प्रेस में पहुँस जाए। एक बार पांडुलिपी प्रेस में चली गई तो मुश्किल से सप्ताह भर लगेंगे।''

''लेकिन एक चिंता है.....माधव जी।''

माधव कुछ व्यग्र हो उठा। ''चिंता.....किस बात की?''

''कोरोना सिर उठा रहा है। आज ही मैं पढ़ रहा था कि सरकार के ऊपर लॉकडाउन का दबाव है।''

''लॉकडाउन! यानी?''

''जैसे चीन और एक दो मुल्कों में सारी गतिविधियाँ बंद कर दी गई। देश में बाहर से लोगों का आना रोक दिया गया देशवासियों के बाहर जाने पर पाबंदी लग गई। कामकाजी दफ्तर सब बंद कर दिये गए। मतलब.....एक तरह की तालाबंदी हो गई।''

''अच्छा.....ऐसा?''

''अगर ऐसे हालात यहाँ हो गए तो किताब छापना बेवकूफी होगी। न कोई उसे खरीदेगा.....ना उसकी कोई कीमत रह जाएगी।''

प्रकाशक की बात सुन कर माधव की पेशानियों पर लकीरें उभर आईं। उसने यह महसूस किया कि देश में भय का माहौल बनाया जा रहा है। एक बार जब भय सब ओर व्याप जाएगा तो दूसरी व्याधियाँ सिर उठाएँगीं।

''लेकिन ऐसा करना तो बहुत बड़ी बेवकूफी होगी। भारत जैसे विकराल और संघर्षरत देश के लिए लॉकडाउन या इस तरह की बंदी बड़ी आफ़त हो सकती हैं। आप समझ सकते है, मैं क्या कह रहा हूँ... मुझे तो यह भी लगता है कि इस बीमारी का हव्वा खड़ा किया गया है। वैश्विक स्तर पर मीडिया में एक उन्माद देख रहा हूँ मैं। पता नहीं क्या होने वाला है।''

माधव ने लंबी साँस ली। ''चलिए....देखते हैं। आगे क्या होता है। शायद एक सप्ताह में तस्वीर साफ हो जाए। हम कहाँ खड़े हैं। यह पता चल ही जाएगा।''

''हाँ.....बिल्कुल। आप फिक्र ना करें। मुझे लगता है कि हम बच जाएँगे। ऐसी कोई बुरी स्थिति हमारी नहीं होने वाली। एक दो दिन इंतज़ार कर फोन पर बात कर लेंगे। हालात देखकर फैसला करेंगे।''

''ठीक है। तो, मैं निकलूँ.....?''

जी.....

माधव चुपचाप सीढ़ियाँ उतरने लगा। दड़बे जैसे कमरे से बाहर निकल कर उसने खुली हवा में साँस ली। जी में आया.....थोड़ी देर तक कनाट प्लेस में घूम ले। यूँ ही चकल्लस। मगर अगले ही पल उसने घूमने का विचार त्याग दिया। एक उद्विग्नता मानों उसे निरंतर तोड़ रही थी। वह एक क्षण कुछ विचारता, अगले ही क्षण वह विचार अर्थहीन लगने लगता। वह वापस मेट्रो स्टेशन की ओर चल पड़ा।

***

दो

तीन दिन बित चुके थे। माधव के पास प्रकाशक का फोन नहीं आया वह मायूस होने लगा। एक तरफ कोरोना के मामले बढ़ रहे थे। दूसरी ओर अपनी प्रतीक्षित पुस्तक की चिन्ता उसे घेर रही थी। कोरोना के मरीज़ों की संख्या जिस रफ्तार से बढ़ रही थी, उसे खतरनाक या चेतावनीपूर्ण तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता था किन्तु सौ..सवा सौ मरीजों के साथ ही मीडिया का शोर दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। सरकार से देश में लॉकडाउन की आवाज़ उठने लगी। लॉकडाउन यानी साधारण जीवनचर्या पर ताला। पंद्रह मार्च तक कई देशों से आने वाली यात्रियों पर रोक लगा दी गई। कई देशों के वीज़ा रद्द किये जाने लगे। विदेशी उड़ानों पर भारी असर पड़ने लगा। बंदी के बादल घिरने लगे। यह अफरातफरी की शुरुआत थी!

भय और आशंका का माहौल धीरे–धीरे अपना शिकंजा कस रहा था। हालाँकि माधव को अब भी यही लगता कि स्थिति जल्दी ही सुधर जाएगी। किसी लॉकडाउन की ज़रूरत यहाँ नहीं हो संभवतः! भारत जैसा जटिल सामाजिक, आर्थिक संरचनाओं का देश लॉकडाउन झेल सकता है.....? क्या यहाँ की विशाल मनमौजी भीड़ लॉकडाउन को स्वीकार करेगी? क्या यहाँ वह विदेशों वाला अनुशासन लागू होगा? क्या भारतीय मानस का बेलौस अंदाज उस सख्ती को स्वीकार करेगा? मगर वह देख रहा था कि सोशल मीडिया पर बहुत सारे लोग लगातार मुखर होकर तालाबंदी की मांग कर रहे है।

उस दिन अपने मित्र प्रमोद से मिलते हुए उसे थोड़ी हिचकिचाहट हुई। यह हिचकिचाहट केवल उसकी नहीं थी। उसने देखा कि प्रमोद ने भी आज अपना हाथ नहीं बढ़ाया है। हाथ मिलाना कोई तयशुदा जेस्चर नहीं था उनके मिलाप का। दोनों यूँ ही हाथ बढ़ाकर हैलो कर लिया करते थे। आज उनके हाथ बँधे रह गए। खाने का आर्डर देते हुए प्रमोद ने हंस कर

कहा.....

''माधव जी.....केसेज़ तो बढ़ रहे हैं। अब कुछ टेंशन होने लगा है। यहाँ भी चीन जैसे हालात हो जाएँगे क्या.....?

''अरे नहीं! मैं नही मानता। मुझे लगता है, हव्वा खड़ा किया जा रहा है। मीडिया यही एक काम अच्छा करता है। बल्कि यूँ समझ लीजिए कि सनसनी फैलाना, झूठ का बाजार बनाना और भय का वातावरण तैयार करना

ही उसका पेशा है। पूरे देश में सवा सौ मरीज है। और ये लॉकडाउन का हल्ला कर रहे हैं। हास्यापद है।''

वेटर ने गिलास लाकर रखा। माधव ने झिलमिलाती रोशनी में शीशे का गिलास उठाकर देखा। उसे कहीं कोई दाग़ नज़र आया। वह दाग़ नया नहीं है, शंका नई है। मीडिया की सारी रिपोर्ट्स और चेतावनियों को खारिज करते हुए भी वह संशकित तो है ही। जैसे उसके भीतर ही दो मन आपस में लड़ रहे हों। एक कोरोना के विश्वव्यापी संकट को देखकर भी भारत को इससे अछूता मान रहा, दूसरा किसी अनिष्ट की छाया को खिंचते हुए देख रहा है। जैसे गाढ़े नीले मेघों का दल क्षितिज के पास से धीमे–धीमे उठ रहा हो। वह गिलास हाथ में लिए वॉश बेसिन की ओर चल पड़ा। वेटर ने टोका.. .....

''क्या हुआ साब?''

''कुछ नहीं.....बस गिलास को धोना चाहता हूँ।''

''अरे साहब.....लाइये, मैं धो देता हूँ। वैसे धुला तो है ही। गरम पानी से धोया है।''

''नहीं.....नहीं.....आपसे कोई शिकायत नहीं। यह तो मैं अपनी तसल्ली के लिए करता हूँ। माफ़ करना भाई।''

उसने मुस्कुरा कर उसने प्रमोद को देखा। प्रमोद के चेहरे पर शरारत तैर गई।

''क्या.....माधव जी.....आप मीडिया वालों को इतनी गालियाँ देते हैं और वहीं, इस रेस्तरां में खुद गिलास धोते हैं। आप डर गए हैं। हेहेहे.....''

''साहब.....इसे सावधानी कहते हैं। साफ़ सफाई का ध्यान रखने में क्या बुरा है? यहाँ थोड़ी लापरवाही तो लोग करते ही हैं।''

''अच्छा यह बताइये कि आप तो बहुत बाहर जाते हैं। कभी नोएडा.... कभी गुड़गाँव.....कभी लखनऊ.....लोगों से मिलते हुए सावधान रहते हैं कि नहीं? किसी फिरंगी से तो नहीं मिले इन दिनों?'' माधव ने यूँ ही पूछा।

''हाँ.....मिला था ना। हमारा एक चीनी असामी है। उससे मुलाकात हुई थी पाँच छह दिनों पहले। लेकिन मास्क–वास्क पहन रखा था। हाथ भी सैनिटाइज़ कर लिया था।''

चीनी असामी से मिला था! यह सुनकर माधव का चेहरा फक्क पड़ गया। निवाला हलक में अटक गया। किसी तरह से कौर गले के नीचे उतार कर उसने सहज होने की कोशिश की।

''अरे भई.....कमाल करते हैं आप! क्यों मिलते हैं अभी चीनियों से? यह तो हद है!''

''रोज नहीं मिलता हूँ। एक सप्ताह पहले मिला। डरने की कोई बात नहीं। वह तो पिछले कई महीनों से भारत में ही है।''

माधव की उखड़ी–उखड़ी सी साँस सम पर लौट आई। अच्छा चलो, भारत में ही है! मगर चीनियों का क्या भरोसा? बड़े रहस्यमय होते हैं! छोटी–छोटी आँखों के पीछे न जाने कौन–कौन से राज़ छिपा कर रखते हैं। क्या पता झूठ बोल गया हो...!

''आप पक्के तौर पर जानते हैं कि वह यहीं था.....महीनों से?''

''क्या बात करते हैं माधव जी... वह मेरा क्लाइंट है। उससे हर सप्ताह मेरी बात होती है।''

''अच्छा.....अच्छा।''

रेस्तरां का माहौल आम दिनों के जैसा ही था। माधव ने वहाँ कुछ नकारात्मक अर्थ में असामान्य ढूँढ़ने की कोशिश की। मगर लोग खाने–पीने में मशगूल थे। कुछ लोग आदतन बहुत शोर कर रहे थे। कुछ हा.....हा....ही..... ...ही में डूबे थे। वहाँ कोविड–19 का कोई आतंक अब तक तो नहीं दिख रहा था। और बाहर तो वह निश्चय ही नहीं नज़र आ रहा। मन के भीतर किसने झाँका था!

खाना खत्म कर दोनों रेस्तरां से बाहर निकले। प्रमोद ने उसे घर छोड़ने की पेशकश की। माधव ने मना कर दिया। रेस्तरां से उसका घर ज्यादा दूर नहीं था। यूँ तो प्रमोद उसे पहले भी वहाँ से घर तक छोड़ चुका है मगर उस वक्त एक कीड़ा उसके दिमाग में शक के रेशे बुनने लगा था कि प्रमोद विदेशियों से मिलते हैं! उनकी कार में बैठना जरा खतरनाक हो सकता है! प्रमोद अपनी कार स्टार्ट कर आगे बढ़ गया। जाने से पहले उसने कहा कि अब शायद रविवार को मिलेगा...लेकिन माधव ने मन ही मन तय कर लिया कि इस मेल मुलाकात और बाहर भोजन करने से फिलहाल वह दूर रहेगा।

रेस्तरां के सामने सड़क पर खूब रोशनी थी। ठेले पर चाट–पकौड़ी और रोल बेचने वाले अपने धंधे में धँसे हुए थे। उनके आसपास साइकिल..... .मोटरसाइकिल ई–रिक्शा और कारों की कतार लगी थी। कुछ लोग वहीं बियर भी पी रहे थे। उनका वहाँ बियर पीना अब वैसा ही था जैसा वहाँ खड़े होकर रोल या चाट–पकौड़ी खाना। उस सड़क को सामने वाले मॉल का विस्तार माना जा सकता था। बल्कि मान लिया गया था! उस मॉल में केवल शराब और बियर की ही चमचमाती दुकानें थीं। तो मॉल के बाहर इन दुकानों के पास खड़े लोग मानते थे कि अगर वहाँ बैठकर पीने वाले हैं, वहाँ शराब खरीदने वालों की भीड़ है तो यहाँ भी पी जा सकती है! वह भी एक तरह का मौलिक अधिकार है!

हवा रात की सतरंगी रौनक उड़ा रही थी। वह चुपचाप चलता जा रहा था। अपार्टमेंट से सटे हुए पार्क में दूधिया लैम्प जल रहे थे। पेड़ अपनी छाया तले यहाँ–वहाँ नींद में डूबे थे। रात की परिचित सी नीरवता थी। इक्के दुक्के लोग सैर कर रहे थे। बाजारू शोर के बाद पार्क के सघन सन्नाटे ने उसे मोहित किया। वह बगीचे में जाने को मुड़ा ही था कि कुछ मनचले पियक्कड़ तेज़ आवाज में मोबाइल फोन पर गाने सुनते हुए वहाँ से बाहर निकले। उन्हें देखकर माधव का मन खिन्न हो गया। उसने वहाँ जाने का इरादा बदल लिया।

***

तीन

सुबह घर के बाहर गलियारे में पड़े अखबार को उठाते हुए उसके मन में कुछ सवाल कौंधे। न जाने.....इसे किन–किन लोगों ने छुआ होगा? क्या अखबार मँगवाना ज़रूरी है? समाचार तो टीवी, फोन पर भी देखे और पढ़े जा सकते हैं! अगर फ़ोन पर दिक्कत हो तो लैपटॉप पर देख लो! हाँ, अखबार की आदत होती है! उसके लेआउट का एक प्रशस्त आलोक होता है! लिखे को पलटने–पढ़ने की एक अजीब सी तलब होती है! उसमें रहते हुए बाहर निकल जाना आसान नहीं होता। भले ही कितने दुखद समाचार सुबह पढ़ने पड़े। लेकिन इन दिनों तो अखबार में कुछ नई खबर देखने का दौर नहीं है। अब तो अधिकांश बातें वही होतीं हैं जिन्हें बीती रात को लोग फोन पर देख चुके होते हैं। अखबारों में उनका ब्योरा थोड़ा विस्तृत ज़रूर होता है। कुछ स्क्रॉल नहीं करना होता। बस उठा लो और पढ़ो। पन्ने पलटते जाओ। तभी उसने तय किया कि अगली सुबह से अखबार बंद करा देगा। अगर इच्छा हुई तो सामने के बुक स्टॉल से खरीद लिया करेगा।

उसने पत्नी की ओर देखते हुए कहा.....सोचता हूँ, कल से अखबार बंद करा दूँ!

''क्यों.....''

''वही.....कोरोना''

''हम्म.....''

पत्नी ने कुछ विस्मय....चिन्ता से माधव को देखा। अखबार में वैसे भी उसकी दिलचस्पी नहीं थी। भूले भटके ही वह उन्हें उठाया करती। तभी माधव ने विजया के सामने दूसरा प्रस्ताव रखा, जिस पर उसका अनुमोदन अपरिहार्य था। और अखबार बंद कराने की सूचना ने जैसे उसकी पृष्ठीाूमि तैयार की थी–

''कुछ दिनों के लिए मेड को मना कर दें?

विजया के कान खड़े हो गए। दो दिन पहले तक कोरोना पर मीडिया के हाहाकार से क्षुब्ध यह आदमी आज सरेंडर करता हुआ दिख रहा है। कभी अखबार बंद करवाता है.....कभी बाइयों का आना रुकवाता है!

''बड़ी मुश्किल होगी।''

''हाँ.....वह तो है। आदत की बात है। एक बार सिर पर आ गया तो काम करना ही होगा। वैसे भी मैं तो तुम्हारे साथ खड़ा ही रहता हूँ।''

''अरे जाने दो.....मुझ पर सारा भार आ जाएगा। तुम बाहर खिसक जाओगे। मेरी कमर टूट जाएगी।''

''कमाल करती हो यार.....मैं भला कहाँ खिसक जाऊँगा.....? मैं तो घर से ही काम करता हूँ। थोड़ी देर के लिए बाहर जाना होता है। उसके पहले सारे काम मिलकर निबटा लिया करेंगे।''

''वह तो तुम अभी कहते हो। जब मुश्किल आएगी तब तुम्हारे तेवर बदल जाएँगे।''

''ऐसा नहीं होगा। हमें थोड़ी हिम्मत तो जुटानी ही होगी। तुम खुद ही विचार करो। एक दो दिन में कोई निर्णय लेना होगा। इस तरह से सबकी आवाजाही खतरनाक हो सकती है। मैं डर कर ऐसा कह रहा, ऐसी बात नहीं है। सावधानी समय की ज़रूरत है।''

उस शाम.....खाना बनाने आई शोभा को देखकर विजया ने कहा..... ''अभी तुम सभी घरों में जा रही हो....या कहीं किसी ने आने से मना किया?''

''नहीं तो दीदी, आप बेकार डर रही हैं। यहाँ कौन–सी बीमारी फैली है कि मना करेंगे?''

''ऐसे ही फैलती है बीमारी। लोग असावधान रहते हैं। उसके फैलने का कोई चिह्न तो होता नहीं। क्या पता कौन इन्फेक्शन लिए घूम रहा?''

''अब मैं क्या कहूँ। आप देख लीजिए दीदी।''

ऐसा कहते हुए शोभा के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच गईं। विजया ने उसे देखते हुए कहा; ''तुम किसी बात की फिक्र न करो। तुम्हारे पैसे हर हाल में सुरक्षित रहेंगे। तुम आओ या न आओ.....तनख्वाह तो मिलेगी ही। मुश्किल तो हमें होने वाली है। सारा काम सिर पर आ जाएगा।''

शोभा का क्लान्त मुखड़ा तनिक राहत से भर उठा। माधव जरा तनाव में आ गया। खीज तो बहुत हुई पर कहा उसने कुछ नहीं। मन ही मन सोचने लगा...इन्हें तो जब देखो तब एक ही रोना होता है! काम में बराबर का हाथ बँटाओ फिर भी खुद के लिए रोना!

रात को सोसाइटी में घूमते हुए उसने गार्ड से कह दिया कि सुबह अखबार वाले को मना कर दे। नीचे सैर करते हुए उसे यह समाचार भी

मिला कि प्रधानमंत्री ने देशवासियसों से एक दिन के जनता कर्फ्यू की अपील की है। यानी.....आदमी एक दिन के लिए खुद को घर में बंद रखेगा। शाम को लोग एक जुटता और कोरोना के विरुद्ध संघर्ष में प्रतीकात्मक रूप से थाली.....बर्तन बजाएँगे। सामूहिक रूप से शंख फूँके जाएँगे।

बीच मार्च की सुबह माधव और विजया इस बात पर सहमत हो गए कि अब कुछ दिनों के लिए बाइयों को मना करना होगा। कम से कम मार्च के महीने में सारे काम खुद करेंगे। काम का बँटवारा होगा। छोटे–मोटे कामों के लिए बच्चों को भी शामिल कर लिया जाएगा।

जनता कर्फ्यू की सुबह जब उसकी आँख खुली तो एक अनदेखा, अनभ्यस्त, अप्रत्याशित सूनापन चारों ओर छाया हुआ था। वह विहान की सहज स्वाभाविक रूप–काया नहीं थी। उसने खिड़कियों से झाँक कर देखा, मौसम खुशगवार था। ठड़ी हवा बह रही थी मगर नीचे सन्नाटा था। पास की सोसाइटी में भी कोई हलचल नहीं। ऐसा लग रहा था जैसे दहशत ने पहली बार हवाओं में दस्तक दी हो। भय की व्यापकता स्पष्ट हो चुकी थी। उसे कुछ अच्छा–सा नहीं लगा। मानों कोई कंठ को कस रहा हो। मानो.....आने वाले दिन बड़े भयंकर हों.....किसी बंदी या सख्ती की आहट हवा में घुल गई हो।

दिन धीरे–धीरे सरकने लगा। दोपहर को विचलित करने वाली चुप्पी छाई रही। एक अनुभूत निर्वाक, जो यदा–कदा बर्तनों के खड़कने से टूट जाता। पुनः अगले ही क्षण वही स्थूलकाय शांति छा जाती। शोर से उसे नफ़रत थी। वह दिल्ली में शांत वातावरण खोजता रहता मगर ऐसी किसी शांति की चाहत नहीं थी उसे! यह शब्दहीनता तो जैसे भय उगल रही थी।

शाम के पाँच बजे.....बल्कि दो तीन मिनट पहले ही बोलने का बवंडर सा उठा। पीछे से सायरन बजने लगे। शंख की ध्वनियाँ आकाश को चीरने लगीं। लोग अपनी–अपनी खिड़कियों, बालकनी में खड़े होकर बर्तन पीटने लगे। उसने भी शंख बजाया। यह सिलसिला करीब पंद्रह मिनट तक चलता रहा। ऐसा लगा जैसे देश ने पूरे दम से आत्मारूढ़ आतंक को खत्म करने का फैसला कर लिया हो। माधव ने इन दिनों में उस क्षण पहली बार कुछ सकारात्मक अनुभव किया। जैसे भारत में कोरोना का डर जल्द ही खत्म हो जाएगा। यहाँ लाख दुश्वारियाँ हैं लेकिन आबोहवा में अक्खड़ जिजीविषा है! वह इन बीमारियों.....महामारियों से सदियों से लड़ता आया है! उसे ये परास्त नहीं कर सकतीं!

चार

इक्कीस मार्च की सुबह सामान्य तो नहीं थी। लेकिन बीते दिन के जैसा रुद्ध कंठ भी नहीं था। एक चिड़िया बार–बार गुलमोहर पर बैठी चीख रही थी। लोग सैर पर निकले थे। बच्चे खेल रहे थे। फिर भी कुछ सामान्य नहीं था। कुछ खिंचा हुआ सा, तनावग्रस्त...सशंकित सा था। चिन्ता की रेखाएँ उभर आई थीं।

उस शाम को वह एक दोस्त से मिलने के लिए घर रवाना हुआ। पूर्वी दिल्ली से सटे नोएडा बार्डर के पास पहुँचने से पहले ही उसने जबरदस्त बैरिकेडिंग देखी। गाड़ियाँ रेंग रही थीं। इक्के–दुक्के वाहनचालक तो चले जा रहे थे, मगर अधिकांश लोग वहाँ से लौटने को मजबूर किये जा रहे थे। पुलिस उन्हें वापस भेज रही थी। बैरिकेड्स के पास पहुँच कर भीति ने उसे घेर लिया। एक अजीब सी घबराहट! एक पुलिस वाले ने, जिसके चेहरे पर मास्क चढ़ा हुआ था, झुक कर पूछा.....कहाँ जाओगे?

माधव ने फौरन यू टर्न लेने का इशारा किया। उसकी गाड़ी हौले से मुड़ गई। लौटते हुए उसने सड़क पर सूनापन देखा। राष्ट्रीय अवकाश वाले दिनों को छोड़कर इस समय गाड़ियों का काफिला वहाँ से गुजरता था। आज इक्के–दुक्के वाहन चले जा रहे थे। सामने दिल्ली–नोएडा एक्सप्रेस वे पर निस्तब्धता छाई हुई थी। बस बत्तियाँ झिलमिल कर रही थीं। मूक हवा पर शहर की रोशनी का रोता हुआ क्लान्त सुर! उसका मन बैठ गया कार का एक्सलरेटर दबाते हुए उसने रफ्तार बढ़ाई। घर के पास भी चुप्पी थी। सड़क पर ठेले.....रेहड़ी पटरी वाले, जो इस समय तक अपने व्यापार का यौवन भोग रहे होते थे, आज नदारद थे। वहाँ खाने–पीने के उन ठेलों, पटरियों के साथ कतार में खड़ी होने वाली गाड़ियाँ भी गुम हो चुकी थीं।

बाईस मार्च को प्रधानमंत्री का संदेश आने वाला था। उस दिन की शुरुआत भी बीते दो दिनों की तरह हुई। वही थकी–हारी, चुपचुप, उखड़ी–उखड़ी सी सुबह। निर्जन परिसर। उस चुप्पी को कभी–कभार कोई खटका तोड़ जाता। पूरा दिन पहाड़ की तरह बीता। हौले से सूरज क्षितिज के पार उतर गया। सूरज को डूबते उसने नहीं देखा। अनायास ही सांध्य रेखा विस्तृत हो गई। रात के आठ बजे प्रधानमंत्री ने अत्यंत गंभीरता से देशवासियों को सरकारी फैसला सुनाते हुए कहा कि उस रात के बारह बजे से भारत लॉकडाउन में जा रहा है। यानी हर तरह की गतिविधियाँ बंद होने वाली हैं। रेलवे स्टेशन, हवाईअड्डे, दफ्तर, फैक्टरियाँ, स्कूल, कॉलेज,

सिनेमाघर, मॉल, बाजार सब बंद रहेंगे। सिर्फ जरूरी सामानों की दुकाने खुलेंगी। वहाँ भी वहीं लोग जाएँगे जिन्हें परमावश्यक वस्तुएँ खरीदनी होंगी। संदेश सुनकर उसका मन बैठ गया। आशंकाएँ प्रबल हो गईं। तीन सप्ताह की यह बंदी बहुत भारी होने वाली है। माधव के देखे.......जिये जीवन में ऐसी कोई स्थिति नहीं आई थी। महामारी फैलने की कहानियाँ खूब सुनी थी उसने। मगर देश की चाल पर अब तक ताला नहीं पड़ा था।

तेईस मार्च से उसकी ज़िन्दगी एकदम बदल गई। उस रोज़ वह कहीं बाहर नहीं गया। शाम को बड़ी तेज़ छटपटाहट हुई। उसके मन में ख्याल आया कि सोसाइटी में ही नीचे जाकर थोड़ी सैर कर ले लेकिन खिड़की से झाँकते हुए उसने देखा कि वहाँ निर्जन सन्नाटा छाया है। न तो बच्चे खेल रहे, ना ही बूढ़े सैर कर रहे। जवाँ लोग भी नदारद। भला ऐसा क्या हो गया.. .! ऐसी कौन–सी आफ़त आ गई कि लोग अपने–अपने घरों में दुबक गए! यह तो सिलसिलेवार तरीके से भय का वातावरण बनाना है! क्या कोरोना का वायरस हवा में उड़ रहा है? इतने बड़े शहर में बीस–पच्चीस मरीज़ हैं और पूरा शहर ठिठक कर अपने में सिमट गया है!

तीन–चार दिन ऐसे ही बीते। सुबह का संन्यास.....दोपहर की विरक्ति और साँझ की उदासी। मुक्ति कहीं नहीं थी। बोझिल साँस और हताश मन लिए वह खिड़कियों से बाहर झाँकता, हर बार एक तिक्तता..........उसे घेर लेती। सुबह उठता तो अनमना सा आलोक लिए सूरज दिख पड़ता। मानों जबरन किसी ने उगने को भेज दिया हो। देखते ही देखते और घर के कामकाज करते हुए दोपहर हो जाती। दबे पाँव शाम चली आती। एक अर्थहीन दिनचक्र चल कर ठहर जाता। मनुष्य का होना इतना निरर्थक कभी न हुआ। मनुष्य न हो तो पंछियों का गाना भी कौन सुने! ऐसा नहीं कि जब मनुष्य नहीं थे........तब पंछी नहीं गाते रहे होंगे! लेकिन उनके गाने को काव्य बनाने वाला तो मनुष्य ही है! हाँ, यह भी सच ही है कि मनुष्य ने इस संसार को कुरूपता अधिक दी है, जहर से भर दिया है। परन्तु इस जहर से बाहर भी वहीं निकाल सकता है संसार को! अब भी वह उसे सुन्दर बनाए रख सकता है! रात के झिलमिलाते अँधेरे में उसने पास के गुलमोहर को देखा। आश्चर्य से उसकी नजरें ठहर गईं। क्या पेड़ इससे पहले ऐसा ही था? क्या उसने दरख्त को देखकर भी नहीं देखा? गुलमोहर की शाखें छिल गई थीं। उन पर एक पत्ता नहीं दिखाई दे रहा। पूर्णतः नग्न गाछ! किन्तु यह तो प्रकृति का नियम है! पतझड़ में पत्ते झड़ जाते हैं। तो फिर वह अबोध बच्चे की तरह गुलमोहर को क्यों देख रहा? वह कौतुक से पेड़ को निरखते हुए विचारने लगा–––जैसे कुदरत उदास हो......साँझ के मौन में नग्न गाछ सहमा

हुआ सा खड़ा हो। उसकी टहनियाँ रो रोकर आकाश से पत्ते माँग रही हों। मगर पात तो बसंत ही देगा! हाँ.....बसंत भी तो दूर नहीं! वह डूब कर सोचने लगा–

मेरा अंतः स्फुरण यह कहता है कि जिस दिन गुलमोहर अपने यौवन को पा लेगा उसी दिन सब सहज हो जाएगा! दिन उगेगा यह बंद दरवाज़ा खोल कर! सूरज की दैनंदिन यात्रा इतनी अर्थहीन न होगी! न चाँद–तारे इतने कांतिहीन हुआ करेंगे। बच्चे स्कूल के लिए निकलेंगे। लोग सैर पर जाएँगे। शिक्षक अपने गंतव्य की ओर। सभी अपनी–अपनी रोज़मर्रा में जीते–मरते दिखाई देंगे। नौ–दस बजते–बजते भास्वर हो जाएगा भीड़ भरा जीव–जगत। जब यह मनहूस मर्ज़ यहाँ आया है तब इसकी शाखें नंगी हैं। पत्रहीन है यह। श्राद्धकर्म में चुपचाप भोजन की प्रतीक्षा करने वाले किसी क्षुधित कंटहा बाभन की तरह दिखता है। धीरे–धीरे इसमें पात आएँगे। फिर फूल उगेंगे। पात बड़े होंगे। फूल छितराएँगे। यह सजीला होगा।

लकलक करती इसकी हरियाली यौवन की ओर बढ़ेगी। कुछ दिनों में यह अपनी सख्त डालियों को आच्छादित कर अपनी बाहों में समेट लेगा। सिर्फ़ फूल और पत्ते दिखेंगे और तब यह मर्ज़ भी जाने को होगा। लेकिन तब भी इस बीमारी की अवसान बेला नहीं आई तो मैं क्या करूँगा?

बस देखता रहूँगा इसे। इस मृत स्थैर्य में यही चल है। केवल इसका ही रंग बदल रहा है। जैसे ऋतु बदल जाती है। लोग चल–फिर रहे हैं। पर निरुद्देश्य.....निरुपाय। खा रहे हैं। नित्यकर्म कर रहे। सो रहे। टीवी देख रहे। यह सब किसी मशीनी मानव की तरह चल रहा है। इतना उदासीन..... जीवनराग से उखड़ा हुआ, निर्लिप्त जीवन होता है क्या?

मैं हर रोज़ सुबह उठकर आँकड़े देखता हूँ! तारीखें काटता हूँ! मन मसोस कर दिन बिताता हूँ! वह जिसका पहाड़ होना पढ़ा था, अब तो देख रहा हूँ। न जाने कितने ही तो पहाड़ है। मेरी उम्मीद उस पहाड़ की तलहटी में है। जहाँ यह गुलमोहर खड़ा है। इसी के साथ कोई मौन सहमति हुई है मेरी कि जब यह अपने होने को सार्थक करेगा तब प्रकृति भी इस कारा से छूटेगी।

गहन विचारों में डूबे माधव का ध्यान विजया की आवाज़ से टूटा–

''आज चाय नहीं पी.....नहीं बनाने की इच्छा है तो रहने दो।''

''अभी बनाता हूँ। पी लो।''

चाय बनाने की ड्यूटी माधव की ही थी। किसी और के हाथ की चाय उसे भाती नहीं थी। पत्नी भी उसी के हाथ की बनी चाय पीने की आदी हो चुकी थी। इसलिए चाय पर एक मौन सहमति कायम रहती। उसका समय शाम के साढ़े पाँच से सात बजे तक फैला हुआ था।

***

पाँच

सुबह जागने के बाद उसने कोरोना मरीज़ों का आँकड़ा देखा। देश में संक्रमित लोगों की संख्या आठ सौ से ज्यादा हो चुकी थी। पिछले चौबीस घंटों में सौ से ज्यादा मामले सामने आए। यानी रफ्तार कुछ तेज़ हो गई थी। वैसे अभी तक वह मान कर चल रहा था कि इस लॉकडाउन के साथ संक्रमण का संकट कम होता जाएगा। उसने फोन पर समाचार देखते हुए समय देखा। सुबह के ग्यारह बज चुके थे। खाने–पीने के जरूरी सामान खत्म हो रहे थे। उसे बाहर जाना होगा। उसने चेहरे पर एक कपड़ा बाँधा। हाथ में सैनिटाइजर की बोतल लिए नीचे उतरा। सोसाइटी में आम तौर पर इस समय तक लोग दिखाई देते हैं। कुछ बूढ़े जो नौ बजे के बाद सैर करने या धूप सेकने निकलते हैं, अक्सर बेंच पर देर तक बैठे रहते। आज कोई नहीं था। अपनी कार स्टार्ट कर वह बाहर निकल गया।

बाहर कितना अजीब दृश्य था! सबकुछ खाली था। जैसे कोई जनहीन.....उजाड़ शहर हो। पेड़ से झड़े सूखे पत्तों की आवाज़ सड़क पर रेंग रही थी! एक अजीब की खड़खड़ाहट.....जो सूने में विषाद का स्वर भर जाती है ठेले–खोमचे तमाम बंद पड़े थे। घर बंद। बालकनी खाली। सड़क पर इक्के–दुक्के लोग हड़बड़ाहट में डरे सहमे से नज़र आ रहे थे। हाथ में सामानों का थैला लिए वे बस चलते चले जा रहे थे। आने–जाने वालों से कम से कम बातचीत। आदमी की बात कौन करे.....कुत्ते भी हैरान परेशान नज़र आ रहे। शहर को क्या हो गया?

उसे यह सब देखते हुए सहसा अलवर से भुतहा भानगढ़ के रास्ते में पड़ने वाला एक गाँव याद आ गया। भानगढ़ से कोई आठ–दस किलोमीटर पहले उस छोटे से गाँव में न जाने कब से चुप्पी छाई हुई है। लगभग हर घर भग्न है, परित्यक्त, कुंडियाँ चढ़ी हुईं। गर्द की परत उन पर छाई हुई। न मनुष्य, न मनुष्य की गंध। समय न जाने कब वहाँ से गुज़र गया, बस गाँव रह गया है। बसावट के अर्थ में नहीं। खांख हो जाने के अर्थ में। जिसके भीतर खालीपन है और बाहर अथाह दुःख–भार।

एक सँकरी–सी गली उस गाँव से गुजरती है। एक और अरावली के हरे–भरे पहाड़ हैं, दूसरी ओर खेत खलिहान। उन पहाड़ों पर एक जीर्ण किन्तु भव्य मंदिर है। दुखद स्वप्न सरीखा। गाँव त्यागा हुआ है, मंदिर छूटा हुआ। उन दोनों के बीच कोई मोह रेंगता रहता है। प्रकृति की हरीतिमा में उजरबन्ने का अंधकार छाया हुआ है।

महानगर की बेचैन करने वाली इस चुप्पी पर अलवर के गाँव की विचित्र–सी स्मृति छा गई। वह सोचने लगा कि लोग इन दिनों कितने निरर्थक उपदेश देते हैं। लोग कहते हैं, एकांतवास करो! यह ईश्वर और प्रकृति का दिया अवसर है! मैं हँसता हूँ। एकांतवास तो जीवंत, मुखर, बोलती–बतियाती प्रकृति के बीच ही होता है। जब मनुष्य सहज रहते हुए अपने दैनंदिन का व्यापार करता रहता है तभी। एकांतवास या अपने भीतर के मौन को सुनने के लिए किसी मनहूस सन्नाटे का संसर्ग ज़रूरी नहीं। यह दिन तो दुःख है। भय का प्रेत हवा पर फड़फड़ाता फिरता है।

जिस निर्जन में लोग साधना करते हैं, वहाँ भी ऐसी आरोपित चुप्पी, विकलता या आशंका नही होती। शांति होती है। सहज रूप। अनिर्वच आनन्द होता है। निराशाजनक निर्वाक नहीं होता। हवा में हर्ष होता है, भय या अनिश्चितता नहीं होती। यह बंदी कंठ को कसती है। चाहे जैसी भी विवशता, बाध्यता हो; किन्तु है यह दुखदायी। जीवात्माओं को ऐसा दिन न देखना पड़े!

गहन विचारों में डूबा माधव दुकान तक पहुँचा। वहाँ कुछ लोग पहले से खड़े थे। चेहरे पर मास्क, कपड़े लपेटे। माहौल देख कर वह कुछ अत्यंत ज़रूरी सामान ही खरीद सका। उसकी हिम्मत जवाब दे गई। कुछ वस्तुओं को कल पर छोड़कर, यह जानते हुए भी कि उन्हें छोड़ देने से गृहयुद्ध हो सकता है, वह वापस चला आया। ऐसी अदृष्टपूर्व निर्जनता और निचाट सूनापन उसके लिए असह्य हो रहा था।

ऐसे किसी जीवन के बारे में उसने कभी नहीं सोचा था। शायद किसी ने भी न सोचा हो। वह भीड़ के बीच अकेला होता रहा। बड़ी सहजता से होता रहा। वह अकेलापन उसे आनन्दित भी करता रहा। कम बोलते हुए बहुत अधिक सुनता रहा। पर अब तो कुछ सुन नहीं पाता। सभी चुप हो गए हैं। आसमाँ ने धरती को थप्पड़ जड़ दिया है। वह तमतमाई बैठी है। यह अकेलापन एक अजगर है जो धीरे–धीरे उसे चबा रहा है।

बाहर कुछ दिखाई नहीं देता। खाली–खाली सा शहर है। उदास, लंबे बुखार से टूटी हुई देह की तरह पीली सुबह। उस पर हौले–हौले चढ़ता अपराह्न का उद्देश्यहीन आलोक। साँझ को मुँह पर कपड़े ढँके, एक–दूजे से दूर–दूर सैर करते लोग। वही काँपता हुआ गुलमोहर। उसकी किसी शाख पर यदाकदा बोलते परिंदे। देर रात अनावश्यक ही लाठियाँ बजाता चौकीदार। ठग–लुटेरे भी कहाँ आते हैं ऐसे दिनों में!

लोग कहते हैं इन दिनों हवा बड़ी साफ हो गई है। साँस लेने वालों को ही उसकी कद्र नहीं है। आकाश के तारे पास लटक आए हैं। कटे हुए चाँद के पास दमकता हुआ पूरा शुक्र तारा दिखता है। मगर उन्हें देखने की ललक न जाने क्यों मर–सी गई है। प्रकृति की यह सहज शोभा कितनी अर्थहीन है! जो अभीष्ट था वही उपेक्षित है! क्यों? जीवन की सहज वृत्ति मर गई है। उसे कारावास हो गया है। जब स्वाधीन होकर जी नहीं सकते तो चाँद तारों का क्या करें! वे उस सूने आकाश में ही रहें!!

माधव को लगा जैसे कोई उसके कंठ को कस रहा है। साँस लेना मुश्किल हो रहा। वह सोचने लगा.....काश अपने साथियों के हाथ छू सकता! कुछ देर हँस लेता! कुछ रौशनियाँ आँखों में लिए घर लौट आता, मगर नहीं! हर सुबह एक उम्मीद आती है। दोपहर होते–होते वह बिखरने लगती है और शाम को बुझ जाती है। वह निरुद्देश्य हो जाता है। न जाने कब तक.....

***

छह

जैसे–जैसे लॉकडाउन के दिन बीतने लगे, जीना बेमानी होता चला गया। हर सुबह मद्धम–सी आशा के साथ उठना और धीरे–धीरे पूरे दिन का अर्थहीन होता चला जाना। कोरोना के मरीजों की संख्या भी लगातार बढ़ती ही जा रही थी। हालाँकि उसमें कोई असामान्य उछाल नहीं आयी थी मगर लॉकडाउन के सप्ताह भर बीत जाने के बाद कोई परिवर्तन नहीं दिख रहा था। संक्रमण के जिस चक्र के टूटने की उम्मीद थी, वह पूरी नहीं हो रही थी। इन्हीं दिनों एक परेशान करने वाली घटना हुई। अचानक दिल्ली और पंजाब समेत उत्तर भारत के कई राज्यों से मज़दूरों का पलायन शुरू हो गया। दिल्ली में तो रातों–रात विकट स्थिति हो गई। हजारों मजदूर पैदल और बसों में सवार होकर आनन्द विहार पहुँचने लगे। न जाने कहाँ से यह उड़ती हुई खबर आई कि आनन्द विहार से अलग–अलग बसों में मजदूरों को उत्तर प्रदेश और बिहार के शहरों में छोड़ा जा रहा है। आनन्द विहार बस अड्डे पर भारी अफरातफरी थी। बड़ी संख्या में मजदूरों का रेला उमड़ आया था। और यह ऐसे दिनों में हुआ जब पूरे देश में सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना था। माधव का मन काँप उठा। ऐसी भीड़ भरी बसें और बस अड्डे होंगे तो इस लॉकडाउन और बंदी का क्या मतलब रह जाएगा! बीमारी तो बम बन कर फूटेगी! प्रधानमंत्री की अपील धरी की धरी रह जाएगी! वह इस बारे में देर तक सोचता रहा कि आखिर मजदूरों तक यह झूठा समाचार किसने पहुँचाया कि उत्तर प्रदेश की सरकार आनन्द विहार में उनके लिए सैकड़ों बसों की व्यवस्था कर रही है?

अलग–अलग विचारधारा के समाचार वाले अलग–अलग तरीके से खबरें परोस रहे थे। किसी के लिए यह केन्द्र सरकार की नाकामी थी। किसी के लिए यह दिल्ली की सत्ता चलाने वालों का षड्यंत्र था। किसी के लिए यह उत्तर प्रदेश की अव्यवस्था थी। सभी अपनी–अपनी सुविधा और पसंद से व्याख्या कर रहे थे। उसका मन खिन्न हो उठा। क्या इन्हीं दिनों के लिए वह बंदी की गई थी? देश की अर्थव्यवस्था की दुर्गति हो रही है और यहाँ लोग राजनीति कर रहे हैं! बिना किसी बहकावे के मजदूरों ने इतनी बड़ी संख्या में पलायन करने का विचार कैसे लिया? निश्चय ही इसमें कोई षड्यंत्र है!

एक दो दिन में स्थिति और बिगड़ने लगी। आनन्द विहार के पास बसों की व्यवस्था तो की जा रही थी मगर राजनीति का गंदा खेल शुरू हो गया था। इस आपदा के समय तू–तू मैं–मैं होने लगी। बसों में भर–भर कर

मजदूरों के जाने के अलावा उनके पैदल ही अपने घरों की ओर निकल पड़ने के समाचार भी आने लगे थे। कई जगहों से विचलित करने वाले दृश्य चैनलों पर दिखाई देने लगे जिनमें महिलाएँ अपनी गोद में बच्चा और सिर पर सामान लिए सड़क पर चलती चली जा रही थीं।

तो क्या मजदूरों का भरोसा सरकार से उठ चुका है? या उन्हें इस लॉकडाउन ने दूसरी चिन्ता में डाल दिया है? क्या वे कुछ ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि आने वाले दिन कठिनतर होने वाले हैं। काम धंधा पूरी तरह से ठप हो चुका है। शुरू होने के आसार भी अभी नहीं दिखाई देते। कौन जाने यह बंदी तीन सप्ताह में खुल ही जाएगी? यह मुमकिन है कि बीमारी को देखते हुए लॉकडाउन अगले दो माह तक खिंच जाए। सरकार ने सबके खातों में पैसे डालने की प्रक्रिया शुरू कर दी है।लेकिन उससे जीवन कैसे चलेगा? क्या मजदूर इस अनिश्चय की स्थिति में घबराकर अपने गाँव–खेड़े की ओर चल पड़े कि यह मुश्किल समय वे वहीं काट लेंगे? दुबारा जब ज़िन्दगी पटरी पर लौटेगी तो शहार लौट आएँगे!

कुछ कहना मुश्किल था। कुछ आकलन करना और मुश्किल। वह सिर्फ इतना देख पा रहा था कि शहर से घबराकर गाँव की ओर जाने वाले मजदूर गाँवों में भी बीमारी का संक्रमण फैला सकते हैं। आम तौर पर अब तक देश के ग्रामीण इलाके कोरोना से अछूते थे। विदेश से आने वाले इस मर्ज ने अभी तक बड़े शहरों और दूसरे स्तर के शहरों को शिकार बनाया था। लॉकडाउन का सबसे बड़ा उद्देश्य ही यह था कि जो जहाँ है.....वह वहीं रह जाए। देश में आवाजाही बंद हो गई तो बीमारी कुछ खास क्षेत्रों तक सीमित रह कर खत्म हो जाएगी। लेकिन मजदूरों के पलायन से उसकी चिन्ता बढ़ गई थी।

शाम को मनोज माथुर का फोन आया। मनोज माथुर उसके पुराने साथी, पत्रकार थे। अपनी वेबसाइट चलाते थे।

''कैसे हैं माधव जी.....''

''कैसा क्या रहूँगा। बस हूँ।''

''हाँ.....क्या कहें! ठस देश में जीना मुहाल हो गया अब।''

माधव सोचने लगा, भला देश ने क्या कर दिया! रही बात बीमारी की तो इससे आधी दुनिया कराह उठी है। तभी मनोज माथुर बोल पड़ा–

''एक झन्नाटेदार आर्टिकल लिख दीजिए ना हमारी वेबसाइट के लिए।''

''किस तरह का झन्नाटेदार? समझा नहीं।''

''अरे....देख नहीं रहे मजदूरों की दुर्दशा। सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी है। बेचारे मर रहे।''

माधव को थोड़ी खीज हुई। उसने तल्खी से कहा; ''अगर मेरे पेट में अचानक मरोड़ होने लगी तो सरकार नाकाम हुई! क्यों मनोज जी?''

''कैसी बातें करते हैं आप?'' मनोज माथुर की आवाज़ बदल गई।

''आप कैसी बात करते हैं।''

''अरे.....देश के कोने–कोने से मजदूर अपने गाँव की तरफ लौट रहे हैं। न वाहन है.....न कोई और व्यवस्था। सरकार क्या कर रही है?''

''सरकार को जो करना था, वह पहले ही कर चुकी। अब जनता को यह देखना है कि वह सरकार के फैसले के साथ किस तरह खड़ी होती है। लोकतंत्र में सारी जिम्मेदारियाँ सरकार की नहीं होती। जनता को भी जिम्मेदार होना पड़ता है।''

''अच्छा तो आप मानते हैं मजदूरों के पलायन में सरकार की कोई नाकामी नहीं?''

''एक दिन किसी अफवाह या सनक में आ कर लोग अपने–अपने घरों से हजार किलोमीटर दूर जाने को निकल पड़े। जबकि वे जानते हैं कि देश अभी थमा हुआ है। यातायात के सभी साधन बंद हैं। लोगों से हाथ जोड़कर प्रधानमंत्री ने अपील की है, जो जहाँ हैं...वहीं रहें कुछ दिनों तक। तब इस पागलपन का क्या तुक है?''

''यानी.....मजदूरों के दुख से हमें कोई लेना–देना नहीं?''

''यह दुख नहीं समझदारी का मसला है। मैं मानता हूँ कि उनके सामने अनिश्चतता है। यह तालाबंदी कब तक चलेगी, कोई नहीं जानता। उन्हें देशहित के लिए कुछ दिनों तक वहीं रहना था, जहाँ वे थे। ऐसा नहीं कि गाँव जाकर वे सहजता से जी सकेंगे। एक तो अब तक संक्रमण से बचे ग्रामीण क्षेत्रों में भी वे इस बीमारी के फेलने का कारण बनेंगे। दूसरी बात यह कि वहाँ भी उनकी आजीविका आसान नहीं होगी। आसान रही होती तो गाँव से भाग कर शहर आते ही क्यों.....?''

''आपने तो अपनी पक्षधरता ही साफ कर दी!''

''यह पक्षधरता नहीं.....विवेक है! मनोज जी, गर्मी के दिनों में कभी मजदूरों को दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर देखा है? पारा जब पैंतालीस डिग्री होता है तब वे जनरल बोगी में घुसने के लिए कतार लगाते हैं। पुलिसवाला उन्हें भेड़–बकरियों की तरह हौंकता चलता है और वे एक–दूसरे को ठेलते–कूचते हुए उस डिब्बे में सवार होते हैं। वहाँ पाँच मिनट के लिए साँस लेना भी मुश्किल होता है वे पच्चीस–तीस घंटे की यात्रा कर गाँव जाते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे मनुष्य नहीं गठरियाँ हों। कभी विचार किया है, क्यों उस तरह से जाते हैं?''

''मजदूरों की जिजीविषा और जिद से आप परिचित नहीं हैं। उन्होंने तय कर लिया कि उन्हें गाँव जाना है तो वे चले जाएँगे। फिर कोई बाधा सामने नहीं आती।''

फोन कट चुका था। वह कुछ आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा–ये लोग किस तरह का एजेंडा चलाना चाहते हैं! इन्हें किसी मनुष्य के दुख, उसके संताप से लेना–देना नहीं! बस शोर करना है! सरकार का विरोध करना इनके पेशे का सूत्रवाक्य है! वाह.....! कोई इनकी बातों से सहमत नहीं तो उससे बातें करना भी इन्हें गँवारा नहीं!

***

सात

जब देश में लॉकडाउन शुरू हुआ था तब वह लगभग आश्वस्त था कि तीन सप्ताह में बहुत कुछ सामान्य हो जाएगा। संक्रमण का चक्र तोड़ने में हम कामयाब होंगे और देश इस बीमारी से मुक्त हो जाएगा। वैश्विक स्तर पर इस बात की प्रशंसा भी की जा रही थी कि भारत ने कोरोना से लड़ने में बड़ी एकजुटता, अनुशासन और दृढ़ता का परिचय दिया है। मार्च के अंत और अप्रैल के शुरू में जिस तरह का संशय पैदा हुआ और लोगों ने बड़ी संख्या में शहर छोड़ कर गाँव जाने की कोशिश की, उससे माधव बहुत निराश था। उसे यह लगने लगा कि तीन सप्ताह की बंदी आगे निश्चय ही बढ़ेगी। यह कड़िन समय न जाने कब तक खिंचता चला जाए.....

आखिर वही हुआ जिसका खटका था। अप्रैल के मध्य तक आते–आते हालात सामान्य होने की सभी संभावनाएँ निराशाजनक तरीके से समाप्त हो गईं। लॉकडाउन मई के पहले सप्ताह तक बढ़ाना पड़ा। अप्रैल के मध्य तक इस बीमारी से संक्रमित लोगों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। अचानक एक खबर का जैसे विस्फोट हुआ कि दिल्ली में मरकज़ के लिए जुटे लोगों में कोरोना का संक्रमण पाया गया है। अकेले दिल्ली में ही दर्जनों संक्रमित लोग मिलने लगे। बात दिल्ली तक सीमित रह जाती तो गनीमत होती। मरकज़ में हिस्सा लेने वाले देश के कई शहरों में पाए गए। उनके संपर्क में आने वाले दूसरे लोगों में तेजी से ये बीमारी फैलने लगी। अप्रैल के तीसरे सप्ताह में प्रवेश करते हुए भारत में वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या अठाहर हजार से अधिक हो गई थी। अब हर दिन डेढ़ से दो हजार नए मरीज़ आने लगे थे। यह संख्या कई देशों में कोरोना के प्रचंड विस्तार के बनिस्बत कम थी लेकिन खतरा बना हुआ था। बंदी के दौरान सरकारी कायदे कानून को तोड़ने...लोगों के बाहर घूमने की निराशाजनक खबरकें लगातार आ रही थीं।

माधव ने अब कुछ सकारात्मक सोचना छोड़ दिया था। घर से उसका बाहर निकलना लगभग बंद हो चुका था। बाहर वह तभी जाता जब खाने–पीने की चीजों की ज़रूरत पड़ती। उसकी ज़िन्दगी तीन कमरों में सिमट आई थी। बस,पत्नी और बच्चे। पास–पड़ोस के जिन लोगों से उसकी निकटता थी, वे सब भी एक झटके में दूर हो गए। कोई सीढ़ियों पर कभी टकरा भी जाता तो फासले से ही नमस्ते कह कर चल पड़ता। जाने–पहचाने, बोलने–बतियाने वाले लोग ही अजनबी हो गए। किसी सगे संबंधी और दोस्त का चेहरा देखे हुए एक अरसा हो गया था। ऐसे ही किसी दिन अपनी

खिड़कियों के पास खड़े होकर वह स्वच्छ आकाश को देख रहा था। जहाँ से पिछले एक माह में प्रकृति ने कई रंग छिटकाए थे। कभी तेज़ धूप.....तो कभी वासंतिक स्पर्श.....और कभी सावन सी फुहार!

मार्च और अप्रैल के महीने में कई दफा मूसलाधार बारिश, ओलावृष्टि और अंधड़ आए। बारिश ने तो पिछले कई दशकों का कीर्तिमान ही तोड़ डाला। ओलावृष्टि और बरसात से फसलों को भी बहुत नुकसान हुआ था। ऐसा लग रहा था जैसे प्रकृति क्रोधित होकर कुछ कह रही हो। कुल मिलाकर कहीं से कोई अच्छा संकेत नहीं था। यहाँ तक कि उसके सारे अपने अनुमान.....आकलन गलत साबित हो चुके थे। वह बेकल–बेकल सोचने लगा–

अब तो सारे लक्ष्य और अंतर्दृष्टियों व्यर्थ हो रही हैं। जैसे कोई अभिचारी नए खेल दिखाता है, वैसे ही यह बीमारी खेल रही है। दुनिया ठगी–सी ठहर कर देख रही है। उसका कोई ज़ोर नहीं चल रहा। मेरे लिए अब यह बंदी कोरोना से बड़ी विपदा है। इसने मनुष्य के आभ्यंतर संसार को मथ दिया है और बहार उसे कस कर रख दिया है। जैसे धड़धड़ाती रेल एक झटके में ब्रेक से सिहर कर ठहर गई हो। आधुनिक समय में दुनिया को कोई हिस्सा इस तरह से कसा नहीं गया, इस तरह से उसे ठहराया नहीं गया, इस तरह से उसकी गुद्दी पकड़कर दबाई नहीं गई।

अब अवसाद आदमी को कुछ उसी तरह घेर रहा जैसे कोई विषधर कुंडली मार कर अपने शिकार को घेरता है। अकेले भारत में लाखों–लाख लोग बेरोज़गार हो चुके हैं। बंदी के साथ हर दिन होते जा रहे हैं। निर्माण, सेवा, पर्यअन समेत कई क्षेत्रों में भन्न–भन्न करता हुआ सन्नाटा है। छोटे उद्योग–धंधों की रीढ़ टूट चुकी है। गाँव से भागकर शहर आने वाले कामगार इस तालाबंदी से तमतमा उठे हैं। किसी ने उनकी कनपटी पर जोरदार तमाचा जड़ दिया है। उनके लिए इधर कुँआ उधर खंता है।

पश्चिमी आधुनिकता के रथ पर सवार मनुष्य अधिक मोहाँध हुआ है। कहीं अधिक भ्रमित भी है कि उसने बीमारियाँ जीत ली हैं। उसके पास लाइफ सपोर्ट सिस्टम है। वह मौत को मात देता है। इसलिए उसे मरना नहीं चाहिए। गोया वह मृत्यु–विजय के सबसे निकट खड़ा है!! वह इस कोरोना को हरा देगा, भले ही इसके लिए उसे नज़रबंद होना पड़े। मैं किसी बीमारी, महामारी, महादेशीय व्याधि से इस तरह लड़ने की कल्पना नहीं कर पा रहा। क्या मनुष्य की सभ्यता के इतिहास में कभी किसी महामारी से वह इस तरह

से लड़ा है? करोड़ो–करोड़ मनुष्यों को निगल जाने वाली बीमारियों से भी कभी उसे तरह भिड़ते देखा है?

मुझे अब यही लगता है कि एक बड़े स्तर पर दुनिया को दुबारा अपने हाथ–पाँव खोलने की ज़रूरत है। जैसे लकवाग्रस्त मनुष्य धीरे–धीरे दुबारा अपने हाथ पाँव खोलता है। उसे इस परिस्थिति से ही भिड़ना होगा। अगर यह परिस्थिति उसे लीलती है तो यही सही। यह बीमारी जितने लोगों को मार रही है या मारेगी, उसे से कई गुना अधिक लोग तो कोरोनाजन्य कष्टों और दुश्वारियों से मर जाएँगे!

पिछली एक सदी में विश्व ने मृत्यु के सबसे विकराल रूपों को देखा है। दो–दो महायुद्धों के अलावा कितने ही युद्ध, आतंक, आपदाएँ, महामारियाँ। सबको झेल कर वह खड़ा हुआ। अपदाएँ आती रहीं वह अपनी राह चलता रहा। किसी ने उसे घर में बैठकर इस तरह से छाती पीटने को नहीं कहा। मैं मानता हूँ कि जब यह बंदी अपरिहार्य थी, तब हुई। अब इसे खींचना यंत्रणाओं को न्योता देना है। मनुष्य को मुक्त कर दो! वह लड़–भिड़ कर, मर कर जी उठेगा। उसे इस तरह तिल–तिल कर मरने को बाँधे रखना हाहाकारी दुःख है।

मैं यह भी मानता हूँ कि इन दिनों में वह इतना समझदार तो हो ही चुका है कि भीड़ में अपना हित देख सकेगा। जिस सोशल डिस्टेंसिंग की घुट्टी वह पी रहा है, वह उसके बदन में तरल रूप से फैल चुकी है। सत्रह मई के पश्चात् सरकार को यह सोचना होगा कि जीवन कैसे फिर से अपने रास्ते पर लौटे। इस एकाकीपन के अनंत कष्ट हैं। ऐसे जीने को बाध्य होना एक अभिशाप है। ऐसी किसी जकड़बंदी से पैदा होने वाली प्राकृतिक निर्मलता कितने दिनों तक मुक्त होकर हँसेगी? अंततः तो उसे मानव सभ्यता पर छाए इस संकट से रोना ही होगा। यह त्रास तो बहुत जल्दी बहुत कुछ तबाह कर देगा।

सोच–विचार कर यह तार फोन की घंटी से टूट गया। प्रमोद का फोन था।

''कैसे हैं आप...''

''भेंट–मुलाकात ही नहीं करते? कितने दिनो तक मुँह छिपाए बैठे रहेंगे?''

माधव एक पल के लिए चुप्पी साध गया फिर बोल पड़ा–''अरे मुँह क्या छुपाना। बीच में आप व्यस्त हो गए थे। आपका फोन भी नहीं आया

इसीलिए गुम्मा मार कर बैठ गया। मिल सकता हूँ। आपके घर आऊँ? आपके टैरेस पर हम बैठ सकते हैं। वहाँ खुला आसमान है। कुछ देर तक बातचीत हो सकेगी।''

''सो तो ठीक है। लेकिन आज भी गुल्ली नहीं देंगे, इस बात की क्या गारंटी है? पहले भी दो बार वादा कर के नहीं आए आप!''

माधव हँस पड़ा। जैसे उसे खुद पर ही यकीन न हो। शंका की परत इतनी मोटी हो चुकी थी कि प्रमोद से दो बार मुलाकात का कह कर वह घर में ही रह गया था। हर बार किसी से मिलने का ख्याल उसे भयभीत करता। एक विचित्र–सी सिहरन उसे बाहर जाने से रोक लेती थी। कई मर्तबा तो उसने बाहर जाने के कपड़े पहले फिर उन्हें उतार कर चुपचाप बैठ गया था। जैसे जड़ हो गया हो। काठ मार गया हो।

उस रोज शाम को वे दोनों मिले। कार से उतर कर प्रमोद की सोसाइटी में जाते हुए उसे थोड़ी मशक्कत भी करनी पड़ी। थोड़ी बहुत पूछताछ के बाद वह भीतर घुसने में कामयाब रहा।

दोनों मिलकर भी ज़रा दूर–दूर रहे। हाथ मिलाने से पहले दोनों के चेहरे पर हँसी आ गई। प्रमोद उसका पुराना साथी था। वो पास–पास ही रहते थे। करीब साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी पर। उस रोज़ शुरुआती बातचीत के बाद प्रमोद के चेहरे पर खीज और परेशानी साफ देखी जा सकती थी। उसका नया बिज़नेस बैठ गया था। लॉकडाउन से कुछ दिनों पहले काम सुचारू रूप से अपने रास्ते पर चल पड़ा था। यानी....उसने अभी अपनी रीढ़ सीधी ही की थी कि किसी ने धक्का देकर उसे गिरा दिया।

वह सिर हिलाकर कहने लगा.....''बहुत बुरा हुआ.....सरकार ने लॉकडाउन में बहुत देरी कर दी। पहले ही सब बंद कर डालते तो आज यह नौबत नहीं आती।''

''आप को ऐसा क्यों लगता है?''

''क्यों नहीं लगेगा.....आप ही बताइये। एयरपोर्ट पर शुरू में बड़ी ढिलाई थी। लोग अपनी मर्जी से आ जा रहे थे। कोई स्क्रीनिंग नहीं थी।''

''ऐसा नहीं है। स्क्रीनिंग के लिए सरकार को दोष देना ठीक नहीं। काम के प्रति जिम्मेदारी का एहसास होना चाहिए। जिसके लिए सबकुछ खेल है.....वह भला कोई काम गंभीरता से क्यों करेगा.....बस खानापूर्ति होती रही। इसमें सरकार क्या कर सकती थी?''

''सरकार ने सख्ती दिखलाई होती तो ऐसा नहीं करते।''

''क्या आप मानते हैं कि हर जगह सरकार को डंडा लेकर खड़ा होना था? क्या यह मुमकिन है.....इतने बड़े देश में?''

''लोगों ने हवाईअड्डों पर तमाम तिकड़में की। झूठ बोला.....दवा खाकर अपना बुखार दबाया.....सरकार की ही सारी जिम्मेदारी नहीं हो सकती।'' माधव जरा तल्ख हो गया।

''आप ही बताइये.....क्या पूरे देश को बंद कर देना घर की कुंडी चढ़ाना है....? आज सोचा.....अभी तय किया और ताला मारकर बैठ गए!''

''आपको शायद याद हो कि यूरोप के कई छोटे देशों से पहले हमारे यहाँ ये बंदी हुई लेकिन लोगों ने इसकी गंभीरता को नहीं समझा।''

''आप यह क्यों नहीं सोचते कि लोग छुप–छुप कर धार्मिक कार्यक्रमों में जाते रहे। उन्होंने लॉकडाउन की धज्जियाँ उड़ाई। मजदूर दल के दल में निकल पड़े। कई जगहों से खबरें आ रही है कि लोग प्रशासन के साथ सहयोग नहीं कर रहे। ऐसे में संक्रमण को रोकना कितना मुश्किल है.....?

भारत एक जटिल देश है प्रमोद जी.....! तब भी अभूतपूर्व है यह प्रयास..... आप निष्ठा या निर्णय को गलत नहीं ठहरा सकते। हाँ.....उसके अनुपालन में जो मुश्किलें आ रही हैं, जिस तरह की ढीलापोली हो रही है..... ..वह दुखद है। फिर भी मैं मानता हूँ कि हम बड़े और आधुनिक देशों के मुकाबले बहुत बेहतर हालात में हैं।''

हम्म....प्रमोद चुप हो गया।

''कुछ खाएँगे क्या?''

''नहीं। खाने की कोई इच्छा नहीं।''

''अरे.....थोड़ा कुछ ले लीजिए। कोरोना का खतरा नहीं है!''

हाहाहाहाहा.....

''इतनी ही फिक्रमंदी होती तो आपके घर आता क्या.....''

''और घर में सब ठीक हैं? बच्चों के लिए भी बड़े मुश्किल भरे दनि हैं। कहीं जा नहीं सकते। दिन भर घर में बैठ–बैठ कर चिड़चिड़े होते जा रहे हैं।''

''बड़ी मुसीबत है माधव जी। दिन भर टीवी देखते रहते हैं। ऑन लाइन क्लासेस के नाम पर एक नाटक चल रहा है। वह भी फोन से जुड़े रहने का बहाना बन गया है। ऑन लाइन क्लास खत्म हो जाती है तो कहते हैं कि कुछ एसाइनमेंट करना है और गेम खेलते हैं। आप कुछ कह भी नहीं सकते उन्हें। जब हम जैसों का जीना दूभर हो गया है तो उनके लिए यह किसी शाप से कम नहीं है। जैसे नजरबंद कर दिए गए हों.....कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसे दिन देखने पड़ेंगे।''

बतचीत चल रही थी, तभी कुछ नमकीन और सैंडविच सामने रखे जा चुके थे। माधव संशय से उन्हें देख रहा था जैसे, अपने ही करीबियों पर भी भरोसा न रहा हो।

क्या पता.....इसे परोसने या छूने से पहले हाथ धोए होंगे भी या नहीं.....?

अगले ही क्षण उसे अनुभव हुआ कि वह अनर्थ कर रहा। ऐसा अनर्गल सोचना मित्रता और मानवता दोनों के प्रति अन्याय है। आखिर प्रमोद के घर में भी बच्चें हैं। शिव शिव.....! डसने तत्क्षण भगवान से क्षमा माँगी और सैंडविच खाने लगा।

रात के आठ बजने वाले थे। उसने घड़ी देखी। उसे अहसास हुआ कि अब देर हो रही है। आम दिनों में रात के आठ बजे तो देर नहीं होती लेकिन कोरोना काल में दिनचर्या ही बदल गई है। दिन भर एक सूनापन और शाम के सात बजते–बजते सन्नाटे। सड़कें खाली हो जाती हैं। दूर–दूर इक्के–दुक्के वाहन भागते हुए दिखाई देते हैं। माधव ने इशारों में प्रमोद से चलने की बात कही। उसने भी रोकने की कोशिश नहीं की।

***

आठ

करीब सवा आठ बजे वह घर पहुँचा। घर से बाहर निकलना भी एक युद्ध लड़ना था। वापस लौटने के बाद चप्पलें बाहर ही छोड़नी होती थीं। एक–एक कपड़ा उतारना होता था। बाहर रहते हुए यह ध्यान रखना होता था कि नाक और मुँह पर गलती से भी हाथ या उँगली न जाय। घर में घुसते ही साबुन से हाथ धोना। रोजमर्रा में शामिल हो चुकी इन सभी आदतों से छुटकारा पाना फिलहाल मुमकिन नहीं था। खुद को बाहर के कपड़ों से मुक्त करने और साफ सफाई के बाद वह अभी आराम करने बैठा ही था कि तेज़ हवा चलने लगी। पहले तो उसे लगा यह वा किसी अंधड़ का पूर्वसंकेत नहीं है लेकिन जैसे ही उसने खिड़कियों के पास जाकर बाहर झाँका, उसका संशय दूर हो गया। हवा तेज़ हो चुकी थी। लगभग उन्मत्त। अगले ही क्षण बारिश की बूँदें भी गिरने लगीं।

बाहर झाँकते हुए माधव ने मौसम के कुछ अजीब हाल पर सोचना शुरू किया। उसने दिमाग पर बहुत जोर डाला किन्तु उसे अपने जीवन के पैंतालीस–छियालीस सालों में ऐसे दिनों का ध्यान नहीं आ रहा था। लगभग बसंत ऋतु के साथ ही आँधी–पानी का सिलसिला चल रहा था। इस साल दिल्ली में मार्च के महीने में रिकार्ड बारिश हुई। कई बार ओले गिरे। कई बार झंझा चली। तब से लेकर आज तक मौसम का कोई स्थायी रूप नहीं था। कभी भी बारिश हो जाती।

बाहर बरसात जोर पकड़ चुकी थी और हवा पागल हुई जा रही थी। शीशे की स्लाइडिंग खिड़कियाँ जोर–जोर से खड़कने लगीं। हवा के धक्के पड़े तो लगा उखड़ ही जाएँगी। विजया दौड़कर आई.....अखबार के रोल बनाकर स्लाइड के बीच फँसाने की कोशिश करने लगी। अंधड़ भयंकर रूप ले चुका था। नीचे जहाँ उसकी कार खड़ी थी, उसके ठीक सामने अमरूद का एक पेड़ झूम रहा था। उसे लगा, आज इसकी डालियाँ टूट कर गिर पड़ेंगी और कार को नुकसान पहुँचाएँगी। सामने गुलमोहर को हवाओं ने झकोर डाला था। पत्र–पुष्प सब छिन्न–भिन्न कर कई सारी टहनियाँ उजाड़ डाली थीं। तभी ऊपर के तल से लोहे का एक छज्जा उड़कर नीचे गिर पड़ा। छज्जे को उखड़कर नीचे गिरते देख उसका मन कुछ विचलित सा हो उठा। हे ईश्वर! यह क्या हो रहा है....! दिल्ली में ऐसा भयंकर तूफ़ान नहीं देखा!

करीब बीस से पच्चीस मिनट तक आँधी उग्र रही। उसके बाद ताप कम हो गया। बारिश मद्धम होकर गिरने लगी। बूँदें जो प्रचंड हवा के आतंक से उड़ी जा रही थीं, अब एक सीध में पड़ने लगी थी। उनका जोर भी कम हो गया था। कुछ देर के बाद बरसात थम गई। उसने खिड़कियाँ खोल ली।

बाहर का मौसम सुहाना हो गया था। ठंडी हवा चल रही थी, बूँदों से भीगी नहाई हुई साफ–सुथरी, प्रदूषण से मुक्त। धीरे–धीरे नीचे लोग दिखाई पड़ने लगे। दो गार्ड गुलमोहर की टूटी डालियों को हटा रहे थे।

रास्ता काँच के टुकड़ों से भर गया था। सामने की सोसाइटी में भी कई पेड़ों की टहनियाँ उखड़–उखड़ कर गाड़ियों पर गिर पड़ी थी। लोग साफ सफाई में लगे हुए थे।

उसने विजया से पूछा; नीचे घूमने चलोगी क्या.....?

उधर से कोई जवाब नहीं आया। उसने प्रश्न दुहाराया। वह कुछ विचारने लगी। फिर बोली.....''नहीं बाबा.....तुम जाओ.....मगर सावधान रहना! ज़रूरी है क्या नीचे जाना? अभी तो बाहर से आए हो।''

माधव ने कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप नीचे उतरने लगा। सोसाइटी में कम लोग ही घूम रहे हैं। कुछ बच्चे दल बनाकर मौसम का मज़ा लेने आए हैं। बच्चों के लिए ये दिन कितने कठिन हैं! उनकी स्वच्छंदता को जैसे किसी ने कुचल डाला है। खुशहाल.....हाहा–हीही करते हुए घूम रहे बच्चों को देखकर वह मुदित मन चुपचाप टहलने लगा। नीचे कई जगहों पर पेड़ों की टहनियाँ गिरी पड़ी थी। खिड़कियों के टूटे काँच बिखरे हुए थे। अभी उसने दो चक्कर ही काटे थे कि खन्ना साहब के घर से किसी के चिल्लाने की आवाज़ आई। एक पल के लिए उसे लगा.....जैसे घर में कोई बहस हो रही हो। मगर वो चिल्लाहट बहस नहीं थी। उसने दुबारा सुना–मम्मी..... मम्मी! अरे मम्मी ठंडी पड़ रही हैं.....कोई ऐम्बुलेंस को फोन करो.....मम्मी..... .मम्मी.....! फिर सन्नाटा.....कुछ क्षण बाद वही दहाड़ता स्वर.....

वह ठहर गया। मिस्टर खन्ना का घर पहले तल पर था। जिस कमरे से बदहवास आवाज़ बाहर आ रही थी, उसकी खिड़कियाँ जमीन से बारह फुट ऊपर रही होंगी। स्वर साफ और परेशान करने वाला था। वह वहीं खड़े होकर टोह लेने लगा। बाहर से कुछ देख पाना तो मुमकिन नहीं मगर कुछ पता चल जाय शायद! व्यग्र होकर वह इधर–उधर डोल रहा था।

तो क्या.....मिस्टर मेहरा की चेतावनी सच थी! क्या खन्ना साहब ने अपनी पत्नी के संक्रमण की खबर सच में दबा दी थी? हे ईश्वर! यह क्या हो

रहा है? वह सिहर उठा। खन्ना साहब के बेटे का चिल्लाना जारी रहा। नीचे घूम रहीं दो महिलाएँ दौड़ कर आईं। घबराहट में बोलीं–अरे.....लगता है आंटी की तबीयत बिगड़ गई.....!

माधव भय से उन्हें देखने लगा। हौले से पूछा.....क्या हुआ है इन्हें? कहीं.....!

कोई जवाब नहीं आया। दो जोड़ी आक्रान्त आँखें उसे घूरती रहीं। ऊपर से जोर–जोर चिल्लाने की आवाज़ आती रही.....मम्मी.....मम्मी! कुछ देर तक भकभकाती चुप्पी, फिर वही चिल्लाहट.....

माधव सरपट अपने घर की ओर भागा। तीसरी मंजिल पर उसका फ्लैट था। लिफ्ट का इस्तेमाल तो वह कभी नहीं करता था। इन दिनों तो लिफ्ट की ओर देखे हुए भी एक दौर हो चुका था। घर का दरवाज़ा भीतर से बंद नहीं था। अंदर दाखिल होते हुए उसने सामान्य रहने की कोशिश की लेकिन पत्नी ने जैसे कुछ पढ़ लिया।

''क्या बात है.....इतनी जल्दी लौट आए, सब ठीक है?''

हम्म.....

''कुछ छुपा रहे हो क्या.....बताओ।''

''नहीं.....फर्स्ट फ्लोर पर कुछ गड़बड़ है।''

''क्या मतलब?.....मिस्टर खन्ना के घर।''

''उनका बेटा बुरी तरह चिल्ला रहा है मम्मी.....मम्मी। कोई ऐम्बुलेंस को फोन करो। मम्मी ठंडी पड़ रही हैं।''

''मुझे लगता है मिस्टर मेहरा का शक सही है। खन्ना साहब ने बीमारी छिपाने की कोशिश की है। उनकी पत्नी को पिछले सात–आठ दिनों से बुखार है और इन दिनों बुखार का मतलब ही कुछ और हो गया है। मैं कुछ अच्छा अनुभव नहीं कर पा रहा हूँ। पता नहीं क्या होने वाला है!''

पत्नी को काठ मार गया। वह कुछ जपने लगी। माधव झल्लाहट में कहने लगा–''देखो...यह एक तरह का आपराधिक कृत्य है। इन दिनों कोई बीमारी को छिपा कैसे सकता है? अपनी हरकतों का खामियाजा वह खुद भर रहे हैं। उन्होंने कुछ बताया नहीं और सोसाइटी से किसी एक घर ने मदद के लिए हाथ नहीं बढ़ाए। अब तुम सोचो कि अगर मिसेज़ खन्ना कोविड से पीड़ित हैं और उनकी शारीरिक स्थिति बहुत खबरा है तो यह कितना बड़ा

खतरा है पूरी सोसाइटी के लिए। अब तो दिल्ली में सरकार ने भी सरेंडर कर दिया है।''

विजया सोसाइटी के एक–दो व्हाट्सएप ग्रुप से जुड़ी थी। उसने वहाँ से पता करने की कोशिश्ज्ञ की। ठोस कुछ भी सामने नहीं आया केवल इतना ही पता चला कि मिसेज खन्ना को उनका बेटा अपनी कार में बाहर ले गया। कार में ले जाने से पहले लिफ्ट के पास उन्हें जमीन पर ही लिटाना पड़ा था। वह लगभग निश्चेष्ट.....स्थिर पड़ी थीं। दो लोगों ने व्हाट्सएप ग्रुप में लिखा था कि वह मरणासन्न थीं। कार में उन्हें ले जाने के बाद ऐम्बुलेंस आई।

माधव की शंका और गहरी हो गई। मानों प्रकृति ही संकेत दे रही हो–मिसेज़ खन्ना की हालत बिगड़ने से कुछ देर पहले ही वह भयावह आँधी आई थी। जब हवा सबकुछ उड़ा कर ले जाने को बह रही थी। खिड़कियों पर उसकी चोट आक्रान्त कर रही थी। वह व्याकुल–सा इधर–उधर घूमने लगा। जैसे उसके गले में दर्द हो रहा हो। उसने एक कप गर्म पानी पिया। सोफे पर आकर चुपचाप बैठ गया। सामने मेज़ परकुछ किताबें पड़ी थीं। उनमें से किसी एक किताब में रखा बुकमार्क न जाने कब से बाट जोह रहा था। माधव ने कितने दिनों से वह किताब नहीं उठाई। किताब के इकसठवें पृष्ठ पर धँसा बुकमार्क बाहर की ओर ताक रहा था। आज भी उसने पुस्तक नहीं खोली। बीते कुछ दिनों से उदासी इतनी हावी हो चुकी है कि पढ़ने–लिखने में भी उसका जी नहीं लगता। पुस्तक जो प्रकाशक के पास है, अब अधर में लटक गई है। उसका भविष्य अनिश्चित हो चुका है। और इन दिनों जो नया लेखन वह कर रहा, उस से भी मन उदासीन हो गया है। मानो वह अपने ही संसार से विरत हो गया हो।

***

नौ

उस रात वह देर तक करवटें बदलता रहा। तकरीबन तीन बजे झपकी आई। थका–हारा बोझिल बदन ढीला पड़ गया। सुबह आठ बजे जब उसने बिस्तर छोड़ा तो मिसेज खन्ना के बेटे की ही आवाज़ कानों में गूँज रही थी–मम्मी.....मम्मी.....तो ठंडी पड़ रही है!

पड़ोसी का घर बंद पड़ा है। आसपास कोई दिखाई नहीं दे रहा किससे पूछे.....कौन बताए कि क्या हुआ। उनकी तबीयत कैसी है.....सबसे बड़ी मुश्किल तो यह कि मर्ज़ पर मौन छाया हुआ है!

दिन का संगीत एकालापी हो गया मानों हारमोनियम का कोई कॉड दबाकर छोड़ गया हो। वह कर्कश–सा बजा जा रहा हो। न आगे देखने के लिए कुछ, न नया करने का कोई बहाना। दोपहर हो गई। उसने बाहर झाँक कर देखा। नीचे चुप्पी छाई हुई थी। गुलमोहर का पेड़ हौले–हौले हिल रहा था। जैसे.....कोई चोट खाने के बाद सँभल–सँभल कर चल रहा हो। उसकी शाखों का सौन्दर्य जा चुका था। अंधड़ में यहाँ–वहाँ से टूटी टहनियाँ लटक रही थीं। पेड़ को पागल हवाओं ने झकझोर डाला था।

उसके घर से बाहर का नज़ारा बस गुलमोहर से शुरू होकर गुलमोहर पर खत्म हो जाता था। सामने दूसरी सोसाइटी थी। वहाँ देखने के लिए कुछ नहीं था। पेड़ की घनी हरियाली और उस पर खिले लाल–लाल फूल बस इतना ही! सुबह और शाम के समय उस पेड़ को देखना सुखद था। ध्यानमग्न माधव के ठीक पीछे पत्नी खड़ी थी। वह चौंक कर पलटा। एक डरी–सी.....टूटती हुई धीमी आवाज़ आई–मिसेज़ खन्ना इज़ डेड!

वह स्तब्ध रह गया। उसे लगा जैसे अंधड़ में यहाँ–वहाँ से छिन्न–भिन्न हुआ गुलमोहर का पेड़ और उज़ गया हो.....वह भी अचानक ही। जैसे.....भीतर–भीतर जिस खबर को बीती रात से सुनता आ रहा हो.....वह अचानक कर्कश स्वरों में खुद को सुना गई हो। माधव ने देखा कि सोसाइटी के एक ग्रुप में लोग रिप.....रिप लिखे जा रहे हैं.....श्रद्धांजलि संदेश! उसने सावधानी से उन संदेशों को पढ़ना शुरू किया। मगर उन व्हाट्स एप मैसेज़ेस में घिसे–पिटे भाषायी रुदन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किसी ने यह लिखने या बताने की कोशिश नहीं की थी कि मिसेज खनना की दुखद मृत्यु कैसे हुई। यानी उनका जाना एक संदेह.....एक पहेली.....प्रश्न बन कर रह गया।

शाम होने वाली थी। वह अपने चेहरे पर कपड़े को अच्छी तरह लपेट कर धीरे–धीरे नीचे उतरा। पहले तल पर मिस्टर खन्ना के घर के पास थका हुआ अँधेरा पसरा था। गलियारे में एक सूनापन। दीवारों पर अंधी रिक्तियाँ। उनके दरवाजे पर ताला लटका था। वह एक–दो क्षण वहाँ रुक कर बहुत तेजी से नीचे की ओर भागा। मानों उस सन्नाटे से कोई परेशान करने वाली हवा उठी हो। बाहर सब कुछ यथावत था। दो बूढ़े दूर–दूर खड़े होकर बातें कर रहे थे। दो–तीन बच्चे अपनी दुनिया में मस्त.....साइकिल चला रहे थे। महिलाएँ सैर कर रही थीं। उनमें से दो के कानों पर हेडफोन लगा था। एक छोटी–सी सोसाइटी में मृत्यु एक अत्यंत छोटी घटना थी। मानों आँधी आकर चली गई, फिर सब सँभल गया वहीं रास्ते.....वही गाड़ियाँ। वही पेड़–पौधे। वही भाव–भंगिमाएँ।

***

दस

मई का महीना लगभग बीत चुका था। लॉकडाउन अब बहुत हद तक अपना अर्थ खोने लगा था। अधिकांश राज्यों में जीवनचर्या को सामान्य करने की पहल शुरू हो गई। मगर दुश्वारियाँ बढ़ने लगी। दिल्ली में कोरोना के मरीजों की संख्या बेतहाशा बढ़ रही थी। महाराष्ट्र.....तमिलनाडु.....गुजरात इन सभी राज्यों में मरीज़ लगातार बढ़ रहे। महाराष्ट्र तो जैसे हाथ से निकल ही चुका था। वहाँ की सरकार और प्रशासन केवल मूक दर्शक बने देख रहे। हर रोज हजारों की संख्या में लोग बीमार पड़ रहे थे।

माधव मौजूदा हालात पर विचारते हुए उन दिनों में लौट गया जब यह बीमारी देश में सिर उठा रही थी। फरवरी के आखिरी दिनों में देश के अलग–अलग प्रांतों में कोरोना के मरीज़ मंथर गति से बढ़ रहे थे। संक्रमण की रफ्तार बहुत धीमी थी। तब उसने कोरोना के वैश्विक हल्ले पर कुछ व्यंग्यात्मक तरीके से सोचा था। उसे लगता कि इस बीमारी का इतना हव्वा क्यों है। मध्य मार्च तक आते–आते भारत में हल्ला मचने लगा था। तब भी यहाँ संक्रमित लोगों की संख्या अन्य प्रभावित देशों के मुकाबले बहुत कम थी। अधिकांश लोग यह मान भी रहे थे कि एक–दो महिने की बात है, यह शोर–शराबा थम जाएगा। भारत में कोरोना से कोई मुश्किल नहीं होगी। उन्हीं दिनों देश में लॉकडाउन हुआ। सवा दो.....से ढाई महीनों में दृश्य पूरी तरह से बदल गया। भारत तेजी से इस वायरस की चपेट में आ रहा था। अमेरिका औ यूरोप के देशों से तुलनात्मक तौर पर कोरोना की संहारक क्षमता यहाँ बहुत कम थी। फिर भी कुछ हजार लोग इसकी जद में आ चुके थे।

अभी तक इस बीमारी का असर कुछ ऐसा था कि संचार के सभी माध्यमों पर सिर्फ कोविड–19 वायरस से जुड़ी खबरें दिखाई देती। टीवी..... मोबाइल फोन.....समाचार पत्र तक कोरोना से आक्रान्त थे। आम चर्चा और बहस–बातचीत में दूसरे मुद्दे गौण हो गए थे। लोग दूसरे विषयों पर बातें करते भी तो लौटकर इसी बीमारी पर आ जाते। जैसे कोरोना पूरी मानवीय चेतना पर चढ़ बैठा हो।

जून के पहले सप्ताह में हालात और बिगड़ गए। दिल्ली तो बेकाबू हो चुकी थी। अस्पतालों में बिस्तर कम पड़ने लगे थे। सरकारी दावों और विज्ञापनों की हवा निकल गई थी। कुछ दिनों पहले तक जो गरज–गरज कर कहते फिरते थे कि हमें ऐसे जीने की आदत डालनी होगी...वही अब समर्पण की मुद्रा में आ गए। कहीं से भी ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि ये हालात

सँभाल लेंगे या जल्दी ही इस आपदा पर काबू पा लिया जाएगा। अब तो सरकार ही परोक्ष रूप से कह रही है कि घर पर रह कर अपनी देखभाल करो.....दिल्ली के अस्पतालों में जगह नहीं है। यानी हम कुछ कर नहीं सकते। इतने दिनों में हमने तैयारी के नाम पर ज़मीनी स्तर पर कुछ नहीं किया.....। कोई आपदा प्रबंधन नहीं! न कोई दूरदृष्टि.....कल्याणकारी सोच! बस टीवी और अखबारों में हाथ धोने के विज्ञापन दिखाए.....छापे। वाह.....!

नौ जून की सुबह उसने फेसबुक पर अपने एक मीडिया के साथी को वीडियों में किसी को श्रद्धांजलि देते हुए देखा। माधव उस व्यक्ति को जानता था। पहले शायद कहीं किसी चैनल में वे साथ काम कर चुके थे। हमउम्र ही रहे होंगे। कोरोना से उस की मृत्यु हो गई थी। मीडिया के कई पुरानी साथी कोरोना से संक्रमित थे। कई ठीक हो कर घर वापस आ गए थे। कुछ अब भी अस्पताल में बीमारी से लड़ रहे थे। इस लॉकडाउन के दौरान जिन दो–तीन क्षेत्रों में कामकाज यथावत चलता रहा, उनमें से एक मीडिया भी था। वहाँ भी कुछ लोगों को घर से काम करने की छूट मिली लेकिन बहुत सारे लोगों को दफ्तर आना पड़ा था। रिपोर्टर लगातार फील्ड में काम कर रहे थे। वही संक्रमित होकर दूसरे साथियों को बीमारी बांट भी रहे थे। उनकी हालत भी वैसी ही थी जैसी पुलिसवालों की हो गई थी। रोकथाम और पूछताछ करने के क्रम में देश के अलग–अलग हिस्सों में सैकड़ों पुलिसकर्मी बीमार पड़ चुके थे।

अखबार बंद कर देने से वह खबरों के लिए वेबसाइट और सोशल मीडिया पर आश्रित हो गया था। वहाँ से नकारात्मक खबरें ही मिलती। सोशल मीडिया कोरोना के खबरों से भरा रहता। वेबसाइट्स पर भी आए दिन यही पढ़ने देखने को मिलता कि संक्रमण बेतहाशा बढ़ रहा है। दिल्ली के श्मशान से एक साथ कई लाशों की जलती हुई तस्वीरें सभी जगहों पर तैर रही थी। उन तस्वीरों–छवियों को देखते हुए माधव का मन विचलित हो जाता। क्या यह संक्रमण भारत पर कहर बन कर टूटेगा? क्या अब तक की सारी कोशिशें यूँ ही बेअसर हो जाएँगीं? क्या पूरा देश.....उसकी आपातकालीन योजनाएँ.....तैयारियां.....यह लॉकडाउन सब निरर्थक हो जाएँगे?

दस जून की सुबह उसने सोसाइटी के एक ग्रुप में संदेश पढ़ा–उसके ही ब्लॉक में एक फ्लोर ऊपर.....पति–पत्नी बुखार और गले में खराश से पीड़ित हैं। उन्होंने सोसाइटी के प्रेसिडेंट को ये जानकारी दी थी कि वे कोरोना की जाँच कराने के लिए प्राइवेट अस्पताल जा रहे हैं। माधव ने

अनुभव किया कि वह उसके पास आ गया है। एकदम पा। मानों उसका अदृश्य साया मन को ढँक रहा हो। उसके सीने पर हवा भारी–सी लगने लगी। जैसे साँस फूल रही हो। घर के बाहर–गलियारे उसे कुछ छुपाए हुए से दिखाई देते। मानों थके हुए सन्नाटे को सँभाले वे उसे घूर रहे हों, जैसे उनकी रिक्तियों में कोई प्रेत मंडरा रहा हो! वह लगभग दौड़ते हुए उन्हें पार कर जाता।

ठीक ऊपर के तल पर एक घर में उसकी दस्तक शायद हो चुकी है। दो फ्लोर नीचे जिस महिला के लिए बेटा मम्मी–मम्मी चीख रहा था, वह जा चुकी है। अब उस वृद्धा को नीचे सैर करते हुए वह कभी नहीं देख सकेगा।

सुबह कूड़ा उठाने वाला मनीष मुँह पर मास्क बाँधे घस्स–घस्स कर अपनी बड़ी–सी बास्केट फ्लोर पर खिसकाते हुए चलता है तो वह चुपके से दरवाज़ा भिड़का देता है। उसकी बास्केट घिसटती है। हौले–हौले वह एक फ्लोर से दूसरे फ्लोर पर चढ़ जाता है। घिसटने की आवाज़ बंद हो जाती है। वह किवाड़ के बाहर पौधों को देखता है। शंका उसे दबोचती है कि कहीं मनीष ने अपने हाथों से उन पत्तों को छुआ तो नहीं! शिव! शिव!! वह क्षमा माँगता है। तीन दिन पहले साँझ की झंझा ने उसके घर के सामने खड़ गुलमोहर को झकझोर डाला था। उसके पत्ते फूल डालियाँ.....सब छिन्न–भिन्न कर डाले। सलसल कर हिलता वह हरा–भरा गाछ बीमार दिखाई देता है। उसे देखकर दुख होता है। उसके पीछे दूसरी सोसाइटी में भी सूनापन रेंगता रहता है। इक्के दुक्के लोग, कामवाली बाई मुँह पर मास्क बाँधे दिखाई देती है।

अब नीचे खुले में भी कुछ खटका सा होता है। ठंडी हवा सहला कर जाती है तो वह सिहर उठता है। कहीं हवाओं के साथ वह तो नहीं.....! जैसे काले बादल आसमान के एक कोने से धीरे–धीरे उठकर उमड़ने लगते हैं वैसे ही डर उमड़ने लगा है। बाहर बाज़ार खुले हुए हैं। भीड़ बढ़ने लगी है पर सबकी चाल सहमी–सी है। सभी जल्दी में हैं। कोई रुक कर बात नहीं करता। सबको सबसे पहले सामान चाहिए।

परिचित दवा के दुकानदार से वह कोई आयुर्वेदिक दवा माँगता है तो उसकी पुतलियों पर प्रश्न फड़फड़ाते हैं। वह आश्वस्त करता है कि भाई ठीक हूँ! बस सुरक्षा घेरा बढ़ा रहा! वह चुपचाप दवा देकर मुरझाया हुआ सा हँसता है। कहता है.....सावधान रहिए! सोसाइटी में मामले बढ़ रहे हैं!! वह बस सुनता है। दुकानदार उसके भय पर भय का चक्र चढ़ा देता है।

अब हर दिन उसे एक कालकोठरी सा लगता है। घर में रहते हुए वह सुरक्षित अनुभव करता है और बाहर आशंकाग्रस्त आक्रान्त होता है। पर घर में कब तक रहे? गुड़गाँव में माँ–पिता और भैया–भाभी रहते हैं। उन्हें देखे हुए एक दौर बीत चुका है। कल किसी तरह से माँ ने वीडियो कॉल पर उसे देखा। बात नहीं कर सकी.....विह्वल होकर रोने लगी। बेटा....कितने दिन हो गए.....!!

मध्य जून से पहले ही दिल्ली की स्थिति भयावह होने लगी थी। हर दिन डेढ़ से दो हजार नए मरीज़ सामने आने लगे। यह आँकड़ा तब था जब टेस्ट कम हो रहे थे। अस्पतालों से डरावने, वीभत्स दृश्यों का आना जारी था। कहीं कूड़े में लाश पड़ी थी तो कहीं लॉबी में मरीज़ लेटे हुए पाए गए थे। सरकार लोगों में विश्वास बहाली के बदले भय का संचार कर रही थी। जो बाजार खुल गए थे.....वहाँ भीड़ बढ़ने से दुबारा दुकानों को बंद करने की बात शुरू हो गई थी। उस रोज़ सोसाइटी में सुबह–सुबह लोग इस बात पर बहस कर रहे थे कि क्या काम वाली बाइयों और कूड़ा उठाने वालों को घर जाने से रोका जाय। वह खामोशी से वार्तालाप सुन रहा था। कुछ लोग इस बात पर अड़े हुए थे कि घर–घर जाकर गार्बेज उठाने वाला मनीष खुद को बीमार कर सकता है और दूसरों को भी संक्रमित कर सकता है। सोसाइटी के भीतर ही कोरोना के दो–तीन मरीज़ हैं। उनका कहना था कि लॉकडाउन के प्रथम चरण में जिस तरह से लोगों ने अपने घरों से कूड़ा ले जाकर कूड़ाघर के पास रखा था उसी तरह से फिर से उन्हें बाहर रखने का सिलसिला शुरू होनो चाहिए ताकि मनीष घर–घर जाकर दस्तक न दे। मगर कुछ लोगों ने सीनियर सिटिज़न होने के नाते इसका विरोध कर दिया। माधव देख रहा था कि जिन लोगों ने खुद कूड़ा नीचे ले जाकर रखने का विरोध किया था, वे उम्रदराज तो थे मगर स्वास्थ्य संबंधी कोई समस्या उन्हें नहीं थी। वे अक्सर बाहर घूमते हुए भी देखे जा सकते थे। उसे तनिक अचरज भी हुआ कि इस मुश्किल समय में वे किसी खतरे को जानबूझ कर न्योता क्यों नहीं देना चाहते हैं.....? मगर हर बात के लिए कौन बहस करे! बुजुर्गों से बहस करने में उसकी कोई दिलचस्पी भी नहीं। कुछ हठी बुजुर्गों के कारण सोसाइटी के प्रेसिडेंट और दूसरे सदस्य झुकने को मजबूर हो गए। यह तय हुआ कि मनीष पहले की तरह घर–घर जाकर कूड़े उठाया करेगा। संक्रमण को दूर रखने के लिए सोसाइटी के हर ब्लॉक की सीढ़ियों और गलियारों पर छिड़काव किया जाएगा। इस छिड़काव के लिए वहाँ के एक सुपरवाइजर को जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

उस दिन उदासी बढ़ गई थी। हताशा और एक पीड़ादायी पाश उसे जकड़े जा रहे थे। दोपहर होते–होते उसे झपकियाँ आने लगीं। हाथ में रखा फोन छूट कर नीचे गिरने वाला था कि उसकी आँख खुल गई। तभी पत्नी की सुनाई एक खबर ने उसके सीने पर सौ मन का पत्थर रख दिया।

''ऊपर वाले फ्लोर पर मिस्टर साहा अकेले बीमार नहीं हैं!''

''क्या मतलब है तुम्हारा?'' माधव ने पूछा

''उनकी पत्नी और बेटा भी पॉजिटिव हैं। यानी पूरे परिवार में अकेली वृद्धा माँ अब तक बची हुई है। बेचारी कब तक बची रहेगी? हे प्रभु....''

''ओह.....यह तो बहुत बुरी खबर है। बूढ़ी माँ कैसे सुरक्षित रह पाएगी? और बूढ़ी अगर संक्रमित हुई तो बचना मुश्किल होगा। कैसी कठिन परीक्षा है!''

''हाँ.....वह तो खुद चल फिर भी नहीं पाती हैं। ऐसे हालात में कौन उनकी सेवा और देखभाल कर पाएगा? बाहार से भी किसी को नहीं लाया जा सकता।''

''यह तो बहुत बुरा हुआ। समझ में कुछ नहीं आता, क्या करें। कोई सहायता की बात सोची भी नहीं जा सकती। अजीब–सी उलझन है।''

''केवल प्रार्थना कर सकते हो.....और कुछ नहीं।'' इतना कहकर विजया वहाँ से चली गई। जिस सन्नाटे को इस छोटे से वार्तालाप ने भंग किया था, वह दुबारा कमरे को घेर कर बैठ गया।

यानी.....अब वह अजगर की तरह धीरे–धीरे बड़े से शिकार को दबोच रहा था। उसका मन काँप उठा। साहा जी के परिवार पर बड़ी विपत्ति आई है। एक बूढ़ी जो न चल सकती है.....न शौचालय जा सकती है.....न खुद बिस्तर से उठ सकती है.....भला कब तक बीमार बेटे–बहू से घिरकर सुरक्षित रहेगी? और वह अगर संक्रमि हो गई तो पहले से पाँच बीमारियों से पस्त उसकी देह इसे झेल सकेगी.....? यह क्या हो रहा है!

***

ग्यारह

कुछ दिनों पहले तक वह मान कर चल रहा था कि उसका रहन सुरक्षित है। वहाँ लोग बचे रहेंगे। बीमारी किसी को नहीं होगी। इस देशव्यापी आपदा में न जाने यह विश्वास कहाँ से आया था। मगर बीमारी ने पहली दस्तक के साथ ही उसकी सोसाइटी में अपना रौद्र रूप दिखलाया।

माधव का मन दहल उठा। उसने खिड़कियों से नीचे झाँक कर देखा। पूरे आवासीय परिसर में सूनापन छाया हुआ था। उसे लगा.....सामने बेंच पर बैठने वाला बूढ़ा कहीं चला गया है। घर के ठीक नीचे तेज़–तेज़ सैर करने वाले अधेड़ अचानक गुम हो गए हैं। बच्चों की डोलती साइकिलें अनिश्चित काल के लिए अपने–अपने स्टैंड में जा चुकी हैं। सीढ़ियों से सारी पदचाप उड़ चुकी है। वहाँ अब चढ़ने–उतरने की चुप सी लहर भर रह गई है। एक अदृश्य आरोह–अवरोह! जैसे मानुष गंध लिए पागल हवा अभी–अभी उन रास्तों पर गई हो!

यह सब अचानक हुआ है। जिस साँण को यहाँ अंधड़ आया जिसके वेग से गुलमोहर की शाखों से लेकर घरों के लोहे के छज्जे तक हवा में उड़–उड़ कर छितरा गए,उस आँधी के गुज़र जाने के बाद अचानक खन्ना साहब की पत्नी की मौत ने वहाँ सनसनी फैला दी थी। सोसायटी में और दो–तीन लोग बीमार हैं, यह खबर फैल चुकी है। उस मृत्यु और बीमारी के बाद से भय का साया बड़ा होता जा रहा है। लोग दुबक गए हैं। आज सुबह वह खिड़कियों के पास देर तक खड़ा रहा। वहाँ चुप्पी थी। नीचे से कोई नहीं गुज़रा। गाड़ी साफ़ करने वाले जल्दी–जल्दी कपड़ा मार कर चले गए। बस चिड़िया बोलती रही। ऐसा लगा जैसे सिहराती हवा उनके घर की चहारदीवारी को पार कर बगल वाले घरों में दाखिल हो चुकी हो। वहाँ भी कोई हलचल नहीं थी। बालकनी से भी लोगों ने झाँकना बंद कर दिया था।

यह सब कुछ दिनों तक यूँ ही चलता रहेगा। वह कुछ दिन कितना लंबा होगा, नहीं जानता। कोई नहीं जानता। ये गर्मियाँ यूँ ही बीतेंगी। बरसात भी शायद! कौन जाने.....जब सबसे बुरे हालात वाले प्रदेश में रहता हूँ तो पास के ही बहुत बेहतर प्रदेश को देखना पड़ता है! देखता हूँ! जानता हूँ..... ये दिन भी बीत जाएँगे! सबके अपने–अपने दौर के बुरे दिन बीत कर बासी पड़ चुके हैं!

उसकी तन्द्रा टूटी। मन कड़वा हो गया था। कहीं और जी लगता नहीं था। ध्यान बँटाने की कोशिशें भी नाकाम हो जा रही थीं। पढ़ने में मन नहीं लगता। अधूरी पुस्तक को आगे बढ़ाने के लिए बैठता तो आधे घंटे में ही ऊब होने लगती। मन रह–रह कर बीमारी और उससे जुड़े समाचारों पर चला जाता। भला कोई इस घेर.....चंगुल से कैसे बचे.....! कोई सिद्ध संन्यासी ही अपनी चेतना को नियंत्रित कर सकता है। और वह....! व्ह तो एक साधारण सा मनुष्य है.....छोटी–छोटी घटनाओं.....बातों का असर उसके चित्त पर पडता है, तो इस डरावनी बीमारी के दुस्तर जाल को कैसे काटे! वह चाहता तो था कि अपना ध्यान कहीं और लगाए लेकिन हालात ऐसे थे कि ध्यान लगाए न लगता। अगर कभी लग भी जाता तो किसी न सिकी खबर.....सूचना से वापस उसी मनहूस कोरोना पर आकर ठहर जाता। सबसे बड़ा संकट यह कि कोरोना अब यहाँ–वहाँ फैलने वाला रोग भर नहीं था..... वह तो मृत्यु बन कर उससे चंद कदम दूर पड़ोसी के घर दस्तक दे चुका था।

सोलह जून की सुबह एक खबर ने सोसाइटी के लोगों की चिन्ता बड़ा दी। व्हाट्सएप ग्रुप में एक तस्वीर वायरल हो रही थी। साहाजी के घर के सामने गलियारे में डस्टबिन खुला रखा था। उस कूड़े के ढेर में विष्ठा..... और डायपर्स भी थे। लोगों ने मिस्टर साहा के प्रति सहानुभूति जताते हुए भी कूड़े को बाहर इस तरह से छोड़ने का विरोध किया। मनीष ने वहाँ जाने से इनकार कर दिया। बिना पीपीई किट के कोई भी आदमी किसी ऐसे व्यक्ति के घर के बाहर पड़े कूड़े को क्यों उठाए जो इस छूत की बीमारी से संक्रमित है? कुछ देर तक लोग आपस में बहस करते रहे। किसी ने सुझाव दिया कि एमसीडी के लोगों को सूचित करने पर वो ऐसे घरों को चिन्हित करते हैं और साफ़–सफाई का ध्यान भी रखते हैं। लॉकडाउन के समय सोसाइटी को सील कर दिया जाता था लेकिन अब वह नहीं हो रहा। तकरीबन हर सोसाइटी में मरीज थे।

कुछ देर बाद सिक्योरिटी गेट से यह खबर मिली कि एमसीडी वाले आए थे। गेट के पास और गार्ड रूम में छिड़काव की रस्म आदयगी कर चले गए। सुपरवाइज़र ने बड़ी मिन्नते कीं लेकिन उन्होंने नहीं सुनी। सरकारी कामकाज का यह एक साधारण सा नमूना भर था। जिससे यह बात भी पुष्ट हो रही थी कि दिल्ली में कंटेनमेंट.....या रोकथाम के लिए सरकारी मशीनरी कितना बेअसर रही है।

सत्रह जून को एक छोटी–सी राहत भरी खबर मिली। खन्ना साहब और उनके बेटे दोनो की टेस्ट रिपोर्ट निगेटिव थी यह अब भी संदेह के परदों में ही दबा रहा कि उन्होंने होम क्वारंटीन कर खुद को ठीक कर लिया या वे संक्रमण से बचने में कामयाब रहे थे। जो भी हो.....कई दिनों से मनहूस खबरें सुन–सुन कर टूट रहे माधव के लिए यह समाचार गर्मी में पछवा हवा के झोंके की तरह आया जैसे तपते हुए रेगिस्तान में पानी की कुछ बूँदे दिखाई दे गई हों। लेकिन अभी तो लड़ाई बहुत लंबी है। सामने अंतहीन सूनी–सी सड़क दिखलाई दे रही। चुनौतियाँ इतनी बड़ी और व्यापक कि उन सबको तोड़ना आसान नहीं है। उस रोज़ जब वह ज़रूरत के सामान खरीदने बाहर निकला तो सड़क परपहले से कहीं अधिक सरगर्मी थी। वह अपार्टमेंट के सामने वाले रास्ते पर नज़रें गड़ाए सोचने लगा.....अब जबकि दिन अपने हाथ–पाँव खोल रहा है और लोग डरे सहमे ही सही, अपने जीवन के छूटे हुए सिरे को थामने की कोशिश कर रहे हैं, तब कुछ अत्यंत मामूली लोगों को संघर्ष देखकर मन द्रवित होता है। इस इलाके में एक झालमूढ़ी वाला घूमा करता था। ढाई महीने से उसे नहीं देखा। सूनी आँधी में सब उड़ गए। अभी तीन–चार दिनों पहले वह अचानक सड़क पर नज़र आ गया। उसे देखकर राहत–सी हुई मगर वो राहत कितनी छोटी थी। क्षणिक.....! नष्टप्राय.....सहज मरणधर्मा!

गर्दन पर बँधी एक रस्सी से लटका उसका वही पुराना टीन का कनस्तर था। उस कनस्तर में सजे उसके स्टील के छोटे–छोटे डिब्बे, जिनमें वह चने, नमकीन, प्याज, टमाटर वगैरह रखता है। उस दिन जब अरसे बाद वह नज़र आया तो सड़क पर चलता चला जा रहा था, निरुद्देश्य सा। आँखों में कोई आशा नहीं। आपसदारी का कोई आसरा नहीं। वह उसे दूर तक जाते हुए देखता रहा। किसी ने कोई डाक नहीं दी उसे। जो उसके पुराने परिचित खवैये रहे होंगे वे सब अत्यधिक सशंकित होकर उससे झालमूढ़ी खरीदने में डर रहे होंगे और जिन नए लोगों को अपना ग्राहक बनाने की उसे उम्मीद रही होगी, वे सब एक अनिश्चित समय के लिए लापता हो गए होंगे।

यानी, उसकी मुश्किलें अभी कम नहीं हुई हैं। आने वाले दिनों में भी कम न होंगी। दिल्ली की तो दुर्गथ्त होने वाली है। ऐसे अत्यंत छोटे लोग जो रेहड़ी पटरी लगाकर रोल, पकौड़ी, गोलगप्पे या चाय–पानी, बीड़ी–सिगरेट नहीं बेचते, उनके लिए ये दिन कितने आफ़त भरे हैं! उसे कुछ पंडित भी ध्यान आने लगे जो सुबह कतार से खड़े फल और सब्जी–भाजी बेचने वालों को मिसरी, रोली, चंदन आदि देकर पाँच दस रुपये पा लेते थे। वे भी लापता

हैं। इन दिनों में उनका जीवन कैसे बीता होगा? या आगे कैसे बीतेगा? कोई नहीं जानता।

इस कोरोना काल में रोज़मर्रा के खान–पान, या सब्ज़ी फल बेचने वालों के लिए मुसीबत सबसे कम रही। उनका कारोबार थोड़ा बहुत प्रभावित होकर चलता ही रहा है। चलना ही था। मगर ऐसे झालमूढ़ी वाले, रोली चंदन देकर पाँच दस रुपये पाने वाले लोगों के लिए यह समय डरावना है। यह डर अभी खत्म नहीं हुआ। अगर वे दुबारा इन सड़कों पर आ भी रहे हैं तो दुख.....निराशा टूटन और चिन्ता के साथ लौट रहे। किसी के कनस्तर में लुभावनी गंध वाली खाद्य वस्तुएँ अपनी महत्ता खोकर नष्ट हो रही हैं और किसी की साजी में रखे फूल सूख रहे हैं। देवताओं ने दोनों को देखना बंद कर दिया है।

दिन–रात महामारी और मृत्यु के दुखद समाचारों से घिरा मनुष्य क्या करे! कहीं से राहत की कोई खबर नहीं। अगर कुछ सुखद पढ़ने को मिलता भी तो जैसे अगले ही क्षण दुख और तनाव की बदली उमड़ आती। मानों..... समय को ही न जाने कुछ हो गया हो। कभी अंधड़.....कभी भूकंप.....कभी युद्ध का साया और बीमारी मृत्यु तो निरंतर। पिछले डेढ़–दो माह के दौरान देश के अलग–अलग हिस्सों में कई बार भूकंप के झटके आए थे। धरती के डोलने से कहीं नुकसान नहीं हुआ परन्तु भय का माहौल तो बना ही था। दो महीनों में दिल्ली करीब बारह बार डोल चुकी थी। यह सब जैसे प्रतीकात्मक था। साल 2020 न जाने कितने झटके दे रहा था! आधा वर्ष तो अविश्वास, आशंका.....भय और अनिश्चितता में बीत गया अब लोग कामना करने लगे थे कि यह वर्ष जितनी जल्दी हो.....समाप्त हो जाए। एक नया आरंभ हों। इसी वर्ष अर्थव्यवस्था को बड़ी क्षति पहुँची। नुकसान अभी थमा नहीं। ऊपर से युद्ध के बादल मँडराने लगे थे।

***

बारह

जून के तीस सप्ताह लगभग बीत चुके थे। अभी तक कोई सकारात्मक समाचार पढ़ने को नहीं मिला था। कोरोना के मरीजों की संख्या बेतहाशा बढ़ती जा रही थी। यह तादाद कभी एक दिन में दस हजार..... कभी ग्यारह तो कभी बारह–तेरह हजार तक जा पहुँचती थी। मौतों का आँकड़ा भी उस अनुपात में ऊपर उठ गया था। मौतों के बारे में सोचकर अचानक उसे कुछ याद आया। मिसेज खन्ना की कोरोना से मृत्यु हुई थी। लेकिन उस अंधड़ वाली शाम को उन्हें आनन–फानन में अस्पताल ले जाने के बाद बस इतनी–सी खबर ही सामने आई कि वह मर गई हैं। उनकी मृत्यु के बाद खन्ना साहब के घर का दरवाज़ा हमेशा बंद दिखा। मिसेज खन्ना का मृत शरीर भी किसी ने नहीं देखा। अचानक वह बच्चों की तरह विजया से पूछ बैठा.....''अच्छा....मिसेज खन्ना की डेड बॉडी यहाँ नही लाई गई थी?''

विजया कुछदेर तक उसे कौतुक से देखती रही। फिर बोली–''तुम पागल हो क्या....दिन भर कोरोना–कोरोना करते रहते हो और तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि इस बीमारी से मरने वालों का शव सीधे श्मशान ले जाया जाता है। संक्रमण का खतरा बना रहता।''

माधव को लगा जैसे किसी ने बुनियादी बात याद दिला दी हो।

''अरे हाँ.....लेकिन कितना अजीब है यह सब.....!''

''मिसेज खन्ना एक झटके में गुजर गई। जैसे तूफान आकर चला गया हो। न कोई अंतिम यात्रा.....न श्रद्धांजलि। श्राद्ध भी संभव न हुआ होगा। मैं कभी कोई हलचल तो नहीं देखता। घर का दरवाजा हमेशा बंद रहता है। बाहर एक थैला टँगा हुआ है। दीवार पर नोटिस चिपका है। मैंने उसे पढ़ने की कोशिश नहीं की है। उस ओर जाते हुए न जाने क्यों मन पछाड़ खाता है।''

''तुम बुद्धू की तरह बातें करते हो। उस ओर जाने की क्या पड़ी है तुम्हें? क्या तुम जानते नहीं कि इस वायरस ने सब कुछ तहस–नहस कर डाला है। कितनी विचलित करने वाली तस्वीरें आई हैं। देख–देख कर मन कलप उठता है। अस्पताल के बाहर प्लास्टिक के थैलों में लाशें ऐसे घसीटते हैं, जैसे कोई रद्दी सामान हो। हाँ, हाँ मैंने देखे हैं ऐसे कई वीडियोज..... जिनमें घर वाले दूर खड़े फफक कर रो रहे। किंकर्तव्यविमूढ़! उन्हें छू तक

नहीं सकते। दिवंगत को अंतिम स्पर्श करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह गई है! कैसा दारुण और त्रासद है यह सब! हतभाग्य मनुष्य!''

''रहने दो, तुम यह सब चर्चा मत करो। मेरा मन परेशान हो जाता है।'' माधव खामोश हो गया। आगे कुछ और कहने या पूछने की हिम्मत नहीं रही।

कितना विवश हो गया है आदमी! एक वायरस ने तीन–चौथाई दुनिया को घुटनों पर ला दिया है! उसके सारे दावे.....आधुनिकता के अहंकार, चकाचौंध, और धरती आकाश को मुट्ठी में कर लेने की अहंमन्यता वैसे ही ध्वस्त हो गई है जैसे भूकंप में भवन ध्वस्त हो जाते हैं! मनुष्य की उड़ान को एक अज्ञात शक्ति ने रोक लिया है! उसे पटक कर धराशायी कर डाला है! वह पददलित.....गिरा हुआ, हताश–बस घड़ियाँ गिन रहा कि कब इस बीमारी से उसे मुक्ति मिलेगी! और कब वह फिर से सामान्य जीवन जी सकेगा। अभी तो हालत ऐसे हैं कि मृत शरीर पर भी उसका अधिकार नहीं रहा!

लॉकडाउन खोले जाने के बाद से जीवनचर्या मंथर गति से अपने ढर्रे पर लौटने के लिए संघर्षरत थी। बहुत सारे दफ्तर खुल चुके थे। उनमें पहले की तरह काम–काज शुरू करने की कोशिशें चल रही थीं। बाजार की सत्तर–अस्सी फीसद दुकानों से शहर उठ चुके थे। सड़कों पर रेहड़ी पटरी वाले नजर आने लगे हैं। घर के पास रोल और पकौड़ियाँ बनाने वाले भी एक–एक कर लौटने लगे हैं। बस वहाँ जुटने वाली भीड़ नहीं है। लोग सशंकित हैं, खासकर बाहर खाने–पीने के प्रति। उसके घर के सामने बने मॉल में सन्नाटा छाया रहता है। उसने एक दो बार उधर झाँकन की कोशिश की है। कुछ हलचल दिखाई देती है। इक्के–दुक्के लोग आते–जाते नजर आते हैं। लेकिन वो रोशनियों के झालर.....और शामें सब चुपचाप कहीं चली गई हैं। मदिराप्रेमियों से भरा रहने वाला वह मॉल दिन रात पथराया हुआ अपने शीशें में खुद को झाँकता रहता है। पुलिस वाले गश्त लगाते हैं। शौकीन लोग उदास–उदास वहाँ से लौट आते हैं। मॉल के भीतर पचासों आधुनिक दुकानें हैं। तीन–चार बार हैं। उन सबके शटर–शीशे गिरे हुए हैं। वहाँ क्लान्त नीरवता पसरी रहती है। शाम होते–होते बत्तियाँ जल जाती हैं लेकिन वो रौनक नहीं रहती। बाहर रोशनी से रास्ते नहाए से दिखाई देते हैं, मॉल के भीतर बहुत कम उजाला रहता है। जैसे प्रकाश के हर प्रवेश पर अँधेरे का दरबान खड़ा हो। दिल्ली की हालात बिगड़ती जा रही थी। हर दिन नए मरीज बढ़ रहे थे। कंटेनमेंट जोन बढ़ते जा रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे हालात हाथ से रेत की तरह फिसल रहे हों। केन्द्र की सरकार ने

दिल्ली के मालिक के साथ बैठक कर स्थिति को काबू में करने की पहल शुरू की। मगर अभी उसके नतीजे सामने नहीं आए। राजनीति जरूर शुरू हो गई थी। दिल्ली की सरकार ने पहले तो दावे किए थे कि उनके पास कोरोना से लड़ने के पुता इंतज़ाम हैं। अस्पतालों में बिस्तरों की कमी नहीं है। लेकिन जैसे ही देश की राजधानी में संक्रमित मरीजों की संख्या बढ़ने लगी, एक तरह से बेकाबू होने लगी, सरकारी व्यवस्था का सच सामने आता चला गया। सच भी इतना स्तब्धकारी कि आदमी ठहर कर सोचने को विवश हो जाये! अच्छा तो यही हैं वो इंतज़ाम! स्रकार के वित्त मंत्री कोरोना से पीड़ित हुए। जब उनकी हालत बिगड़ी तो अपनी ही सरकार के अधीन अस्पताल से निजी अस्पताल में ले जाना पड़ा। जब दिल्ली सरकार के वित्तमंत्री का इलाज भी वहाँ के सरकारी अस्पताल में नहीं हो पा रहा तो आम लोगों को कौन पूछे!

दिल्ली की सरकार सरेंडर करने की मुद्रा में आ चुकी थी। पिछले बीस–पच्चीस दिनों से सरकारी विज्ञापनों में बार–बार यही कहा जा रहा कि लोग सावधान रहें। साफ–सफाई का ध्यान रखें। बाहर कम जाएँ। अगर बीमारी के लक्षण नजर आते हैं तो घर में ही खुद को सेल्फ क्वारंटीन कर लें। यानी अस्पतालों में उनके लिए व्यवस्था नहीं है! इस तरह से हजारों लोग अपने–अपने घरों में निर्वासित होकर बीमारी से मुक्ति की प्रार्थना कर रहे थे। शायद यही वजह थी कि दिल्ली में दूसरे राज्यों के मुकाबले मृत्यु दर अधिक थी। केन्द्र की सरकार ने जब से दखल दिया तब से राजनीतिक रस्साकशी का नया दौर शुरू हो गया। केन्द्र सरकार ने सभी होम क्वारंटीन लोगों को तत्कालिक अस्पतालों में शिफ्ट करने की बात शुरू की। उनका मानना था कि घरों में रहकर अपना इलाज खुद ही करते रहने से कहीं बेहतर है सरकारी निगहबानी में इलाज होना। बस यही वो मुद्दा था जिसने दोनों मुखियाओं के बीच एक नए युद्ध को जन्म दे दिया। साफ था कि आदमी की जान से कहीं कीमती थी साख। साख पर संकट था। और उसे बचाने की आपाधापी बड़ी थी। दिल्ली में लोग मर रहे हैं.....अस्पतालों में उन्हें जगह नहीं मिल रही.....निजी अस्पतालों में बड़े लोगों के अलावा आम लोगों का जाना संभव नहीं तो क्या हुआ.....! लोग तो पूरे देश में मर रहे! आश्चर्य की बात यह कि पास–पड़ोस के ही दो–तीन राज्यों में स्थिति अच्छी थी। वे भौगोलिक रूप से दिल्ली से बहुत बड़े थे और वहाँ की जनसंख्या भी बहुत अधिक थी।

माधव के लिए इससे बड़ी हताशा और क्या हो सकती थी कि जब उसे स्थिति में सुधार की उम्मीद थी.....तब वह खराब होती चली गई। दिन

बीत रहे थे। दिनचर्या आम हो रही थी। बीमारी पसरती जा रही थी। दिल्ली से कहीं बाहर जाना लगभग असंभव था। जहाँ जाओ वहीं मुश्किल..... पूछताछ.....संदेह। अच्छा दिल्ली से आए हो.....फिर तो टेस्ट रिपोर्ट दिखलाओ!

यहाँ के बहुत सारे लोग भाग कर हरियाणा और उत्तर प्रदेश के नजदीकी शहरों में कुछ दिनों के लिए घर खोज रहे। उनमें से कई व्यवसायी तो ऐसे भी हैं जो मकान मालिकों को मुँहमागी रकम देने को तैयार हैं.....मगर पास–पड़ोस के लोग सवाल उठाने लगे तो दिल्ली वालों के लिए वहाँ भी ठौर न रहा। लॉकडाउन खत्म होने का मानी ही बेकार हो गया। बाजार से लेकर दफ्तर तक खुलने लगे लेकिन कहीं भी जाना पहाड़ हो गया। क्या पता.....कौन संक्रमित होकर घूम रहा हो! दूसरा बड़ा खतरा यह भी कि दुकानों–बाजारों में लोग पास–पास खड़े हो जाते। बहुत सारे लोगों ने मान लिया था कि चेहरे पर मास्क.....कपड़ा लगा लेने भर से समस्या खत्म हो जाती है।

21 जून को सूर्यग्रहण लगा था। यह ग्रहण विशिष्ट था। ग्रह–नक्षत्रों की दशा कुछ ऐसी बन र ही कि कभी–कभार ही वैसी बन पाती है। इस स्थिति में ग्रहण को बेचे जाने का जोर चल रहा था। एक तो महामारी से संकटापन्न देश और दुनिया, दूसरी ओर सीमा पर चीन से संघर्ष जैसे हालात और इसी बीच में चूड़ामणि ग्रहण। टीवी चैनल पर ज्योतिषियों की मंडी लगी थी। सबने अपने–अपने दावे ठोंक दिये थे। सोशल मीडिया पर अनिष्ट की चेतावनियाँ घूम रही थीं। इस बीच विज्ञान वाले इनका उपहास करने में तल्लीन थे। स्थिति कुछ ऐसी बन गई कि ज्योतिषी कुछ अनहोनी पर अड़े हुए थे और वैज्ञानिक उन्हें जोकर सिद्ध करने के क्रम में पूरी प्राचीन खगोल विद्या और ज्योतिष शास्त्र को ही खारिज करने पर उतारू थे। माधव का मन खिन्न हो गया। तभी उसका फोन बज उठा। दूसरी ओर प्रकाशक था। उसकी आँखें बड़ी हो गईं।

''हैलो.....कैसे हों आप?''

''ठीक हूँ। कैसा होना है.....यह तो आप जान ही रहे।''

''हाँ, कुछ समझ में नहीं आता, क्या करें।''

''कोई बात नहीं सर। आप आज मिल सकते हैं क्या?''

''आज.....हाँ, क्यों नहीं। कब आऊँ?''

''शाम को छह बजे के आसपास आइये।''

''ठीक है।''

''अच्छा इंतजार करूँगा।''

इस छोटी–सी बातचीत ने ठहरे हुए तालाब में तरंगें पैदा की। बातचीत खत्म हुई तो चिन्ता की कुंभियाँ वापस पानी को घेरने लगीं। कमरे में दुबारा सन्नाटा छा गया। टीवी का शोर पहले ही उसने म्यूट कर दिया था। पत्नी ने उसकी बातचीत सुनी तो कुछ शिकायती तेवर में बोल पड़ी; ''आज ही बाहर जाना ज़रूरी है तुम्हारा? आज ग्रहण है ना।''

माधव तमतमा उठा। ''ग्रहण है.....ग्रहण है.....कल से तुमने यह कह कह कर जीना दूभर कर दिया। सुबह से दो बार नहा चुका हूँ तुम्हारे चक्कर में। अन्न का एक दाना पेट में नहीं गया। अंतड़ियाँ जल रही हैं और अब तुम सिर भी खाने लगीं। ग्रहण तो खत्म हो गया ना। बाहर देखा....सूर्य देवता एकदम दमक रहे हैं। मैं शाम को ही तो जा रहा हूँ। तीन महीने बीत चुके हैं। नजरबंद हो गया हूँ। इस इलाके से बाहर कदम नहीं रखा। दम घुट रहा है मेरा। मुझे अपनी पुस्तक के सिलसिले में बाहर तो जाना ही होगा।''

''हाँ.....तुम्हारी तकलीफ तो समझ रही हूँ। बाहर गए बिना तुम्हें चैन नहीं पड़ता। इतने दिन कैसे रह गए, पता नहीं।''

''क्या मतलब है तुम्हारा.....?''

''कोई मतलब नहीं। तुम जाओ....बस इतना याद रखना कि तुम अकेले नहीं हो। बाहर जाने का मतलब संक्रमण का खतरा भी है।''

''हाँ.....एकदम सही कहा। संक्रमण का खतरा तभी होता है, जब मैं अपने काम से बाहर जाने का सोचता हूँ। जब तुम मुझे बाजार भेजती हो..... यहाँ–वहाँ से सामान लाने को कहती हो तब संक्रमण नहीं होता! तब सड़कों और दुकानों में लोग नहीं होते....!''

इसके बाद बहस संग्राम का रूप लेने वाली थी। विजया चुप रह गई। माधव ने भी तलवार म्यान में घोंप दी। घर में तनाव भरी चुप्पी छा गई।

***

तेरह

पिछली बार जब माधव प्रकाशक से मिलने गया था तब उसने मेट्रो का चुनाव किया था। दिल्ली में जहाँ–जहाँ मेट्रो ट्रेन जाती, वहाँ जाते हुए वह कभी कभार ही अपनी कार ले जाता। लेकिन आज तो उसे कार से ही जाना था। लॉकडाउन के बाद से बंद पड़ी मेट्रो अब तक वापस नहीं दौड़ी थी।

शाम के साढ़े पाँच बजे.....वह तैयार होकर नीचे उतरने ही वाला था। जाने से पहले पत्नी से कोई ब्रूस कर जाना चाहता था। मन खट्टा कर निकलने की इच्छा नहीं थी। उसने एक उम्मीद से विजया को देखा। पत्नी भी समझ गई। उसके माथे पर विभूति लगाते हुए बोली; कहना ज़रूरी नहीं है.....बी केयरफुल.! माधव चुप रहा। हल्की–सी चपत उसकी पीठ पर लगा कर वह घर से बाहर निकला। चेहरे पर कपड़ा कसकर बँधा हुआ था। बाहर सड़क पर लोग दिखाई दे रहे थे मगर आवाजाही आम दिनों जैसी नहीं थी। सामान्य दिनों के मुकाबले तीस फीसद लोग थे। गाड़ियों की संख्या भी उतनी ही रही हो शायद। सड़क पर उसकी कार दौड़ रही थी। आम तौर पर ऐसी खाली सड़कें दिल्ली में रविवार या खास छुट्टियों के दिन ही होती थीं। तब ड्राइव करने में एक सुकून सा होता। आज इस खालीपन में वह मुक्ति नहीं थी। वह सुकून.....सबकुछ ठीक...सामान्य होने का अहसास नहीं था। हवा में चिन्ता घुली हुई थी।

मुश्किल से सात मिनट में उसकी कार मयूर विहार से प्रगति मैदान का इलाका पार कर गई। आधे से कम समय में वह कनॉट प्लेस के करीब था। शाम के समय वहाँ भीड़ होती है, आज तो सब कुछ सहजता से सरक रहा था। न गाड़ियों की कतार, न लोगों की भीड़। बहुत सारी दुकानें खुल गई थी। उनमें लोग नहीं थे। इक्के–दुक्के मँडराते हुए दिख पड़ते। उन चिरपरिचित गलियारों में फिरने वाले कम उम्र युवक–युवतियाँ तक नदारद। ठेले.....रेहड़ियों और खोखे पर चाट....पकौड़ियाँ बेचने वाले थे। उन्हें खाने वाले आधे से भी कम हो गए थे। कुछ एक कोनों पर एक–दो आदमी सीली हवा में भुट्टे सेक रहे। इन सबको देखते हुए न जाने कब वह प्रकाशक के दफ्तर के पास पहुँच गया, उसे पता भी नहीं चला। वहाँ आम दिनों में पार्किंग का बड़ा संकट होता था। आज वह भी आसान था।

कार पार्क कर वह पहले तल पर पहुँचा। दफ्तर में सन्नाटा था। रिसेप्शानिस्ट काम पर नहीं आई! डसने पहले कमरे में कुछ देर ठिठक कर देखा। शंका जब दूर हो गई तो वहीं से पुकारा.....

''अशोक जी.....!''

अगले ही पल कुर्सी खिसकाने की आवाज़ आई। अशोक अपने कमरे से बाहर निकल कर सामने आया।

''अरे.....आप यहाँ क्यों खड़े हैं? सीधे अंदर आ जाते ना। आजकल तो कोई होता नहीं। प्रमिला को भी छुट्टी दे दी है। सप्ताह में दो दिन आती है। भीतर भी सिर्फ एक लड़का आता है।''

''मैंने सोचा.....वह कहीं गई हुई है। इसलिए इंतजार कर रहा था।''

''नहीं.....नहीं। अभी भीड़ जुटाने से क्या होगा।''

''हाँ.....वो तो आप ठीक कहते हैं।''

दोनों भीतर वाले कमरे में बैठ गए। उनके बीच करीब छह–सात फुट की दूरी थी। हाथ मिलाने की औपचारिकता भी नहीं निभाई गई।

''आप क्या सोचते हैं?'' अशोक ने कुछ अनमने ढंग से पूछा।

''कुछ समझ में नहीं आ रहा। तीन महीने तो पूरी तरह से बर्बाद हो गए। इस किताब से कुछ उम्मीदें थीं। अब पता नहीं।''

''उम्मीदें थीं तो पूरी होंगी। आप ऐसा क्यों सोचते हैं। मुझे देखिए, एक किताब नहीं छाप सका। जितने स्टाफ हैं उन्हें सैलेरी भी देनी पड़ रही है। आमदनी साफ हो गई है। क्या करूँ.....!''

''हाँ.....वह तो समझ सकता हूँ। अभी प्रकाशित करना ठीक रहेगा क्या?''

''देखिए माधव जी, अभी सब कुछ खुलने लगा है। करीब पचास से पिचहत्तर फीसदी तक बंदी खत्म हो गई है लेकिन जीवन अब भी वापस कहाँ लौटा है। पच्चीस फीसदी भी नहीं। सभी जगहों पर डर छाया है। मामले तो बढ़ते ही जा रहे हैं। पता नहीं चल रहा, क्या करना चाहिए? सोशल मीडिया पर लोग किताबें खरीदते हुए दिख रहे हैं क्या? लोगों में दो–तीन सौ रुपये खर्च करने की दिलचस्पी है?''

''यही सवाल मेरे मन में भी घुमड़ता रहता है। मशहूर लोगों की किताब के खरीदार ही बहुत कम हो गए हैं। ऐसा मुझे लगता है। पता नहीं क्या स्थिति है। लोगों के मन को पढ़ पाना इतना आसान नहीं है। फिर भी मुझे लगता है कि इस नीरस हो चुके जीवन में किताबें काम की चीज़ साबित हों। लोग पढ़ना चाहें शायद....''

''हाँ.....मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। अब तो ऑन लाइन खरीदारी भी धीरे–धीरे रफ्तार पकड़ रही है। पिछली किताबों के ऑर्डर आने लगे हैं।''

''अच्छा.....तो फिर आप जो ठीक समझे। मेरे हिसाब से किताब छापने का फैसला सही रहेगा।''

''ठीक है माधव जी.....हम कोशिश करते हैं कि दस दिनों में पांडुलिपि मुद्रण में चली जाये। पहले पाँच सौ प्रतियों का ही ऑर्डर दूँगा। क्या कहते हैं आप? एक बार लोगों का मन देख लें तो फिर धड़ाधड़ छाप दूँगा।''

''ठीक है।''

इस संवाद के बाद वहाँ चुप्पी छा गई। करीब पाँच मिनट तक दोनों खामोश रहे। मौन को तोड़ते हुए अशोक ने पूछा...''चाय पियेंगे क्या? नीचे वाला लड़का लौट आया है। आपको तो अच्छी लगती है उसकी चाय!''

''हाँ.....चाय तो ठीक होती है उसकी मगर अभी रहने दीजिए। ईमानदारी से कहूँ तो बाहर का खाना–पीना छोड़ ही दिया है।''

''आप कुछ ज्यादा परेशान हो गए इस कोरोना–काल में.....!'

''दरअसल इसके संक्रमण की तीव्रता परेशान करती है।''

''वैसे.....सही तरीका यही है कि आदमी कुछ दिनों तक इस लोभ लालच और अपनी आदतों से दूर रहे। बेहतरी इसी में है।''

माधव ने हामी में सिर हिलाया।

''अब चलना चाहिए मुझे।''

''ठीक है सर।''

''मैं आपसे फोन पर बात करूँगा। यहाँ आने की तकलीफ नहीं उठानी होगी।''

''तकलीफ जैसी कोई बात नहीं.....। मुझे लगता है आना ज़रूरी नहीं है। सबकुछ तो तय ही है। आप पांडुलिपि प्रिंट में भेज देंगे तो मुझे इत्तला कर दीजिएगा।''

''अच्छा तो चलूँ.....?''

''जी। नीचे तक छोड़ने आऊँ क्या?''

''माधव ने हँसते हुए कहा.....इतनी औपचारिकता! आप आराम से बैठिए.....मैं चलता हूँ।''

वह सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। वहाँ उदास उजाला था। दो बत्तियाँ जल रही थीं। उनकी चमक फीकी थी। नीचे स्ट्रीट लाइट रोशन थी। दुकानें प्रकाश से नहाई हुईं। भीतर असारता का आलोक तीखा लग रहा था। भन्न–भन्न करता हुआ सन्नाटा! ब्हुत सारी दुकानें बंद हो चुकी थीं। कनॉट प्लेस आम तौर पर जल्दी बंद होने वाला इलाका तो है लेकिन इन दिनों तो शाम के सात बजे ही वह सूना होने लगता। पब्लिक ट्रांसपोर्ट गायब। इक्की–दुक्की बसें चली जा रहीं। दस–बीस निजी वाहन दिल्ली के इस इस भीड़ भरे इलाके में छाए सूनेपन को चीरते चले जा रहे। जनपथ लगभग जनविहीन हो चुका था। इनर सर्किल का पार्क रिक्त। वहाँ लगा हुआ तिरंगा झुका–झुका सा बुझा लहरा रहा था।

उसने इनर सर्किल का पूरा चक्कर काटा। जनपथ पर दुबारा लौटते हुए इंडिया गेट की ओर बढ़ने लगा। अचानक उसके पीछे से एक ऐम्बुलेंस कर्कश आवाज़ में शोर करता हुआ गुजर गया। कार के भीतर बैठे–बैठे ही उसे सिहरन सी हुई। छोटे से ऐम्बुलेंस में मास्क पहने दो लोग जड़वत बैठे थे। उनके बीच कोई बदहवास पड़ा था। कौन जाने उसे क्या कष्ट था। शहर में ऐम्बुलेंस का गुजरना साधारण था। उसने कई बार तो भीड़ के बीच उन्हें बड़ी देर तक फँसे हुए भी देखा था। तब एक बेचैनी उसे घेर लेती। आज घबराहट हुई। ऐम्बुलेंस कुछ ही पलों में आँखों से ओझल हो गयी। दूर गोलंबर पर उसकी लाल बत्ती धुँधली पड़कर बुझ गई और एक थकी हुई शांति चारों ओर फैल गई। वह ली मैरिडियन की झिलमिलाती अट्टालिका के पास से गुजर रहा था। वहाँ के ज्यादातर आलीशान कमरों में अँधेरा पसरा था। गाहे–बगाहे पीली रौशनी का चौखटा दिख पड़ता जैसे शतरंज की बाज़ी में सफेद मोहरों की हार होने वाली हो। इंडिया गेट लगभग खाली था। सड़े हुए पानी में कुछ टूटी–फूटी डोंगियाँ सैलानियों की बाट जोहते–जोहते ठहर गई थीं। शहर को जैसे साँप सूँघ गया था। सवा सात ही तो बजे थे अभी.....

चौदह

हर सुबह की तरह आज भी उसने फोन उठाया। अब कोरोना से संबंधित समाचार या रिपोर्ताज पढ़ते हुए उसे कोई उम्मीद नहीं होती। वह एक खटकेक के साथ खबरें पढ़ता और उदासी से भर कर बैठ जाता। आज की रिपोर्ट बेहद खराब थी। दिल्ली में एक दिन में सबसे अधिक संक्रमित मरीज मिले। देश के किसी भी राज्य में इतने मरीज एक दिन में कभी नहीं मिले। चार हजार केस! चौबीस घंटे में चार हजार लोग! क्या हो गया है इस शहर को.....यहाँ तो जैसे विस्फोट हो गया है! सारी तदबीरें उलटी पड़ती जा रही हैं! हर इंतज़ाम का दावा गलत साबित हो रहा। हर उपाय व्यर्थ। दिल्ली अब तमिलनाडु को पीदे छोड़कर दूसरे नंबर पर आ चुकी है। मुंबई भी पीछे छूट गई। जिस रफ्तार से यहाँ बीमार लोगों की संख्या बढ़ रही है, वह भयास्पद है।

मानसून की पहली फुहार के साथ खतरा बढ़ रहा है। कौन जाने जुलाई और अगस्त के महीनों में इस शहर का क्या हाल होगा! अभी यहाँ कोरोना से कोहराम मचा हुआ है। बरसात के साथ डेंगू और चिकनगुनिया सिर उठाएँगे। यानी मुश्किलें कम होने वाली नहीं हैं! चौतरफा आफत है.....न जाने कब यह दौर खत्म होगा.....कब जिन्दगी पहली–सी होगी? कब मनुष्य स्वच्छंद होकर जी सकेगा....लोगों से मिल सकेगा? बाहर जाते हुए उसे सोचना नहीं होगा! कुछ खरीदते हुए वह हिचकेगा नहीं! कितनी अजीब बीमारी है यह.....कि इंसान हमेशा सावधान की मुद्रा में रहने लगा है! घर से लेकर बाहर तक हमेशा एक तैयारी के साथ उसे जीना पड़ रहा है! न तो वह किसी से हाथ मिला सकता! न धड़ल्ले से कुछ खरीद सकता! न भीड़ में कहीं जा सकता! मंदिरों के कपाट तक मौन साधे कब से बंद पड़े हैं! देवताओं की प्रतिमाएँ भी छुपा ली गई हैं.....सुरक्षा घेरे में! सबकुछ ठहर गया है!

लोग कहते हैं कि इस बीमारी के साथ ही रहने की आदत डालनी होगी। रह तो अब भी रहे हैं। कौन सा जीना छोड़ा दिया है.....मगर त्रास तो पीछा छोड़ता नहीं। डर से छुटकारा कहाँ मिलता है। सहजता जीवन की छीन ली गई है। ऐसा शापित जीवन भला कोई कैसे जिये.....! बाहर निकलने से पहले दस बार विचार करना पड़ता है! बिना मास्क या मुँह ढँके निकल ही नहीं सकते! कैसी सज़ा है! इस शहर में आम दिनों की तरह रह नहीं सकते। इस शहर से कहीं बाहर जा नहीं सकते। जहाँ बीमारी का असर कम

है.....जहाँ स्थिति नियंत्रण में है.....वहाँ भी नहीं। अगर किसी तरह से चले भी जाएँ तो वहाँ के लोग दिल्ली का नाम सुनकर ही दरवाजा बंद कर लेंगे। हे ईश्वर....न जाने कब इस कैद से मुक्ति मिलेगी!

दरवाजा खोलकर वह अपने फ्लैट के सामने पत्नी की लगाई छोटी–सी बगिया को देखने लगा। फूल सारे झड़ चुके थे। डेज़ी....पेटूनिया..... पैन्सी सभी पुष्पविहीन होकर थिर खड़े झि। इस बार बसंत ऋतु बीतने के साथ जब उनकी विदाई हुई तो जीव जगत के सब रंग भी उड़ गए। हरे, लाल, नीले, पीले.....चंपई रंगों के वे सुन्दर–सुन्दर फूल अब नजाने कब खिलेंगे फिर से! वह उदास होकर उन्हें देखने लगा। तभी पड़ोस में रहने वाला देवेन्द्र भैया ने दरवाजा खोला।

''राम राम जी.....''

''राम राम.....कैसे हैं भैया.....''

''ठीक हैं। आप ठीक हो ना.....''

''जी.....ठीक ही कह सकते हैं। और क्या कहूँ।''

''हाँ.....वो तो हम समझ ही रहे.....''

''अरे इतने दिन हो गए। लगभग तीन महीने। बल्कि उससे भी ज्यादा समय बीत चुका है। चाय तो पी लो साथ कभी! आज शाम को आओ।''

माधव एक पल के लिए ठिठक गया फिर बोल पड़ा–''सोचा तो कई बार....थोड़ी झिझक हो रही थी। मुझे लगा इन दिनों में कोई प्रस्ताव देना ठीक नहीं होगा। लेकिन अब कितना डर–डर कर जिये आदमी। हम और आप तो सावधान हैं। आज आता हूँ शाम को छह बजे। समय ठीक रहेगा ना?''

''अरे आ जाओ। इतना क्या सोचना।''

''आज आऊँगा। शाम को पक्का मिलते हैं। आप के हाथ की चाय पिये हुए भी बहुत दिन हो गए हैं।''

''आओ यार।''

यह संवाद दोनों अपने–अपने घरों के दरवाजे के पास खड़े होकर कर रहे थे। एक लंबे से गलियारे में एक सीध में तीन फ्लैट थे। चौथा फ्लैट गलियारे बीच नब्बे डिग्री के कोण पर था। देवेन्द्र बक्षी और माधव के घर के

बीच उस गलियारें में कोई बीस फुट की दूरी होगी। बातचीत के दौरान दोनों अपनी–अपनी जगहों पर खड़े रहे। किसी ने आगे बढ़ने की पहल नहीं की। आम दिनों में ऐसा नहीं होता था। दरवाजा बंद करते हुए माधव सोचने लगा कि शाम को वह देवेन्द्र भैया के घर जा सकेगा क्या.....?

विजया उसके ठीक पीछे खड़ी थी। ''क्या बात है? कहाँ जाने वाले हो.....''

''कहीं नहीं। हर बात पर तुम्हारे कान खड़े हो जाते हैं। बक्षी भैया बुला रहे चाय पीने। तीन महीने से हमने एक–दूसरे के घर झाँका तक नहीं।''

''तो क्या कर सकते हो? अभी तो दिन ही ऐसे हैं। अपने माँ–बाप को देखने तक नहीं जा सके हो।''

बात तो सच थी। एक कड़वा सच। वह अपने माँ–पिता और भाई तक से नहीं मिल सका था इन दिनों। यह बात उसे दिन में कई बार परेशान भी करती थी। लेकिन हर बार वह मन मसोस कर रह जाता।

शाम को पौने छह बजे वह अपने फ्लैट से बाहर निकला। विजया कुछ बोल नहीं सकी। वह भी जानती थी कि भैया स्वयं बहुत सतर्क हैं। कम से कम बाहर निकलते। दरवाजा से बाहर जाते हुए उसने माधव से पूछा–मैं भी आऊँ क्या?

''आ जाओ। वह तो पूछेंगे ही कि विजया क्यों नहीं आई।''

वह एक पल के लिए चुप हो गई। ऊहापोह ने उसे घेर लिया, फिर टालती हुई बोली–जाओ.....फिर कभी!

माधव ने दुबारा जोर नहीं डाला। चुपचाप चल पड़ा। उनके घर का कॉलबेल छूते हुए उसे थोड़ी हिचक हुई। उसने उँगलियों के बदले कोहनी से स्विच दबाया। घंटी बजी। पाँच सेकेंड के बाद उधर से आवाज आई– आया... ....जैसे समझ गए हों कि बाहर कौन खड़ा है। इन दिनों आता ही कौन था! कभी कोई डिलिवरी ब्वॉय आ गया बस।

बक्षी भैया ने दरवाजा खोलते हुए मुस्करा कर कहा.....आ ही गए आखिरकार.....!

''हाँ.....अब कितना डर–डर कर जिएँ।''

''यार, बड़ी अजीब सी जिंन्दगी हो गई है। इतना सोचना पड़ रहा कहीं आने–जाने से पहले। आओ बैठो।''

माधव ने चप्पल दरवाजे के पास ही उतार ली थी। हालाँकि वे बार–बार कहते रहे कि चप्पल पहने रहो.....यहाँ चलता है। मगर उसने जैसे अनसुना कर डाला। इन दिनों तो खास ख्याल रखना ज़रूरी था।

''और सुनाओ.....कैसा चल रहा है।''

''क्या चलेगा.....आप देख ही रहे।''

''हाँ.....अब तो समझ में नहीं आ रहा कि यह रोग कब खत्म होगा।

जितनी अटकलें थीं सब नाकाम हो गईं। यह तो दिनों–दिन बढ़ता ही जा रहा। जैसे सुरसा हो।''

''बड़ी ही अजीब–सी स्थिति हो गई है। विज्ञानियों से लेकर ज्योतिषियों तक के गणित विफल होते जा रहे हैं। अब तो आमफ़हम है कि बीमारी दीवाली के पहले नहीं घुटने टेकने वाली।''

''कुछ किया नहीं जा सकता। जैसे–तैसे रहना होगा। एक ही तरीका है। बाहर कम से कम निकलो। मास्क लगा कर जाओ। हाथ धोते रहो। मुश्किल तो है यह सब करते रहना मगर कोई उपाय भी नहीं है।''

''देखिए....यह सब साफ सफाई और सतर्कता ठीक है लेकिन जिस तरह से आदमी बँध गया है, उसमें जीना एक मुसीबत है। कोई लिबर्टी ही नहीं रही। ऐसा लगता है जैसे किसी ने हाथ–पाँव बाँध दिये हों।'' माधव ने कुछ खिन्न होकर कहा।

''अब क्या करोगे भाई.....अच्छा, मैं जरा चाय का पानी चढ़ा आऊँ। बस दो मिनट में आया।''

माधव चुप रहा। चुप्पियों में ही उसने हामी भरी। बक्षी भैया अपने किचन में घुस गए। वह खामोश बैठ गया। कभी घर की दीवारे देखता, कभी सामने वाले कमरे के बंद दरवाजों पर निगाह डालता। उनकी पत्नी दूसरे कमरे में थी। बेटा काम में मगर.....डूबा रहता था। उसका अपना ही संसार था। इन दिनों वह संसार कुछ और सिमट आया था।

पाँच मिनट के बाद भाईसाहब तश्तरी में तीन कप लिए हाजिर हुए। दो कपों में बराबर–बराबर चाय थी। तीसरी जो उन्होंने अपनी पत्नी के लिए

बनाई थी, उसमें चाय थोड़ी कम ही थी। वहीं से बैठे–बैठे उन्होंने आवाज़ लगाई–अपनी चाय ले लो!

फिर कुछ देर के लिए सन्नाटा छा गया। बातचीत के बीच पसरे मौन को तोड़ते हुए वह बोले; ''चाय में चीनी कम तो नहीं है....देख लो।''

माधव ने चुस्की लेते हुए कहा.....बिल्कुल ठीक है। आपकी चाय में सब बराबर रहता है।''
''कुछ नमकीन वगैरह ले आऊँ.....चाय के साथ तो ठीक लगता है।''

''नहीं.....नहीं रहने दीजिए। आज मन नहीं है।''

''अरे थोड़ी–सी ले लो''.....इतना कहकर वह उठ गए। एक बड़ी सी कटोरी में खूब नमकीन भर कर ले आए।

''आजकल आपका काम कैसे चल रहा? अभी तो जा नहीं रहे?''

भैया ने पूछा।

''नहीं जा रहा हूँ। थोड़ी कठिनाई भी आ रही है। अब जाना ही होगा। नौकरी छोड़ने के बाद जो थोड़ा बहुत काम कर रहा था फ्री लांसिग का, वह भी रुका पड़ा है। एक तरह से सब बेपटरी हो गया है। कुछ समझ में नहीं आ रहा। कितने दिनों तक इस तरह घर में बैठा रहूँगा!''

''हाँ.....वह तो है। हर आदमी को काम तो शुरू करना ही होगा। ऐसे लोग जो ऑन लाइन काम नहीं कर रहे, उनके लिए दिक्कत बड़ी है। मगर जाना तो होगा। मास्क–वास्क लगाकर काम करना होगा।''

इसके बाद उन्होंने अपनी ही जाँघ पर मुक्का मारते हुए कहा–''साला पूरी मेडिसिन इंडस्ट्री लूटपाट पर उतारू है। हर दूसरे दिन कोई न कोई दावा ठोंक देता है कि उसने दवा बना ली। फिर सब फुस्स हो जाता है। यहाँ–वहाँ से पच्चीसों बार वैक्सीन बनाने के समाचार आए। सब बेकार। बस, लोगों को बुद्धू बनाया जा रहा है। इसका एक ही उपाय है। खुद ही बचाए रखो। पारंपरिक वस्तुओं का उपयोग खाने में करते हुए अपनी इम्युनिटी बनाए रखो। गलती से बीमार पड़ भी गए तो ठीक हो जाओगे।''

''वैसे.....भैया एक बात तो आपने नोट की होगी कि भारत में इसकी मृत्युदर काफी कम है। यूरोप में इसने कोहराम मचाया। अमेरिका पस्त पड़ा है। ब्राजील बेबस है। मुझे लगता है हम भारतीयों का इम्यून सिस्टम बहुत बेहतर है। गरीबी है लेकिन हाड़ा मजबूत है।''

''हाँ.....बिल्कुल। यहाँ तो लोग पहले से ही इतनी बीमारियों से लड़ चुके होते हैं कि शरीर नई बीमारी झेलने को तैयार रहता है।''

ऐसा कहते हुए उनके चेहरे पर हास्य का भाव आ गया जिसमें थोड़ा गौरव भी था और थोड़ी बेचारगी भी।

''बस दिल्ली की हालत ठीक नहीं। यहाँ तो संक्रमण बढ़ता ही जा रहा है। पता नहीं आगे क्या होने वाला है! शुक्र है कि इधर अपने इलाके में उतनी बुरी स्थिति नहीं है।''

''हाँ.....यहाँ अलग–अलग सोसाइटी हैं। उतने सटे–सटे घर नहीं है। शायद इसलिए.....और मुझे लगता है कि यहाँ लोग थोड़े सावधान भी हैं। मैंने किसी को बिना मास्क के बाहर नहीं देखा।''

चाय कब खत्म हो चुकी थी, पता भी नहीं चला। धीरे–धीरे बातचीत भी सम पर आ गई। माधव ने आधा शरीर सोफे से उठाते हुए कहा.....''अब चलता हूँ। फिर मिलूँगा जल्दी ही। किसी शाम को आप ही आ जाइये। कुछ गाने–वाने सुनते हैं। बड़े दिन हो गए।''

''अभी दो तीन दिनों पहले आवाज़ तो आ रही थी आपके घर से। लता बाई का गाना बज रहा था। पर मैं संकोचवश नहीं आया।''

''संकोच क्यों? लेकिन मैं समझ सकता हूँ। जैसे मुझे हिचक होती रही वैसे ही आप भी सोचते रहे होंगे। कोई बात नहीं। अगली बार जरूर आइये।''

माधव उन्हें बाय कर कह अपने फ्लैट की ओर मुड़ गया। सबकुछ जानते हुए भी कि भैया का घर निरापद क्षेत्र है, एक शंका उसके मन में गड़ गई। कहीं.....! धीरे–धीरे उसने अपने मन को व्यर्थ की चिन्ता से मुक्त कर लिया। पत्नी ने दरवाजा खोलते हुए कहा.....''मैं जानती हूँ कि ऐसा नहीं सोचना चाहिए लेकिन तुम अपने कपड़े बदल लो। इन दिनों यह एक नियम की तरह है। इसका पालन करना ही होगा। बाहर जाने वाला आदमी कपड़े बदलेगा। फिर बाहर तुम जाओ या मैं.....!''

एक क्षण के लिए वह कुछ आविष्ट हुआ था फिर उसने खुद को समझा लेने में ही भलाई समझी। इस वाद–विवाद का कोई तुक नहीं। बात केवल शंकालु मन की नहीं.....सुरक्षा और साफ सफाई की भी है।

***

पंद्रह

सोसाइटी में दस दिनों तक पूरी शांति छाई रही थी। सूनापन का निर्बंध साम्राज्य। नीचे सैर करना लोगों ने बंद कर दिया था। बीती शाम को उसने देखा कि लोग फिर से बाहर निकलने लगे हैं। उनमें से कुछ तो बिना मास्क के भी घूम रहे। संक्रमण का खतरा तो था परंतु खतरे से कहीं अधिक उसका भय था। सोसाइटी में वैसे भी दो ही परिवारों में संक्रमण के मामले हुए थे, जिनमें से मिसेज खन्ना की दुखद मृत्यु के बाद उनके घर के दूसरे लोग बीमार नहीं पड़े। ऊपर के तल पर रहने वाले साहा जी का परिवार अब तक क्वारंटीन था। वहाँ से कोई खबर नहीं आई थी। वह मानकर चल रहा था कि वे तीनों ठीक ही होंगे या ठीक होने के रास्ते पर चल पड़े होंगे।

जहाँ लोग चिन्हित थे वहाँ दुश्वारियाँ कम थीं। मनोवैज्ञानिक दबाव अधिक था। बाहर सबकुछ अज्ञात था। सड़कों पर लोगों की आवाजाही धीरे–धीरे सामान्य होती जा रही थी। नब्बे से पच्चानवे फीसद लोग चेहरे ढँक कर आते–जाते दिखाई देते। कुछ लोग इस बीमारी में भी अपरिवर्तित ही रहे। न कोई मास्क...न परदा। न सोशल डिस्टेंसिंग। वे एक–दूसरे से बिल्कुल पास–पास बाते करते हुए पाए जाते। उन्हें देखते हुए माधव अक्सर सोचता कि ये कौन लोग हैं.....क्या ये पूरी तरह से आश्वस्त हैं? या जीवन के प्रति इनका ही नजरिया ही ठीक है कि जो होगा देखा जाएगा! नहीं.....! ये स्वच्छंद होकर भी दूसरों के लिए खतरा हो सकते हैं। मगर यह बात भी गौर करने वाली है कि इनसे बातें करने वाला भी उतना ही बेपरवाह.....मुक्त है। आखिर कब तक इस भय से घुट–घुट कर जीते रहें! दिल्ली के हालात पहले से अधिक खराब हो चुके थे। अब हर दिन साढ़े तीन चार हजार लोग संक्रमित हो रहे थे। उनकी रोकथाम कैसे हो या इस भयंकर प्रसार को कैसे काबू में किया जाए.....यह समझ में नहीं आ रहा था। नए सिरे से तालाबंदी की संभावनाएँ समाप्त हो चुकी थीं। राहत की एक छोटी–सी बात यह कि बीमारी संकेन्द्रित थी। क्षेत्र विशेष में ही पनप रही थी। किन्तु सबकुछ सामान्य होने के बाद उसका विस्फोट दूसरे इलाकों में नहीं होगा, इसकी गारंटी कौन दे सकता था? राह चलते हुए कोई संक्रमित व्यक्ति दूसरे को यह बीमारी तो दे ही सकता है। दुकानों.....बाजारों में भीड़ पुराने दिनों की तरह उमड़ने लगी तो संकट भी बढ़ने लगा। ऊपर से बारिश के दिन शुरू हो गए थे। बरसात में इन बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है।

सामने कुछ भी स्पष्ट या निर्धारित नहीं था। न तो इसकी कोई कारगर दवा बन सकी थी न कोई वैक्सीन। यह भी अज्ञात ही था कि वायरस अपने आप कब खत्म होगा.....कब उसका चक्र पूरा होकर टूट जाएगा। इससे पहले की सभी अटकलें गलत हो चुकी थी। इसलिए अनुमानों आकलनों का बाजार भरभरा कर गिर चुका था। अब तो कुछ ऐसे दिन गुजर रहे थे कि हाँ.....जब ठीक होना होगा.....तब होगा। तब तक ऐसे ही दिन बीतेंगे। मुँह पर मास्क.....कपड़ा बाँधे, हाथ धोते....संशकित रहते हुए जीना होगा। कोई अनजान राह चलते अनायास ही टकरा जाये तो सवालों और शंकाओं से मन विचलित हो जाये। कहीं.....

माधव यूँ तो पत्रकारिता छोड़कर स्वतंत्र लेखन करने लगा था लेकिन मीडिया इंडस्ट्री के पुराने दोस्त अब भी उसके पक्के साथी बने हुए थे। गाहे–बगाहे वह पूर्वी दिल्ली की सीमा से लगने वाले नोएडा की फिल्म सिटी में जाता रहता था। वहाँ पुराने साथियों से मुलाकात हो जाती। बीस मार्च को उसने आखिरी बार दिल्ली का बॉर्डर पार किया था। उसके बाद नोएड जाना नहीं हो सका। लगभग सवा तीन महीने बीत चुके थे। उस दिन दो–तीन दोस्तों से फोन पर बात हुई और शाम को उसने नोएडा आने का वादा किया। शाम के सात बजे घर से निकलते हुए उसे अजीब–सी उलझन हुई। जैसे कोई गलत काम करने निकला हो। उस रास्ते पर आने–जाने का उसे बरसों पुराना अभ्यास था। मगर आज कुछ नयापन था। जहाँ दिल्ली की सीमा खत्म होती थी, वहाँ अब भी पुलिस के जवान खड़े थे। बैरिकेड्स किनारे लगा दिए गए थे। आवाजाही एक तरह से आम होने के रास्ते पर थी। ट्रैफिक बीते हुए सामान्य दिनों के मुकाबले कम था। अब भी आने–जाने वाले लोगों की संख्या पहले की तुलना में कम ही थी।

फिल्म सिटी में शांति छायी हुई थी। अलग–अलग ठिकानों और कोनों पर पानी.....नमकीन, बिस्कुट और चाय–पान, बीड़ी....सिगरेट बेचने वाले..... सभी गायब थे। उनकी वापसी अब तक नहीं हुई! इक्के–दुक्के दुकानदार दिखाई दे रहे! पत्रकारों की भीड़ भी वहाँ पहले की तरह नहीं मंडरा रही थी। उसने एक जगह अपनी कार खड़ी की। विमल को फोन कर बता दिया कि वह आ चुका है। फोन जेब में रखने के बाद वह गाड़ी से बाहर निकल आया और चुपचाप टहलने लगा।

हरे–भरे रास्तों पर निस्तब्धता थी। सामने एक स्कूल परिसर समाधि में डूबा हुआ था। चेहरे पर मास्क लगाए एक गार्ड वहाँ ऐसे खड़ा था जैसे खुद से ही पूछ रहा हो कि भला यहाँ खड़ा क्यों है.....बीच–बीच में एक दो

गाड़ियाँ, बाइक वहाँ से गुजर जाते। पुलिस की जिप्सी तिरंगी रोशनी छिटकाते हुए इस कोने से उस कोने तक सैर कर रही थी। शाम के समय यह पूरा क्षेत्र एक ओपन बार में तब्दील हो जाता था। पत्रकारगण भारी भरकम डयूटी खत्म करने के बाद जी हल्का करते थे। कतार में खड़ी कारों के ऊपर बोतलें सजी रहतीं। जाम छलकाए जाते। बहार के दिनों में भाँति–भाँति के व्यंजनों के ठेले.....रेहड़ी पटरियाँ नजर आती। एक समय जब शराब का यह कारोबार अत्यंत विकराल रूप धर कर फलने–फूलने लगा और पत्रकारों को मिली इस कारोबारी छूट की आड़ में वहाँ दूर देश के शराबी भी आने, उनमें घुलने लगे तो पुलिस ने थोड़ी सख्ती दिखलाई। कुछ दिनों तक सब बंद हो गया। फिल्म सिटी की रौनक ही जाती रही। मगर पत्रकार बंधु अपने मौलिक अधिकारों के लिए लड़ना जानते हैं! लड़–भिड़कर और कुछ याराना निभा कर उन्होंने अपने इस ओपन बार को जीवंत रखा। कई बार पहरेदारी और बंदी के बावजूद वह खुल–खुल जाता रहा।

माधव देख रहा था कि कोरोना और लॉकडाउन के बाद से फिल्म सिटी बेवा जैसी दिखाई दे रही है। न वो ठहाके....न बेसुरे गानों का दौर.....न कहकहे.....न तेज संगीत का शोर! कहीं कुछ भी नहीं है! जीवन का सारा राग–रंग ही बुझ गया है! विचारों में डूबा वह ज्यों ही अपनी कार का दरवाजा खोल कर बैठने को झुका....विमल और प्रकाश वहाँ आ गए।

''भाईसाहब....! इतने दिनों के बाद दर्शन दे रहे हैं। कितना डरते हैं आप कोरोना से.....! एक हमलोग हैं.....किसे बीमारी है....किसे नहीं, जानते तक नहीं। मरे पड़े हैं उसी भेड़ियाधसान में। बॉस छुट्टी भी नहीं देता।''

इस तंज के साथ विमल ने हाथ बढ़ाया। फिर दो शब्द जोड़ भी दिए.. ..मिला लीजिए हाथ.....कोरोना नहीं होगा.! हाहाहाहा.....

''साहब, आप लोग पत्रकार हैं। आप देश चलाते हैं। सबको जीना सिखाते हैं। आप योद्धा हैं। कोरोना वॉरियर! कहाँ आप और कहाँ मैं! मुझ कौन पूछता है।''

''अब आप भ मज़े लेने लगे माधव जी''

''तो क्या करूँ.....मज़े लेने का हक सिर्फ चैनल के पत्रकारों को है?''

''अच्छा, रहने दीजिए यह सब। यह बताइये कि बियर पिएँगे आप?''

''नहीं भाई....ठंडी बियर कौन पिए? कहीं गले में दर्द हुआ तो जीना हराम हो जाएगा। पत्नी वैसे ही गला दबाकर मार डालेगी। आज ही युद्ध लड़कर यहाँ तक आया हूँ।''

''माधव जी अब आप दास हो चुके हैं।''

''आप दास नहीं हैं.....?''

''जीवन में शांति के लिए दासत्व भी स्वीकार्य ही है। क्या करें.....!''

इस बातचीत के बाद विमल और प्रकाश के हाथों में बियर की बोतल आ गई थी। माधव ने उनका साथ देने के लिए एक छोटी ब्रीज़र अपने हाथों में पकड़ ली।

''माधव जी.....आप कुछ भी कहिए लेकिन सरकार फेल हो गई है इस महामारी में।''

''आपके लिए तो वह हमेशा से फेल रही है। इसमें नई बात क्या है?'' माधव ने हँस कर जवाब दिया।

''यह सही एप्रोच नहीं है माधव जी। आप देखिए.....क्या हाल हो गया है देश का। पहले लॉकडाउन किया। इतने लंबे समय तक सब बंद रहा। अब बहुत कुछ खोल दिया है। नतीजा वही.....ढाक के तीन पात।''

''जो पत्रकार आँखें बंद कर सरकार का विरोध करते रहे वही मुझे एप्रोच ठीक करने का उपदेश भी देते हैं। खैर यह सब उपदेश तो मैंने खूब सुने हैं।'' माधव कुछ आवेशित होकर कहने लगा–

''आप के मुताबिक दुनिया के किस देश ने लॉकडाउन और उसके बाद हालात को संभाल लिया? आप तो यही नहीं समझ पाते कि इसका संक्रमण कितना तेजी से होता है। जिस चैनल में आप काम करते हैं, वहाँ आपके देखते ही देखते पच्चीस लोग बीमार पड़ गए। मैनेजमेंट को हवा तक न लग सकी और आप इस विशाल आबादी वाले जटिल देश को कोरोना से लड़ने में विफल पा रहे हैं। जबकि भारत अपने आकार में बहुत बड़ा, जनसंख्या के घनत्व आदि में सघन होकर भी कई देशों से पीछे है।''

उसने कहना जारी रखा–

''लॉकडाउन की बात तो आप करते हैं लेकिन यह नहीं बोलते कि लोगों ने लॉकडाउन का मज़ाक बना कर रखा। जहाँ सरकार ने सख्ती की..... ..वहाँ आप लोग ही खबर बना कर सरकार की टाँग खींचने में सबसे आगे

रहे। कभी मरकज़ के नाम पर जमावड़ा, कभी मजदूरों का पलायन। कभी कुछ और.....क्या लॉकडाउन.....? खाक लॉकडाउन!''

माधव और विमल की बातचीत काटते हुए प्रकाश बोल पड़ा– ''भारत में कम से कम पाँच लाख लोग मरेंगे!''

माधव की त्योरियाँ चढ़ गईं'' कमाल करते हैं आप....क्या आप ऐसी प्रार्थना करते हैं कि इतने लोग भारत में मर जाएँ! जैसे वामपंथी चीनियों के हाथों भारतीय सैनिकों के पिटने का जश्न मनाते हैं और जब भारतीय उन्हें जम कर धुन देते हैं तब चुप हो जाते हैं।''

''पाँच लाख से अधिक लोग संक्रमित हुए हैं और जब तक मरने वालों की संख्या सोलह हजार के आसपास है। यह दुखद है लेकिन अमेरिका..... ब्राजील और यूरोप के देशों से कभी तुलना की है मृत्यु दर.....?''

''यह तो ठीक है। पहले दावे कुछ और किए जा रहे थे। अप्रैल–मई तक कोरोना खत्म हो जाएगा भारत में, ऐसा कहा जा रहा था।'' विमल ने तंज के साथ कहा.....

''खत्म तो हो जाता साहब....यहाँ भी हिटलरी लागू हो जाती अगर। लोगों ने लॉकडाउन के दौरान जमकर कानून तोड़ा। जो दोषी रहे.....जिन्होंने इस बीमारी को फैलाने का काम किया, जिनका प्रबंधन.....रोकथाम सबकुछ विफल रहा, उनके बारे में एक शब्द नहीं कह सकते आप। क्योंकि वह आपकी आदर्श पत्रकारिता के मानकों को तोड़ता है!''

''रहने दीजिए इस चर्चा को। इन फालतू बातों में कोई दम नहीं। अगर फिल्मसिटी अपनी पत्रकारिता के उपदेश सुनाने को बुलाया था तो पहले बता देते।''

''ऐसा नहीं माधव जी। हटाइये, आप नाराज क्यों होते हैं।''

''अच्छा यह बताइये.....आपकी नई पुस्तक का क्या हुआ.....''

''क्या होना है.....कोरोना काल की भेंट चढ़ गई पुस्तक।''

''अब तो सबकुछ खुल गया है। अब तो पब्लिश करवा सकते हैं।''

''हाँ देखता हूँ।''

''अब आप लोगों के दफ्तर में तो मरीज नहीं रहे.....?''

''नए लोग तो बीमार नहीं पड़े हैं। शुक्र है। बीस–बाईस लोग अब भी क्वारंटीन हैं। दफ्तर नहीं आ रहे। साला.....डर बना रहता है।''

''अब तो सोशल डिस्टेंसिंग का भी कोई मानी न रहा। बॉस ने कह दिया कि हर्ड इम्युनिटी स्टेज पर हैं। इसलिए सभी आओ, सभी काम करो..... ..सभी मरो एक तरह से।''

''अरे ऐसा नहीं। आप भी जानते हैं.....खतरा किन लोगों को अधिक है।''

''हाँ, जानते हैं लेकिन डर तो बना रहता है। घर में पत्नी–बच्चे हैं।''

''सच बात है.....'' माधव ने सिर हिलाया।

उसने समय देखा। नौ बजने वाले थे। घर लौटने का समय हो गया था। किसी भी वक्त पत्नी का फोन बज सकता था।

''अब चलता हूँ भाई। फिर जल्दी ही मिलूँगा।''

''चलिए.....माधव जी। बुरा तो नहीं माना बहस का.....?''

''आप भी हद करते हैं। ध्यान रखिए अपना। अब तो सारे रास्ते–बॉर्डर खुलते जा रहे हैं। फिर आऊँगा ही।'' इतना कह कर वह अपनी कार में बैठ गया वे दोनों भी हाथ हिलाकर आगे बढ़ गए। सामने तिराहे पर एक ओर से पुलिस का वाहन अपनी बत्तियाँ जलाता हुआ हौले–से गुजर गया। माधव ने एक्सलेटर दबाया। कार सूने में अपनी आवाज भरती हुई आगे बढ़ने लगी।

***

सोलह

डीएनडी फ्लाइवे खाली था। दूर दो–चार गाड़ियों की ब्रेक लाइट चमक–चमक कर बुझ रही थी। उसने आगे से यू टर्न लिया। फिल्मसिटी से मयूर विहार के लिए एक छोटे–से सुरम्य उतार के पास पेड़–पौधे सब मौन को बुन रहे थे। अँधेरे में घुली अनुभूत चुप्पी! वही रास्ता था...जिस पर से अनगिन बार गुजरा.....मगर आज वहाँ कुछ नया था। सड़क पर बहुत कम गाड़ियाँ थीं। यानी अब भी जीवन अपनी रौ में नहीं लौटा! क्म पर निकलने वाले ज्यादातर लोग शाम ढलते–ढलते पंछियों की तरह वापस लौट आते। महानगर का जवन बदल–बदल सा गया था।

तीस जून की सुबह फोन को स्क्रॉल करते हुए अलग–अलग समाचारों के बीच उसकी नजर एक छोटी–सी रपट पर रुक गई। देश के एक प्रतिष्ठित अखबार की वेबसाइट पर खबर थी कि कोरोना की रिकवरी रेट साठ प्रतिशत के करीब पहुँच गई है। देश में पाँच लाख सत्तर हजार से अधिक लोग संक्रमित हो चुके थे। पिछले चौबीस घंटो में अठारह हजार से अधिक मरीज मिले। यह संख्या रविवार और सोमवार को मिलने वाले मरीजों से कम थी। साढ़े सोलह हजार लोग इस बीमारी से अपनी जान गँवा चुके थे। एक्टिव मरीजों की संख्या दो लाख पंद्रह हजार थी जबकि तीन लाख पैंतीस हजार लोग ठीक हो चुके थे।

दिल्ली में भी जो व्याधि–विस्फोट हुआ था.....उसकी भयावहता कुछ कम हुई है। इन खबरों को पढ़ते हुए उसे थोड़ी तसल्ली तो हुई लेकिन आने वाले दिनों के लिए भरोसा कायम नहीं हुआ। पिछले दिनों में कई मर्तबा उसे ऐसा लगा कि अब यह बीमारी कमजोर पड़ रही है, तभी इसने फुफकार कर अपना रौद्र रूप दिखलाया। इस पूरे समाचार के आखिर में हताश करने वाली बात यह थी कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कह दिया कि कोरोना का सबसे विध्वंसक दौर अभी नहीं आया। यह महामारी अभी कई देशों में उत्पात मचाने वाली है। हालाँकि विश्व स्वाथ्य संगठन ने पिछले तीन महीनों में न जाने कितनी ही बार बयान बदले थे। ऐसा लगता था जैसे वहाँ बैठे बड़े–बड़े लोगों को कुछ समझ में ही नहीं आ रहा हो कि कोरोना से कैसे लड़ना है। आज कुछ कहा तो कल कुछ और.....

पहली जुलाई को मयूर विबहार इलाके का प्रसिद्ध उत्तर गुरुवायुरप्पन मंदिर खुल गया। केरल के गुरुवायुर की उत्तरी शाखा के रूप में प्रतिष्ठित मंदिर अपने रूप...आभा में भव्य है। मंदिर परिसर में प्रवेश करते ही मन

उत्फुल्ल हो जाता है। माधव बिना पत्नी को बताए चुपके से मंदिर के निकट पहुँचा। वह केवल चाह रहा कि तीन महीने बाद खोले गए मंदिर परिसर का दृश्य कैसा है। उस समय सुबह के साढ़े दस बज रहे थे। भीड़ कम हो गई है। अगर पहले दिन भीड़ रही भी हो तो प्रातः वेला में अधिक रही होगी। बाहर इक्के–दुक्के लोग खड़े थे। गार्ड मुस्तैद था। सामने पुलिस के पिकेट्स भी लगे हुए थे। मंदिर में प्रवेश करने वालों के शरीर का तापमान देखा जा रहा। जल से हाथ–पाँव पवित्र करने से पहले सैनिटाइज करने को कहा जा रहा था। कैसी विचित्र माया थी.....मंदिर में जाने से पहले लोग हाथ सैनिटाइज कर रहे! ऐसा भी नहीं कि मंदिर में किसी विग्रह को छूने की छूट हो....वहाँ श्रद्धालु केवल प्रार्थना कर सकते थे। पुरोहितों को अर्चना करते हुए देख सकते थे। पूजा–पाठ और कर्मकांड सबकुछ केवल मंदिर के पुजारियों तक सीमित थे। एक तरह से उत्तर के मंदिरों से यह व्यवस्था बेहतर ही थी। ऐसा करने से मंदिर परिसर में जल–फूल का बिखरना.....और भेड़ियाधसान नहीं होता।

बाहर जहाँ उसने अपनी कार खड़ी की उसके ठीक सामने प्रवेश द्वार है। प्रवेश द्वार की ही सीध में भीतर एक विशाल ध्वजस्तंभ गड़ा है। पीतल के सुघड़ स्वर्णमंडित दीप वहीं रहते हैं। वहीं से गर्भगृह का रास्ता है। प्रवेश द्वार सेलेकर गर्भगृह के चार द्वारों में से एक.....और फिर मंदिर की दूसरी दिशा का अंतिम द्वार एक ही सीध में हैं। बिल्कुल नब्बे डिग्री के कोण पर स्थित। गर्भगृह के मध्य में भगवान अयप्पा की गर्वीली प्रतिमा स्थापित है। एक चौकोर क्षेत्र में शिवलिंग...देवी अम्बिका.....गणनायक के विग्रह भी हैं। प्रवेश द्वार के आगे ध्वजस्तंभ के ठीक सामने एक विशाल दीप जल रहा। वह चुप खड़ा बाहर से सब देखता रहा। मुदित मन.....नत नयन.....एकाग्र होकर। कुछ देर के बाद वह चुपचाप अपनी कार में बैठा। बैठकर न जाने विचारशून्य सा सामने देखता रहा और वापस घर लौट आया। घर लौट आने के बाद उसने फेसबुक पर अपने विचार लिखे.....जैसे कोई डायरी लिखता है–––

जैसे प्रलयकारी बाढ़ का पानी उतरने के बाद हर जगह सड़ांध ठहर जाती है, वैसी ही सड़ांध है। ठहराव की सड़ांध। ज़िन्दगी दुबारा से दौड़ना चाहती है मगर खाली सड़क पर भी उसे दौड़ते हुए डर लगता है। कल तीन महीने और दस दिन के बाद मैंने दिल्ली की सीमा को पार किया। नोएडा में घुसकर वापस लौट आया जैसे कोई बच्चा खेलते हुए किसी अन्य बच्चे की आभासी सीमा पर पाँव रखकर भाग आता है।

राहत–सी मिली कि अब यहाँ से जा सकता हूँ। लोग जा रहे हैं। वैसे तो पिछले कई दिनों से लोग आ–जा रहे मगर अब वह सामान्य होने के रास्ते पर संघर्ष कर रहे हैं। जैसा कि मार्च के दूसरे सप्ताह तक सबकुछ सामान्य–सा नज़र आते हुए भी धीरे–धीरे भय व्याप रहा था। आशंका घेर रही थी। फिर जैसे किसी हिंसक पशु से झपट्टा मारकर पटक दिया और चढ़ बैठा हमारे कंठ पर। एक दिन में नज़रबंद हो गए। बाहर भीतर भाँय–भाँय करता खालीपन छा गया। पतझड़ में उड़ते पत्तों के शोर से सड़क भर गई। बाहर निकला तो लगा जैसे खाली–खाली दिशाएँ घूर रही हों।

अब देखता हूँ कि घर के आसपास भी लोगों की भीड़ बढ़ रही है। रेहड़ी–पटरी वाले लौट रहे। शाम को सुलगने लगे हैं उनके चूल्हे। तपने लगे हैं तवे। चटपटी चाट–पकौड़ियाँ वाले भी आ गए हैं। पान–बीड़ी, चाय–पानी की गुमटियों पर लोग जुटने लगे हैं। कई मर्तबा पाता हूँ कि दो तीन और अधिक लोग भी पास–पास बैठे बतिया रहे। उनके चेहरों पर कोई मास्क भी नहीं होता। अच्छा ही लगता है उन्हें इस तरह देखना। लगता है, भय छँट रहा। मनुष्य की युयुत्सा है। वह लड़ेगा। कब तक बैठा रहेगा भला!

एक दौर सा हो गया है दिल खोल कर जीते हुए। लगभग आधा वर्ष इस सूने में बीत गयाा। मन मरोड़ डाला इस बीमारी ने। खुली हवा में साँस लेना भी मुहाल हो गया। कोई पास से गुज़र जाये तो जैसे भय का प्रेत गुज़रा हो, ऐसा लगता रहा। अब इस संक्रमण से मुक्ति चाहता हूँ। अब तक जितने आकलन थे सब विफल रहे। अब उन आकलनों पर नहीं जीता। नहीं देखता उस ओर। न ज्योतिषियों की भविष्यवाणियाँ पढ़ता हूँ। न किसी विज्ञानी की अटकलें सुनता हूँ। न किसी और का आश्वासन मुझे चाहिए। अरसे बाद मंदिर के कपाट खुल गए हैं। वहाँ एक दीप प्रकम्पि होकर झिलमिलाता है.....

***

सत्रह

माधव पिछले दो–तीन दिनों से यह देख रहा था कि उसके इलाके में जीवन अपने ढर्रे पर लौट रहा है। कम से कम ऐसा होता हुआ दिखाई तो दे ही रहा। उसके भीतर किस तरह का घर्षण....दबाव या भँवर है.....यह तो वही जाने मगर लोग अपने धंधों पर लौट रहे हैं। और वे भला उनसे दूर भी कब तक रह सकते हैं! घर के पास का छोटा–सा शॉपिंग प्लाजा लगभग खुल चुका है। एक–दो प्रोविजन स्टोर, जहाँ पिछले तीन महीनों में बहुत भीड़ जुटी, वे अब अपनी शटर गिरा गए। कौन जाने उनमें से कोई संक्रमण का खतरा बढ़ रहा है। उनके अलावा दूसरी सभी दुकानें धीरे–धीरे अपनी दिनचर्या में आ चुकी हैं। शाम को भी देर तक वहाँ रोशनी झिलमिलाती रहती है। लोगों की आवाजाही हर दिन बढ़ रही है। कम उम्र के छोकरे–छोकरियाँ जो इन तीन महीनों के दौरान गायब–से हो गए थे....उनके चक्कर अब लगने लगे हैं। संकेत यही है कि आदमी डर की चादर हटा रहा है। ऐसा तब हो रहा जब देश में इस बीमारी से संक्रमित लोगों की संख्या बेतहाशा बढ़ रही है।

माधव एक बार फिर गलत हो चुका था। दो–तीन दिन पहले संक्रमित लोगों की संख्या में आई गिरावट से वह खुश था लेकिन पिछले चौबीस घंटों में भारत ने नया कीर्तिमान बना डाला। एक ही दिन में बाईस हजार से अधिक मरीज....

उसने विभिन्न समाचार पोर्टल्स को पढ़ते हुए यह पाया कि संक्रमण नए–नए राज्यों में तेजी से बढ़ रहा....खास कर उन राज्यों में जहाँ कुछ दिनों पहले तक यह बहुत नियंत्रित रहा। जैसे कर्नाटक। महाराष्ट्र की एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ लंबे समय से कोरोना का ग्राफ सीधी रेखा में ऊपर खिंचता चला जा रहा। दिल्ली में स्थिति थोड़ी बेहतर हुई है। बीमार लोगों की संख्या एक उफान के बाद कम होने लगी है। फिर भी बहुत है। तमिलनाडु में मरीज ताबड़तोड़ बढ़ रहे। वहाँ नए सिरे से किया गया लॉकडाउन भी निष्प्रभावी साबित हो रहा है।

जुलाई का पहला सप्ताह बीतने वाला था। उसकी सोसाइटी में हालात सामान्य होने की ओर बढ़ रहे थे। यूँ, पहले जैसी स्वच्छंदता तो अभी नहीं दिखाई देती पर चिड़िया उड़ान भरने से पहले पर फैलाने की कोशिश में है। कुछ लोग वापस सैर सपाटे के लिए लौट आए हैं। बच्चों ने भी खेलना, दौड़ना–भागना शुरू कर दिया है। कुछ अधेड़ और बुजुर्ग महिलाएँ घूमने

निकलती हैं। शनिवार की सुबह थी। उसने चाय पीते हुए फोन उठाया। एक मैसेज उसके स्क्रीन पर चमक कर छिप गया। वह केवल इतना ही देख सका था कि प्रेसिडेन्ट ने लोगों के नाम से कॉमन ग्रुप में कुछ लिखा है। वह मैसेज पढ़ने लगा।

ओह.....फिर वही! मुक्ति नहीं.....इस मनहूस मर्ज़ से! उसे खुशफहमी–सी होने लगी थी कि अब उसका रिहाइश सुरक्षित है। एक बार फिर उसके ही ब्लॉक की ऊपरी मंजिल पर रहने वाले एक दंपती के संक्रमित होने की खबर थी। मैसेज के नीचे लिखी दर्जनों शुभकामना संदेशों से यह जाहिर हो रहा कि जो लोग बीमार हैं वे अधेड़ हैं। पचास के आसपास की उम्र है उनकी। जो बहुत सुरक्षित भी नहीं हैं और खतरे में भी नहीं। आम तौर पर बीमारी बुजुर्गो या पहले से व्याधियों से जकड़े शरीर के लिए घातक है मगर कितने ही युवा लोगों के चले जाने के सच को कौन झुठला सकता है!

एक बात साफ हो गई कि फिलहाल आराम नहीं है। किसी निश्चिन्तता में रहना मूर्खता है। आज ठीक हैं.....कल बीमार हो सकते हैं। भला कौन दावा कर सकता है कि वह बचा रहेगा! अब तो सबकुछ सामान्य होने की ओर है! भीड़ भी बढ़ रही तो खतरा कम कैसे होता.....!

''तुमने सोसाइटी का मैसेज देखा.....?'' उसने विजया से पूछा।

''नहीं तो.....क्या है?''

''क्या तुम जानती हो, सातवें फ्लोर पर रहने वाली चक्रवर्ती कौन हैं.....?''

उसने दिमाग पर जोर डालने की कोशिश की। हालाँकि उसे फौरन कुछ याद नहीं आया लेकिन विजया के दिमाग में लगभग पूरी सोसाइटी की रिहाइश का एक मानचित्र है। वह किसी ने किसी संकेत.....चिह्न.....चाल–ढाल.....आदत आदि से निष्कर्ष निकाल लेती थी कि उस फ्लैट में कौन रहता है। कुछ देर के बाद उसने कुछ तुक्का मारते हुए कहा....कहीं वह कुत्ते वाले तो नहीं?

माधव के लिए यह सब अंदाज़ा लगाना जरा मुश्किल था। कई बार वह अटकलबाजियों से चिढ़ता भी था। लेकिन तब उसने जैसे पूरी तरह से खारिज नहीं किया। विजया फिर बोल पड़ी–

''अरे वह तो ऐसे ही घूमते रहते थे नीचे। मैंने तो मुँह पर मास्क भी नहीं देखा कभी। उनकी पत्नी भी बेफिक्र ही चलती थीं।''

उसने फोन हाथ में लेकर अपने संपर्क सूत्रों से पता करने की कोशिश की कि सातवें फ्लोर में रहने वाली चक्रवर्ती कौन हैं। कुछ ही देर में यह साबित हो गया कि उसका अंदाजा बिल्कुल ठीक था। ये वही कुत्ते वाले थे.... ..जो हर शाम को नीचे घूमते हुए पाए जाते। जो थोड़ी बहुत आजादी मिली थी वह परिसर में कोरोना के नए मरीज की पुष्टि हो जाने के बाद छिन गई। अब सीढ़ियों पर उतरते हुए या घर वापस लौटते हुए उसे मुँह ढंक कर ही रखना होता है। चेहरे से मास्क हटाने की स्वतंत्रता तो जा चुकी है।

मिस्टर चक्रवर्ती और उनकी पत्नी के बीमार होने की खबर ने एक बात को और पुष्ट कर दिया कि सोसाइटी का मैनेजमेंट तभी जागता है जब संकट दस्तक देता। इससे पहले वहाँ फ्यूमिगेशन का काम चल रहा था। पहले वह सप्ताह में तीन दिन चला, फिर दो दिन.....। मिस्टर साहा और उनके परिजनों के स्वस्थ होने के साथ ही वह सप्ताह में एक दिन की रस्म अदायगी होकर खत्म हो गया अब दुबारा कोविड पीड़ित सामने है तो छिड़काव शुरू करने की बात चल रही। उसने बुदबुदाते हुए कहा–''जब तक मुश्किल सिर पर सवार न हो ये काम नहीं करते.....!''

''वह तो मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि ये फ्यूमिगेशन बंद करवा चुक हैं, जब कि हमारी पुरानी सोसाइटी में छिड़ाव लगातार होता है। सप्ताह में तीन दिन का कार्यक्रम तय है। कोई छूट नहीं ली जाती। यहाँ तो कोई सिस्टम ही नहीं है। न किसी को किसी से कोई मतलब है। अरे यार...पंद्रह अगस्त को ये लोग ध्वजारोहण तक नहीं करते....!'' ऐसा कहते–कहते विजया का चेहरा तमतमा उठा।

रात को उसे सिरदर्द था। दाहिनी आँख ऊपर भवें दुख रही थीं। वह देर तक करवटें लेता रहा। फिर न जाने कब उसे नींद आ गई। नींद आने से पहले वह बतलाती तो है नहीं कि वह अभी–अभी आई है। बस चुपके से आ जाती है। ठीक उस समय जब नींद के लिए आदमी जरा परेशान सा होता रहता है। रात के अँधेरे में अचानक उसकी आँख खुल गई। वह आदतन आँख खुलने के कारण नहीं खुली थी बल्कि एक विचित्र शोर से खुली थी। भड़ भड़ भड़.....सूँ की आवाज ने उसे चौंकाया। फिर वही अंधड़..... ! वही बावरी हवा!

न जाने मौसम क्या चाहता है इस बार! ये मानसून के दिन हैं। कहने को दिल्ली में मानसून को आए हुए सप्ताह भर का समय बीत चुका है लेकिन बारिश के नाम दो–चार बूँद से अधिक पानी गिरा अब तक। तभी

अचानक टिपिर–टिपिर की आवाज होने लगी। तेज हवा के साथ पानी की बूँदें उड़ने लगीं।

विजया की नींद भी टूट गई और वह हॉल की खिड़कियों में गत्ते लगाने को दौड़ी। उसे हमेशा यह डर लगा रहता है कि हवा के थपेड़ों से कमजोर स्लाइडिंग खिड़कियाँ जो उखड़ जाने की हद तक खड़खड़ाती हैं, कभी अनायास ही टूट भी सकती हैं। उसने हॉल में जाने के बाद देखा कि वहाँ खिड़कियों में पहले से गत्ते लगे हुए हैं––ओह.....मेरे बच्चे.....तुम कितने समझदार आदमी की तरह काम करते हो कई बार.....यकीन नहीं होता.....! वह बुदबुदाते हुए अपने बेटे का नाम लेने लगी। उस समय सुबह के साढ़े तीन बज रहे थे। हवा के शोर में जोर–जोर से बजती खिड़कियों की आवाज ने लगभग पूरे घर को जगा दिया। बारिश होने लगी। धीरे–धीरे पागल हवा को बूँदों ने जैसे वश में कर लिया। कुछ देर के बाद पानी प्रधान हो गया.....झर झर झर। हवा का स्वर मद्धम–मद्धम होकर लगभग वर्षा में घुल–सा गया। जाती हुई रात के आखिर पहर में जब एक मौन सब ओर व्याप्त रहता है तब पानी के गिरने का स्वर बहता–सा सुनाई दे रहा था। वह नींद से जागा हुआ वर्षा का अपूर्व स्वर सुनने लगा। उसे अचानक अपने बचपन की याद आ गई। उसके गाँव में बरसात के दिनों में जब दल के दल मेघ मोर्चाबंदी करते और एकरूप होकर धारासार बरसते तब कैसा विचित्र स्वर होता था उसका! उसकी समाई शब्दों में नहीं हो सकती! डसकीस ध्वनि तो वर्ण विस्तार से परे होती है! वह श्रव्य है! अनुभवगम्य! कोई जो उस अजस्त्र धार के तार से खुद को जोड़ लेता है.....कुछ विशिष्ट कविता लिख जाता है––

झर झर झर निर्झर गिरि सर में

घर मरु तरु मर्मर सागर में

सरित तड़ित गति चकित पवन में

मन में विजन गहन कानन में

आनन–आनन में रव घोर कठोर.....

अचानक उसका विचरणशील मन ठहर गया। बारिश अब भी हो रही थी। करीब आधे घंटे तक पानी गिरता रहा। फिर थम गया। कुछ देर तक रास्ते में छूटी हुई बूँदें रह रह कर छज्जों.....छतों पर गिरती रहीं। न जाने कब.....वह दुबारा सो गया।

***

अठारह

सुबह धुली–धुली सी थी। ठंडी हवा बह रही थी। वातावरण का मानों अनुकूलन हो गया हो। हर सुबह समाचार पढ़ने का क्रम आज भी जारी रहा। उसने देखा कोरोना के संक्रमण की रफ्तार में कोई उल्लेखनीय कमी या बढ़त नहीं आई है। जैसे बाढ़ का पानी अपने प्रचंड विध्वंस के साथ जब खेत खलिहान और गाँवों में फैल जाता है तो उसकी रफ्तार ठहर जाती है। वह घहर–घहर कर बहता रहता है। जैसे उसके उत्पात में एक स्थायी भाव आ गया हो। दिल्ली की रिकवरी रेट की खबर प्रमुखता से छपी थी। लिखा था कि महानगर में बढ़ते मामलों के साथ लोगों के ठीक होने की गति भी बढ़ गई है। करीब एक लाख लोग चपेट में आ चुके थे जिनमें से लगभग सत्तर हजार लोग ठीक हो चुके। तो क्या कोरोना से लड़ने की क्षमता बेहतर हो गई है.....? उसने इस बात पर भी गौर किया कि जहाँ मामले अधिक थे या लंबे समय से जो प्रदेश चपेट में आए हुए थे.....वहाँ रिकवरी रेट बेहतर थी।

दरवाजे पर दस्तक हुई। किसी ने बेल नहीं बजाया था, कुंडी खटकाई थी। यूँ तो वहाँ किसी को दस्तक दिये हुए एक दौर हो गया था। कभी भूले से ही कोई आता इन दिनों। जैसे कभी सोसाइटी के सुपरवाइजर या पड़ोसी। पड़ोसी को भी आए हुए महीना बीत चुका है। विजया ने कुछ शंकाग्रस्त नजरों से माधव को देखा। अरे.....भई पहले दरवाजा खोलकर देखो तो सही... ! माधव ने कहा।

''तुम ही खोला दरवाजा.....और जरा दूर से ही बात करना.....उछल कर पास जाने की जरूरत नहीं है।''

''तुम तो हमेशा प्रधानाचार्य की भूमिका में रहती हो....जब चाहा एक जुबानी चाबुक चला दी।'' माधव की तल्खी ने विजया को चुप करा दिया। उसने दरवाजा खोला। सामने सीमा खड़ी थी। वही चिरपरिचित चुप–सी हँसी, टूटे हुए दाँतों के साथ उसके चेहरे पर बैठी थी। उसमें लॉकडाउन के अनिश्चित दिनों की शंका भी समा गई थी। सीमा उसके घर काम करती थी। बरसों का साथ था। कोरोना के बाद उसका आना बंद हो गया।

''अच्छा! तुम हो.....क्या बात है सीमा.....?'' विजया ने पूछा।

दरवाजा तो खोल दओ.....बघेली वाली हिन्दी में वह बोली। जैसे खिसियाई हुई हो। माधव ने अंतराश खोला....पीछे हटकर खड़ा हो गया वह

भीतर दाखिल हुई और ड्रांइग रूम में शू रैक के सामने ही जमीन पर बैठ गई।

विजया ने फिर पूछा.....''क्या बात है सीमा.....सब ठीक है?''

वह सिर हिलाकर खामोश हो गई। उस हिलाने में कोई संकेत नहीं था। यानी.....आप खुद समझते रहिए कि वह ठीक है या नहीं।

दो क्षण की चुप्पी के बाद उसने कहा.....''हमें दस दिन यहीं रख ल्यो!''

माधव को उसकी बोली कम समझ में आती थी। हैरत की बात यह कि दक्षिण के प्रांत से आने वाली पत्नी उसे बेहतर समझती थी। वह सीमा की बात सुनकर चुप हो गई।

''क्या हुआ.....तुम्हारा आवारा बेटा फिर तंग कर रहा तुम्हें?''

एक क्षण की चुप्पी के बाद सिर घुमा कर वह बोली––''हमें नहीं रहना उसके साथ, मार पीट करतौ!''

माधव का माथा ठनका। माँ को बेटा मारता है! पाँच साल पहले तक जिस लड़के की जुबान नहीं फूटती थी....अब उसमें इतनी गुंडई और कृतघ्नता आ गई कि शराब पीकर माँ को ही मारने लगा!

''देखिए आप ने पहले भी मुझे रोका था। उसी समय मैं उसे ठीक कर देता तो आज यह नौबत नहीं आती। मैं उसे समझाता हूँ। उसका फोन नंबर तो हमारे पास है ना विजया.....?''

''हाँ.....तुम्हारे फोन में सेव है उसका नंबर। देखो.....शायद सीमा के बेटा के नाम से ही होगा।''

उसने फोन मिलाया।

''हैलो.....''

''अरे तुम्हें शर्म नहीं आती निर्लज्ज कहीं के!''

''कौन बोल रहा है!'' उधर से एक कर्कश आवाज आई।

कौन बोल रहा है के बच्चे। तेरी माँ यहाँ खड़ी है। बेचारी इस मुश्किल दौर में यहाँ–वहाँ भटक रही। दो तीन घरों से काम छूट गया है उसका। और तुम उसके साथ मारपीट करते हो। उसके ही पैसों पर पले हो.. ..कितने नीच हो तुम।''

''आप कौन बोल रहे हो.....सर।''

''मैं अमरदीप सोसाइटी से बोल रहा हूँ। सुनो.....तुम्हें आखिरी बार समझा रहा हूँ। अगली बार अगर तुम ने अपनी माँ के साथ बदतमीजी की तो समझ लेना.....खैर नहीं होगी तुम्हारी। मैं सीधाा पुलिस में शिकायत करूँगा।''

''आप मेरी बात तो सुनो.....मेरी कहाँ सुनती है वो।''

''अच्छा.....तो वह तुम्हारी बात नहीं सुनती इसलिए तुम दारू पीकर उसे मारोगे। वाह.....''

''मैंने कहा ना.....ध्यान रखना। अगली बार सीधे थाने जाओगे।'' इतना कह कर उसने फोन काट दिया। सीमा की ओर देखते हुए बोला–''आप अभी अपने घर जाइये। मैंने उसे समझा दिया है। अगर इतने पर भी वह नहीं मानता तो मुझे बताइयेगा। मैं उसका इलाज करवा दूँगा।''

वह चुप बैठी रही। विजया ने उससे अंग्रेजी में पूछा–कान्वी कीप हर हियर?

''अरे यार.....कहाँ जगह है। दो कमरे हैं। एक में बेटा दिन भर पढ़ाई करता है। दूसरे में तुम्हारा व्यापार फैला है। यहाँ इस हॉल में हम दिन भर बैठे रहते हैं। ऊपर से सोसाइटी का प्रेशर है कि किसी मेड को घर में नहीं रख सकते। बात मुझ पर आ जाएगी। मैं क्या जवाब दूँगा? वैसे भी हम किराएदार हैं। हमारी बातें कोई नहीं सुनेगा। सीमा की मुश्किलों से उन्हें कोई मतलब नहीं है।'

उसने विजया की ओर देखा। वह खामोश थीं। माधव की बातों से सहमत भी थी कि सीमा को रखना व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं।

''सीमा तुम जाओ.....अब वह तुम्हें परेशान नहीं करेगा। अगर वह तुम्हारे साथ बदतमीज़ी करता है तो मुझे बताओ। भैया कुछ करेंगे।''

वह निर्विकार भाव से उठ खड़ी हुई। हालाँकि खिन्नता उसके चेहरे पर फैल गई थी। दरवाजा खोल कर बाहर कदम रखने ही वाली थी कि माधव ने उसे रोका।

''सुनिए.....आप पैसे तो लेती जाइये। विजया, इनको दो हजार रुपये दे दो!'' वह चुप खड़ी रही। बिना काम किए पैसे लेना उसे अच्छा तो नहीं लगता था मगर बिना पैसों के गुजारा भी नहीं हो सकता। ऊपर से आवारा

बेटे का आतंक। उसने खामोशी से दो हजार रुपये अपनी साड़ी में बाँध लिए और चुपचाप चप्पल घसीटती हुई बाहर चल पड़ी।

''कैसा दुर्भाग्य है इस औरत का। इस भयावह समय में लोगों का बाहर निकलना दूभर है और लंपट बेटा इसे घर से निकाल रहा। तुम यहाँ रखने की बात कर रही हो। भला तुम ही बताओ, कैसे रखें सीमा को यहाँ?''

''मैं मानती हूँ। मैंने आवेश में वैसा कहा। यहाँ संभव नहीं है रखना।''

''थोड़ा बड़ा घर होता और सोसाइटी में कोई बंदिश नहीं होती तो मैं उसे यहीं रख लेता। बूढ़ी हमारी मदद भी कर देती। मुझे बुरा लग रहा। अपराध बोध भी होता है। लेकिन कुछ कर नहीं सकता। पता नहीं इस बीमारी से कब निजात मिलेगी। अब तो हालत ऐसी है कि न जाने कब तक.. .....''

अगली सुबह जब वह समाचार पढ़ रहा था तो उसका मन एक लाचारगी से भर उठा। एक दिन में चौबीस हजार मरीज सामने आए हैं। सात लाख संक्रमित लोगों के साथ भारत दुनिया का तीसरा सबसे प्रभावित देश हो चुका है। अमेरिका और ब्राजील के बाद भारत का ही नंबर है। उसने कभी नहीं सोचा कि भारत में इतने लोग इस बीमारी से प्रभावित हो जाएँगे। जब यह बीमारी यहाँ फैल रही थी और देश में बंदी लागू हो गई तब वह मान रहा था कि अधिकतम दो से ढाई लाख लोग इस बीमारी से प्रभावित होंगे। आज वह आँकड़ा सात लाख को छू चुका है और निकट भविष्य में इस बाढ़ के थम जाने के कोई आसार भी नहीं हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी अटकलबाजियों को जारी रखते हुए कह दिया है कि अब यह वायरस हवा में फैल रहा। यानी यह विस्तार अब कहाँ जाकर दम लेने वाला है, कोई नहीं जानता। आज अमेरिका हमसे बहुत अधिक बुरी हालत में दिखाई देता है कल हम से भी पीछे छोड़ सकते हैं! ब्राजील को तो बहुत जल्दी हम पछाड़ देंगे....हाँ.....एक बात सकारात्मक है। सात लाख लोगों में से चार लाख पच्चीस हजार लोग स्वस्थ हो चुके हैं। यानी, इस समय संक्रमित मरीजों की संख्या पौने तीन लाख है और रिकवरी रेट भी काफी अच्छी है। मृत्युदर के मामले में भारत कई आधुनिक देशों से बहुत अच्छी स्थिति में है।

***

उन्नीस

सात जुलाई की सुबह वह साग–सब्जी खरीदने के लिए घर से बाहर निकला। सड़क पर आम दिनों के मुकाबले आधे से भी कम लोग थे। सबके चेहरे ढँके हुए। दुकान के बाहर छोटी–सी कतार थी। तीन–चार फीट की दूरी पर लोग सशंकित से खड़े थे। सामान खरीद कर थैले में रखते हुए उसने पैसे चुकाए। दुकानदार को बीस का फुटकर दिया। उन पैसों को हाथ में लेकर जेब में डालने के बाद वह वापस मुड़ा ही था कि नाक पर बँधा कपड़ा ढीला होकर लटक गया। वह हड़बड़ी में अपने हाथ से चश्मे के ऊपर कपड़ा ठीक करने की कोशिश करते हुए आँख को छू गया। उसे फौरन झटका सा लगा.....कहीं मैंने संक्रमित हाथ से तो चेहरा नहीं छुआ। कहीं उन पैसों को छूते हुए मेरे हाथ में वायरस तो नहीं आ गए! वह तनाव से भर उठा। कार में सामान रख कर उसने फौरन सैनिटाइजर से अपने हाथ साफ किए। उन्हीं हाथों से चेहरे को भी पोछने की कोशिश की।

यह एक पागपन था। माधव इस पागलपन की ज़द में था। न जाने कितने लोग होंगे! वह उसी क्षण के बारे में सोचते हुए आहिस्ता–आहिस्ता ड्राइव कर रहा था। उसने देखा.....दिन भर सब्जियाँ बेचने वाले कतार से बैठे हैं। न जाने कितने ही लोगों के संपर्क में आते होंगे ये सब्जी वाले। कितने हाथों से छुए पैसे लेते–देते होंगे। ये तो हर बार हाथ सैनिटाइज़ नहीं करते। जाने–अनजाने कितनी ही दफे ये चेहरे छूते होंगे। जब ये स्वस्थ हैं..... तो उसे क्यों भय होता है! यानी यह शंका लगभग निर्मूल है कि बीमारी वस्तुओं या सरफेस से फैलती है! इसके फैलने का एकमात्र कारण किसी संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आना है! खुद को बचा कर रखा जा सकता है! अजनबियों से नहीं मिलो तो बचे रह सकते हो! लेकिन यह कौन बता सकता है कि जिस सब्जी या फल वाले से वह संवाद कर रहा है वह संक्रमित नहीं है! इसकी गारंटी तो कोई नहीं दे सकता। खुद से लड़ते हुए और खुद को समझाते हुए वह घर वापस लौटा। दरवाजे के पास एक टब में सारे सामान रखते हुए वह बाथरूम में घुस गया, जैसे उसे कोई छूत की बीमारी हो।

पाँच दिन में एक लाख नए मरीज.....! यह क्या हो रहा है? वेबसाइट पर न्यूज़ पढ़ते हुए उसकी आँखें फटी की फटी रह गईं। ऐसा वायरस तो कभी देखा नहीं! किस रफ्तार से यह संक्रमण फैला रहा है! भारत तो अमेरिका बनने की ओर चल पड़ा है!

वह हताशा में डूब गया जैसे अंधकार से भरी अंतहीन कंदरा में गिरता जा रहा हो। हर बार की तरह इस बार भी उसकी उम्मीदें धराशायी हो गई थीं। यहाँ–वहाँ से खबरे आ रही थीं कि कई राज्यों में दुबारा सख्ती से लॉकडाउन कर दिया गया है। उत्तर प्रदेश की सीमाओं को तीन रातों के लिए सील किया जा रहा। सारी दुकानें–दफ्तर फिर से बंद करने के फ़रमान जारी हो चुके है। उत्तरप्रदेश में कोरोना को काबू में करने के लिए कठोर अनुशासन का पालन किया जा रहा। लेकिन पिछले एक सप्ताह से वहाँ भी केस बढ़ रहे हैं। इसीलिए शुक्रवार की रात के दस बजे से सोमवार की सुबह के पाँच बजे तक जरूरी सेवाओं को छोड़कर सबकुछ बंद करने का सरकारी आदेश जारी हुआ है।

ऐसा लगता है जैसे त्राण ही नहीं है.....। पता नहीं क्या होने वाला है! वह बुदबुदाया।

''क्या खुद से बातें कर रहे हो.....''

''क्या बातें करूँगा भई। मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा। मानो..... मनुष्य को जकड़ कर पटक दिया गया हो। एक वायरस पूरी दुनिया के सीने पर चढ़ बैठा है और सारा का सारा विज्ञ संसार हाँफ रहा। उसके सारे दावे, दंभ....फूस की तरह जल कर भस्म हो गए हैं। उससे कुछ हो नहीं पा रहा।''

''लेकिन अभी तीन चार दिनों पहले तो तुम बहुत आशावादी थे। कह रहे थे कि अब हालात बेहतर होंगे।'' विजया ने कुछ चिन्ता.....कुछ आश्चर्य के साथ कहा।

''तुम समाचार नहीं पढ़ती.....इसीलिए। देखो.....कितनी तेजी से संक्रमण फैल रहा। लोग ठीक भी हो रहे हैं। मगर इस बीमारी को रोकने का तो कोई रास्ता ही नहीं दिख पड़ता है। लॉकडाउन....लॉकडाउन! लोग मानते नहीं। अपनी मर्जी से नियम तोड़ते हैं। फिर वही स्थिति हो जाती है। पहले ही अगर लॉकडाउन का सख्ती से पालन किया होता तो आज ये दिन न देखने पड़ते।''

''महाराष्ट्र.....तो हाथ से निकल ही चुका है। तमिलनाडु की भी वही स्थिति होती जा रही है। बड़े शहरों में मुंबई.....दिल्ली.....चेन्नई बेलगाम नजर आते हैं। कर्नाटक, जहाँ कुछ दिनों पहले तक स्थिति नियंत्रण में थी.....अब वहाँ भी विस्फोट होने लगा है। कोई नहीं जानता.....यह सिलसिला कब खत्म होगा। अंतहीन सा दिखाई पड़ता है।

''देखो.....तुम कुछ ज्यादा परेशान हो गए हो। हर समस्या का हल होता है। तुम्हें भगवान पर भरोसा है ना? यह भी खत्म होगा ही। अभी हमारे देश में यह उफान पर है। जल्दी ही यह सिमटेगा।''

''क्या खाक सिमटेगा! हर आदमी बस अंदाजा लगा रहा है। वहाँ एमआईटी में बैठे विज्ञानी कुछ कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन कुछ और कहता है। हमारे देश के विशेषज्ञ कुछ कहते हैं।''

''देखो..... एमआईटी.....ऑक्सफोर्ड वालों का अहंकार धूल धूसरित हो गया है। एक वायरस ने उनकी सारी आधुनिकता और चमक–दमक को इतना मलिन.....क्लान्त, विवश कर दिया कि वे भौंचक्के हैं। उनके लिए भारत फिलहाल एक प्रश्न बनकर सामने है। जहाँ इतनी विशाल जनसंख्या के बावजूद उनसे बहुत कम रोगी हैं और रिकवरी रेट में भी उनसे बहुत बेहतर हैं। भय और कुंठा उनके विचारों से झलकते हैं। वे डरा रहे हैं कि आने वाले दिनों में भारत में प्रतिदिन लाखों मरीज होंगे....यह सब खुद को संतुष्ट करने... ...खुश रखने का बहाना है। तुम तो समझ सकते हो उनकी मानसिकता।''

माधव को थोड़ी तसल्ली हुई। यह वही बात है जो वह दूसरों से कहता रहा है। आज वह खुद हिला हुआ है। अनिश्चितता ने उसे क्षुब्ध किया है।

अगली सुबह जब वह सो कर उठा तो उसने अपने बेटे को एकदम बढ़िया कपड़ों में तैयार बैठा देखा। सुबह इन दिनों वह माधव से आधा घंटा पहले जाग जाता है। उसकी ऑनलाइन क्लास होती है। आज क्लास नहीं है फिर भी महाशय तैयार दिखे। नहा धोकर, बढ़िया शर्ट पहन कर बैठे हुए। उसने पूछा; क्या बात है, आज एकदम तैयार दिखाई दे रहे हो?

''अरे पापा.....कुछ अच्छे कपड़े पहने कितने दिन हो गए हैं! बस ऐसे ही पहन लिया!''

बेटे का जवाब अप्रत्याशित था। उसने यह नहीं सोचा था कि बच्चों का मनोविज्ञान आत्मतुष्टि के लिए उन्हें ऐसा भी करने को विवश कर सकता है। उसे अपने बेटे की बात सुनकर खुशी तो हुई लेकिन भीतर एक कचोट हुई। गहरा अवसाद....कुछ न कर पाने की छअपटाहट। कैसा निर्मोही पाश है यह! विकट जकड़न! बारह साल का लड़का चार महीनों से घर से बाहर नहीं जा सका है। घर भी ऐसा, जहाँ छत पर जाने के लिए भी चार फ्लोर ऊपर चढ़ना होता है। साथ में कोविड–19 के मरीजों का खतरा। वह ले

देकर दो कमरों में घूमता रहता है। दिन भर फोन या टीवी। टीवी में भी नया कुछ नहीं।

माधव खुद तो किसी न किसी काम से, थोड़ी देर के लिए ही सही, बाहर जाना रहता है। जाना ही होता है उसे। पर ये लोग तो कारा भोग रहे। सबसे स्वच्छंद समय सबसे बंधनमय हो गया है! माधव खुद बचपन में कभी एक सप्ताह के लिए भी बीमार पड़ा तो उसका मन विद्रोह कर उठता था। वह घर से भाग जाना चाहता था। कहीं खेत–खलिहान, बगीचे में। किसी के द्वार–मचान के पास। कहीं गुल्ली के खेल में। कहीं कबड्डी, क्रिकेट। मगर ये तो कुछ नहीं कर सकते। अधिक से अधिक सोसाइटी में नीचे साइकिल चला सकते हैं। साइकिल भी टूट चुकी है। नई खरीदना भी आफत! बाहर खेलने जाता था, वह छह महीने से ठप है। कोरोना से पहले वार्षिक परीक्षा के कारण जनवरी–फरवरी से ही जाना बंद हो गया। मार्च से देश पर कुंडी चढ़ा दी गई।

न तो स्कूल। न कोचिंग। न खेल। न मेल मुलाकात। न कहीं घूमना–फिरना। यह कैसी विकट बंदी है! बच्चे पिस गए हैं। अमूल्य बचपन का एक वर्ष निर्दयता से छीन लिया गया है। महाकवि ने लिखा है; क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर, रोग शोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर!

रोग शोक में तो हँसता है किन्तु इस बंधन में वह कैसे हँसे? वह तो मुरझा गया है। क्लान्ति ने उसे घेर लिया है। वह नहीं जानता कब उसके जीवन में सामान्य सूर्योदय होगा! कब वह फिर से उन्मुक्त, तरंगित जीवन जी सकेगा!

उसने अपने बेटे को पास बुलाया। प्रेम से उसे गले लगाकर थपकियाँ देने लगा। फिर हौले से बोल पड़ा–''चिन्ता न करो बेटे.....जल्दी ही सब ठीक होगा। तुम्हें घुमाने ले चलूँगा। भले ही हम बाहर न निकले.....कार में बैठे–बैठे तो आवारा की तरह फिर सकते ही हैं।''

आवारा की तरह.....? विष्णु ने कुछ विस्मय से पूछा।

''हाँ.....आवारगी हमेशा खराब नहीं होती। मैं जिस आवारगी की बात कर रहा हूँ, उसमें कुछ बुरा नहीं मेरे बच्चे। वह स्वच्छंद होने के समानांतर है। जिसे तुम अंग्रेजी में फ्रीक आउट कहते हो ना.....वही।''

''समझझ गया मतलब यूँ ही एक लंबी–सी ड्राइव। हाँ चलो.....पापा। कुछ तो देखेंगे बाहर।''

''हाँ बेटा.....वही।''

वह फोन उठाकर कोविड संक्रमण से जुड़ी खबरें देखने लगा। यह एक ऐसी दिनचर्या हो गई है कि बगैर इसके कोई दिन नहीं बीता करता। आज की खबर में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि देश में कोविड के सक्रिय मामलों में नब्बे फीसद लोग सिर्फ आठ राज्यों में हैं। यानी महाराष्ट्र..... तमिलनाडु, तेलंगाना, दिल्ली, कर्नाटक, गुजरात, उत्तरप्रदेश और बंगाल में ये सबसे अधिक हैं। एक तरह से देश के अधिसंख्य मरीज इन्हीं राज्यों में हैं। इनमें भी महाराष्ट्र.....तमिलनाडु.....दिल्ली जैसे राज्यों में सक्रिय रोगियों की तादाद सबसे ज्यादा हैं। कर्नाटक में हाल के दिनों में संख्या बढ़ने लगी है। उत्तर प्रदेश में भी संख्या पिछले दिनों ही बढ़ी लेकिन उत्तर प्रदेश में काफी सख्ती है। वहाँ कोई विस्फोटक स्थिति नहीं। यूँ कहा जाये कि उत्तर प्रदेश ने अपनी सर्वाधिक जनसंख्या और उसके घनत्व के साथ यह दर्शाया है कि मैनेजमेंट और रोकथाम के कारगर उपायों से इसे बेतहाशा बढ़ने से रोका जा सकता है। देश में अब तक जितनी मौतें इस बीमारी से हुई थीं.....उनका अस्सी प्रतिशत केवल बत्तीस जिलों में था।

जिस समय वह कोरोना के आँकड़ों में उलझा हुआ थाा.....तभी सीढ़ियों पर शोरगुल और धपा–धप की आवाज होने लगी। इन दिनों सीढ़ियों पर बच्चे भी ऊपर–नीचे भागते हुए नहीं दिखाई देते। बस एक लहरीला सन्नाटा सोया रहता हैं उसने फौरन दरवाजा खोल कर झाँकने की कोशिश की.....तब तक लोग वहाँ से जा चुके थे। लेकिन आवाज तेज–तेज आ रही थी––

''जल्दी करो.....जल्दी करो.....अरे, लिफ्ट अभी तक आई क्यों नहीं।'' इस हल्ला–गुल्ला का असर ये हुआ कि दो तीन लोग और बाहर निकल आए। दूसरे तल पर रहने वाले मिस्टर अग्रवाल और मलिक भी अपने–अपने घरों के पास कोरिडोर से झाँकने की कोशिश कर रहे थे कि माजरा क्या है....

नीचे की आवाज आ रही थी। एक आदमी तेज–तेज चिल्ला रहा था–– ''अरे व्हील चेयर से जल्दी उतारो...किसी तरह से इन्हें गाड़ी में बिठाओ।''

वह सूखे पत्तों–सा काँप उठा। फिर वही शाम आई है क्या! उसका मन नहीं माना। वह फौरन अपने चेहरे पर कपड़ा लपेट कर सरपट नीचे भागा। पत्नी जोर से चिल्लाई––तुम पागल हो गए हो क्या.....! मगर तब जैसे उस पर सनक सवार हो गई थी।

नीचे का मंज़र निराशाजनक था। एक बुजुर्ग व्यक्ति जो यदा–कदा अपनी कार से उतरते हुए सोसाइटी में दिखाई देते थे उसे.....वह व्हील चेयर पर बेसुध पड़े थे। गर्दन एक ओर झुकी हुई थी। चेहरा मुरझाया हुआ था। कांतिहीन देह.....। उनके बेटे उन्हें उतारकर कार में बिठाने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन भारी शरीर और पूरी तरह से शिथिल होने के कारण वे उन्हें उठा नहीं पा रहे थे। सबके चेहरों पर मास्क था।

''अरे जल्दी करो.....पापा कोई हरकत नहीं कर रहे। उधर से उठाओ. .....काँख में हाथ लगाकर।''

तो क्या.....ये भी कोरोना से संक्रमित हो चुके हैं? और यहाँ किसी को खबर तक नहीं है! यह क्या हो रहा है! वह स्तब्ध.....ठिठक कर देखता रहा। मदद के लिए उठने वाले सभी मानवीय हाथ मरोड़ कर तोड़ डाले गए हैं। ऐसी तमाम परिस्थितियों में आदमी अपने हाथों को कंधों से जुड़ा एक बेकार अंग मानकर देख सकता है। बस देख सकता है.....वह भी देखता रहा।

उन अंकल को किसी तरह कार की पिछली सीट पर बिठाया गया। बिठाते ही वे दूसरी ओर लुढ़क गए। ओह.....शरीर तो जा रहा है! ये कैसे प्राणहीन होकर गिर रहे हैं.....क्या अस्पताल पहुँचने तक साँसें बदन में रह पाएँगीं.....?

वह अंदाजा लगा रहा था कि बूढ़े अंकल को कोविड ही है.....। हाँ..... इन दिनों तो और कोई बीमारी होती नहीं! और कोई बीमारी रही होती तो उनके बेटों ने मदद के लिए पुकारा होता! वे देख तो रहे थे कि मैं नीचे खड़ा हूँ! एक दो लोग और भी थे वहाँ!

कार सोसाइटी से बाहर जा चुकी थी। शोर थम चुका था। गुलमोहर की शाखें हौले–हौले कांप रही थीं। उस पर बैठी बारबेट लगातार बोल रही थी। इन दिनों बारबेट बहुत बोलती थी। पिछले वर्षों में भी इसी तरह से वह वाचाल हुई हो....उसे ध्यान नहीं आता। या यह एक शंकाग्रसत सोच मात्र था! मगर बारबेट मार्च के महीने से ही बोलती जा रही है। और उसका बोलना जैसे दुख को बोल देता है। दूसरे फ्लोर पर रहने वाले मिस्टर मलिक भी नीचे उतर आए। माधव ने उनसे पूछा––क्या अंकल को भी कोविड हो गया है?

''ऐसा ही लगता है। हैरत की बात ये है कि ये लोग बहुत संवदेनशील और समझदार हैं। फिर बात छुपाई क्यों?''

ताज्जुब है!

''उनकी हालत तो बहुत बिगड़ी हुई लगती है। कहना नहीं चाहता पर मुझे भय है।'' मिस्टर मलिक ने डूबते हुए कहा।

''हाँ.....जो देखा.....वह तो बहुत चिन्ताजनक है। एक तरह से डरावना। पता नहीं क्या हो रहा इस सोसाइटी में।''

''बीच में मिस्टर शाह के ठीक होने के बाद थोड़ा सुकून था। मुझे लगा कि जब केसेज नहीं होंगे। फिर मिस्टर चक्रवर्ती और उनकी पत्नी बीमार हुए। अब जोशी जी की बुरी हालत हो रही है।'' मिस्टर मलिक कुछ परेशान दिखाई दे रहे थे।

अच्छा तो ये जोशी जी हैं.....माधव ने सोचा।

''अंकल मैं चलता हूँ।''

''हाँ ठीक है....लेट अस प्रे.....और क्या कर सकते हैं!''

''जी।''

वह चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए उसने अपने चेहरे पर बँधे कपड़ों को और कस कर बाँधा। इन्हीं सीढ़ियों से अभी जोशी अंकल के बेटे नीचे उतरे थे! अगर जोशी अंकल को कोविड है तो उनके इतने करीब रहने वाले बेटे भला कब तक बचे रहेंगे!

***

बीस

उस रोज मौसम सुहाना था। सुबह से आकाश मेघाच्छन्न था। ठंडी हवा बह रही थी। वह अपने ड्राइंग रूम की खिड़कियों के पास कुर्सी लगा कर बैठ गया और झरोखे से दिखाई दे रहे चौकोर आकाश पर आँखें गड़ाकर लिखने लगा–

मेरे सामने मटमैला आकाश है। वहाँ इस समय परिन्दे उड़ रहे हैं। उड़ नहीं रहे, बह रहे हैं। एक चील अपने डेने खोल कर तिरता है। बीच–बीच में पागल हवा उसका रास्ता रोकती है। वह थरथराता है। दो बार अपने पंखों को हिलाता है फिर तिरने लगता है। तभी दूसरा चील ठीक उसके बराबर आकर लहराने लगता है। दोनों मिलकर साथ–साथ बहते हैं। अनुशासनबद्ध! अद्भुत लय–ताल है दोनों में! एक ईश्वरीय सिंफनी! बीच–बीच में छोटी चिड़ियाँ ऐसे उड़ रही हैं जैसे बच्चे इस मौसम में किसी मैदान में मस्त–मगन भागते–फिरते हैं, दोनो हाथों को लहराते हुए।

कई बार लगता है जैसे ये परिन्दे उत्सव मना रहे। अच्छा मौसम इनके लिए पर्व जैसा है। आज धूप नहीं है। ठंडी हवा बह रही है। इन खिड़कियों से दाखिल होकर मुझे छूती है। मेरे ऊपर टँगा पंखा कभी जोर–जोर से हनहना उठता है। बाहर तो सबकुछ मुक्त है। यह अनंत अथाह आकाश तो परिन्दों का क्रीड़ांगन ही है। अभी–अभी दो चार उन्मत्त चिड़ियों के कल्लोल के बीच एक हवाईजहाज गुज़रा है। आसमां में एकदम ऊपर..... ऊपर। बड़े दिनों के बाद हवाईजहाज को यहाँ से जाते देखा। एकदम शांत स्थिर। वह गुजर गया। इन खिड़कियों का विस्तार ही कितना है!

लिखते–लिखते मैं जब भी नज़र उठाकर देखता हूँ एक विहग उड़ता हुआ दिखाई दे जाता है। आकाश सूना नहीं रह पाता। निश्चय ही आज वे आनंदमंगल कर रहे। सभी बस निरुद्देश्य उड़े जा रहे। इस वातानुकूलित अंबर में विहार कर रहे। कभी दूर बहते किसी परिन्दे को देखकर मुझे धोखा होता है कि कोई पतंग है। पर वह पतंग नहीं, परिन्दा ही है। उड्डयन की सभी कलाएँ दिखलाते हुए वह उड़ रहा है। कभी सीधा, कभी टेढ़ा। कभी कंपित। कभी अचंचल।

मैं यहाँ बैठे–बैठे दिन काट सकता हूँ। इस आकाश को निहारते हुए। अभी एक क्षण पहले एक सुंदर सा बगूला सामने की छत के ऊपर से उठा और इस नन्हें से लेंस को पार कर गया। चील, बाज, बारबेट, कबूतर, बगूले,

छोटी चिड़ियाँ सभी उड़ रहे हैं। उनका आकाश मानवजनित कष्टों से उठा हुआ है। उन्हें वह भय नहीं जो हमें है....

दोपहर को उसने सोसाइटी का व्हाट्सएप ग्रुप देखने की कोशिश की। वहाँ सन्नाटा था। आखिरी अपडेट एक दिन पुराना था। किसी सज्जन ने कोविड–19 का उपचार सुझाया था। इन दिनों हर आदमी एक संभावित चिकित्सक है। सबके पास कुछ न कुछ नुस्खे हैं। एलोपैथी से लेकर होम्योपैथी और आयुर्वेद तक। उसने क्षुब्ध होकर फोन बंद कर दिया। उसे थोड़ी छटपटाहट–सी हो रही है। वह शीघ्रता से मिस्टर जोशी के बारे में जानना चाहता है। उसकी हर ऐसी तीव्रता मिसेज खन्ना की दुखद मृत्यु से भयास्पद हो जाती है। वह किसी बुरी खबर की आशंका से दहल उठता है। मगर उस रोज पूरी शांति छाई रही। कहीं कोई हलचल नहीं। कोई नया मैसेज नहीं। सभी ठिठके हुए अपने–अपने घरों में कैद हो गए। उन्होंने किसी तरह की अटकलबाजियों से भी परहेज़ कर लिया है। ऐसा लगता है जैसे चलने को उत्सुक बच्चा पहला कदम उठाते ही लड़खड़ा कर गिर गया हो और उसका सारा विश्वास डगमगा गया हो।

शाम को वह नीचे उतरा। बाहर ठंडी हवा बह रही थी। वह कुछ देर निश्चल खड़ा रहा। अपनी ही कार की टेक लिए इधर–उधर ताकता रहा। फिर टहलने लगा। सोसाइटी में चुप्पी थी। एक–दो लोग बालकनी में कुछ काम करते हुए दिखाई दे रहे थे। बच्चों का छोटा सा एम्यूज़मेंट पार्क शांत, निश्चल पड़ा था। झूले ने जाने कब से थिर हैं। मंकी–बार मूक खड़ा है। वहाँ कोई स्वर.....चहलकदमी नहीं। आम दिनों में इस समय पार्क बच्चों के उधम से भरा रहता था। अभी एक अजीब सा निर्वाक.....परित्याग वहाँ पसरा हुआ था। वहीं उसे जोश घूमता हुआ मिला। जोश भी अकेला सैर कर रहा था। दोनों एक–दूसरे से टकराए.....इशारों में हैलो किया और आगे बढ़ गए। अगले चक्कर में जोश फिर सामने आया। माधव रुक गया। उसने पूछा; ''मिस्टर जोशी के बारे में कोई जानकारी है आपको?''

जोश ने कुछ आश्चर्य से उसे देखा। आँखें फाड़कर बोल पड़ा–''वो तो मर गया ना– आपको मालूम नहीं?''

माधव का मुँह खुला रह गया

''हाँ.....आज दोपहर को ही डेथ हो गया। ही वाज़ वेरी सीरियस..... इस एज में निमोनिया कैसे हैंडल करेगा?''

जोश मलयाली था। उसकी हिन्दी लिंग और वचन से मुक्त थी। माधव चुपचाप उसे देखता रहा.....जोश फिर बोलने लगा–''आई डोंट नो..... ..व्हाट इज़ गोइंग टू हैप्पन....इदर हालत ठीक नहीं है।''

उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। क्या कहे.....मृत्यु कितनी सहज हो गई है! यों तो वह सृष्टि की उत्पत्ति से ही सहज रही है! जैसा जीवन, वैसी मृत्यु! लेकिन इन दिनों उसने धावा बोल दिय है! कब किसका नंबर आ जाये.....कोई नहीं जानता। अचानक एक ठंडा–सा समाचार आता है कि हाँ.... ...वह मर गया। मृत्यु का ऐसे आ जाना और आकर चले जाना उसने नहीं देखा। मरने वाला सदैव अकेला ही होता है। हाँ, उसकी विदाई अकेली नहीं होती! इन दिनों वह अपनी सामाजिकता से दूर कर दी गई थी। मृत्यु का केवल समाचार रह गया था। उसकी अनुभूति नितांत एकाकी हो गई थी। जो मर गया.....बस मर गया, विच्छिन्न हो गया.....हर स्पर्श.....हर छुअन, हर विदाई से!

जोश आगे अपने रास्ते पर बढ़ चला था। वह जड़ खड़ा रहा.....फिर धीमे–धीमे कदम बढ़ाने लगा। जोशी जी के जाने की घटना कितनी सामान्य होकर रह गई थी। पहले मिसेज खन्ना.....फिर मिस्टर जोशी। मिस्टर जोशी उम्र में मिसेज खन्ना से बड़े रहे होंगे। मिसेज खन्ना तो मुश्किल से साठ–पैंसठ की रही होंगी। उसे सिहरन–सी हुई। लगा जैसे.....हवा में कोई विषाणु तैर रहा है। ठंडी हवा का स्पर्श जो कुछ देर पहले तक सुखद था..... वही चुभने लगा। मानों त्वचा के नीचे कुछ चल रहा हो। एक अजीब सी सरसराहट....। नीचे सैर करने की इच्छा मर–सी गई। मानों कोई जाँ पर सवार हो गया हो। कोई मनौवैज्ञानिक दबाव। वह दबे पाँव घर वापस लौट आया।

सोसाइटी में सैर करने के बाद आम तौर पर वह सहज रहा करता था। कपड़े बदलने की उसे जरूरत महसूस नहीं होती थी। लेकिन आज घर में दाखिल होने के साथ ही वह वाशरूम में घुस गया। उसने सारे कपड़े उतार फेंके। बार–बार हाथ और चेहरा धोने के बाद वह बाहर निकला। खामोशी से सोफे पर बैठ गया। मोबाइल फोन उठा कर उसने व्हाट्सएप ग्रुप में देखने की कोशिश की। वहाँ कुछ देर पहले ही प्रेसिडेंट ने मिस्टर जोशी के निधन का संदेश लिखा था। नीचे वही रिप.....रिप.....

***

इक्कीस

उस दिन सोशल मीडिया पर यूँ ही नज़र डालते हुए वह थम सा गया। उसने देखा कि दो–तीन लोगों ने अपनी वॉल पर एक विचित्र सा समाचार लगा रखा है। एक जानी पहचानी तस्वीर, उसके साथ गुमशुदगी की खबर। जिस व्यक्ति के गुम हो जाने की जानकारी दी गई थी, उसे माधव भी जानता था। भलीभाँति परिचित था। बड़े ज़िंदादिल, हट्टेकट्टे.....लंबे चौड़े मनुष्य थे विपिन जी। यदा–कदा माधव ने उनसे फोन पर बात भी की थी। उन्हें कोविड हुआ था। कोविड से उबरने के बाद वह घर लौटे। बुझे–बुझे से रहते थे। एक विचित्र सा मानसिक उद्वेग उन्हें घेरे रहता। एक दिन सुबह वह अपने घर से कहीं निकले। सुबह को गए विपिन जब बिना किसी सूचना के देर दोपहर तक घर नहीं लौटे तो पत्नी और बच्चों को चिंता हुई। उन्हें फोन लगाने की कोशिशें की जाने लगी। मगर फोन तो घर पर ही रखा हुआ था। मेज़ पर उनकी डायरी पड़ी थी। उसके बीच एक कलम धँसी पड़ी थी। उस पन्ने को पलटते हुए पत्नी के हाथ काँप उठे। उसमें लिखा था–मैं जा रहा हूँ। मुझे खोजने की कोशिश न करना। मैं ठीक हूँ। कब लौटूँगा....नहीं जानता।

घर में कोहराम मच गया। शरीर और मन से दृढ़–सा दिखने वाला कोई मनुष्य किसी वायरस से संक्रमित होकर इतना टूट सकता है क्या? क्या वह इतन अवसादग्रस्त हो सकता है कि अपने ही परिजनों के अविभाज्य प्रेमसंबंध, उस दुर्निवार मोह के बंधन को काट कर कहीं यूँ ही गुम हो जाये! एक दिन अचानक घर–बार छोड़कर कहीं चला जाये! क्या कोविड–19 मनुष्य की देह उसकी चेतना पर इतना गहरा असर करता है? लेकिन उसके ही कितने दोस्त तो इस बीमारी से वैसे ही ठीक हो गए, जैसे आम बुखार में कोई स्वस्थ हो जाता है। तो, निश्चय ही इसका असर अलग–अलग लोगों पर अलग होता है। तभी तो अस्सी साल के लोग तक ठीक हो रहे और तीस साल का आदमी गुजर जा रहा।

विपिन के गायब होने का समाचार सोशल मीडिया पर कुछ दिनों तक टंगा रहा। फिर धीरे–धीरे उतरने लगा। एक सप्ताह तक लोगों ने यदा–कदा उनसे अपील की फिर सब कुछ पूर्ववत होता चला गया। आदमी अपनी दुनिया में रमता गया। कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त.....सबको अपनी ही किसी बात पे रोना आया! मनुष्य वस्तुतः बहुत कुछ भूलने.....बिसार कर आगे बढ़ने की शक्ति रखता है। विस्मृति का यह विन्यास उसकी

बुनावट में ही है। माधव ने देखा कि सोशल मीडिया पर अब विपिन के बारे में कोई बात नहीं करता। जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो....! हाँ, एक आदमी बीमार पड़ कर मानसिक रोगी हो गया और घर से कहीं चला गया, तो कोई कब तक उसकी चिन्ता करे! यहाँ तो पूरा देश ही इस मनहूस मर्ज से मुक्ति चाहता है।

नोएडा बॉर्डर शुरू होने से पहले गाड़ियाँ रेंगने लगी थीं। चार अलग–अलग लेन थी। उन लेनों का कोई अनुशासन नहीं था। आगे सड़क पर दो दिशाओं से पुलिस के पिकेट्स लगाए गए थे। बीच में अंग्रेजी के अक्षर ` के आकार का एक संकरा–सा रास्ता छोड़ा गया था। वहाँ से लोग धीमी गति से गुजर रहे थे। इस सख्ती की वजह वह नहीं समझ पाया। एक दिन पहले ही तो यहाँ से गुजरा था। तब पुलिस के पिकेट्स सड़क के किनारे थे। रास्ता खुला था.....लोग आराम से आ जा रहे थे। पिछले कुछ दिनों से यही सिलसिला चल रहा था। फिर आज अचानक क्या हुआ.....? उसने सुबह खबर नहीं पढ़ी। क्या सरकार ने फिर से दिल्ली से लगने वाली सीमाओं को सील कर दिया है?

रेंगते हुए थोड़ा और आगे बढ़ने पर लगभग यह साफ हो गया कि आगे कल जैसी सुगमता नहीं है। कुछ तो ऐसा फैसला लिया है सरकार ने कि सख्ती अचानक बढ़ गई है। लेकिन इस तरह से सप्ताह के अंत में दो दिन का लॉकडाउन या अचानक तीन दिनों तक दिल्ली से लगने वाली सीमाओं को सील कर देने से क्या हासिल होगा? क्या इससे संक्रमण कम हो जाएगा? अगर सरकार को यह अनुभव हो रहा है कि स्थिति सँभल नहीं रही तो वह क्यों नहीं पूरे देश में दुबारा पंद्रह दिनों की पूर्ण बंदी कर देती! एकदम कर्फ्यू। यूँ बार–बार सड़कें खोल–बंद करने से उलझने बढ़ती हैं। आदमी ऊबता है। सोच में डूबा हुआ माधव अपनी कार हौले–हौले सरकाते हुए पुलिस पिकेट्स के पास पहुँचा।

दाहिनी ओर खड़े छह–सात जवानों में से एक ने आगे बढ़ कर पूछा.... ..कहाँ जा रहे हो.....? उसने चेहरे पर मास्क लगाया। कार का शीशा जरा सा नीचे कर जवाब दिया–

''नोएडा.....''

''पास है?'

''कैसा पास? कल तो बिना किसी पास के गया हूँ। आज फिर क्या हो गया?''

''यह तो सरकार से पूछो क्या हुआ? बिना पास के नहीं जा सकते। बार्डर सील है।''

अब क्या जवाब दे! पीछे से हॉर्न का शोर हो रहा। पुलिस वाले ने इशारों में उसे यू टर्न लेने को कहा। वह चुपचाप मुड़ गया। मुड़ते हुए उसे बड़ी कोफ्त हुई। मन खिनन हो गया कुछ नियमित....निश्चित रहा ही नहीं जैसे.......! बाहर कोई भरोसा नहीं! कब कहाँ पुलिसवाला रोक ले......वापस लौटने को कह दो!

उसकी गाड़ी घर वापसी के रास्ते पर धीमे–धीमे चल पड़ी। आगे लालबत्ती पर रुकते हुए उसने फोन स्ॉल किया। खबर थी कि उत्तरप्रदेश सरकार ने सप्ताहाँत तक की तालाबंदी कर दी है। कितनी अजीब बात है......! इस लॉकडाउन से क्या होने वाला है! जैसे हताशा में डूबा आदमी कुछ ऊअपटाँग हरकतें करने लगता है.......उसके लिए यह कदम कुछ वैसा ही था। तो क्या सरकार के पास अब कोई पक्की प्लानिंग नहीं है? चूँकि वह अधिकांश क्षेत्रों को खोल चुकी है.....या तालाबंदी का फैसला राज्य सरकारों के अधीन है इसलिए वह प्रयोग के तौर पर छोटे–छोटे निर्णय ले रही?

जुलाई के तीसरे सप्ताह के मध्य तक भारत दस लाख संक्रमित लोगों का देश था। दस लाख! यह आँकड़ा एक डरावनी कल्पना का सत्य था। माधव ने कभी सोचा था......यूँ ही जैसे कोई ख्याल आया हो......कि भारत में अगर कोरोना का संक्रमण फैला तो वह संख्या अधिकतम दस लाख होंगी!

आज भारत दस लाख का आँकड़ा पार कर चुका है। हैरत की बात यह कि आठ लाख से दस लाख को छूने में सिर्फ छह दिन लगे। करीब पच्चीस हजार लोग इस बीमारी से अब तक मर चुके थे। जंगल में आग लग चुकी है। वह तलहटी से चोटियों की ओर सरसराती हुई बढ़ रही थी। लोग हताश.....निराश होकर सीने पर हाथ रख बस देख रहे हैं।

''यह तो बेकाबू हो गया है। ऐसा लगता है जैसे खामोश होकर तमाशा देखने के सिवा हमारे पास कोई चारा नहीं है।''

ऐसा क्यों कहते हो!........विजया ने अनभिज्ञता दिखलाई।

''तुम तो ऐसे बात करती हो जैसे तुम्हे कुछ मालूम ही नहीं।''

''नहीं........मैंने वह आँकड़ा देखना बंद कर दिया है। उससे मन दुखता है।''

''हर दिन तीस हजार से आधिक लोग संक्रमित हो रहे हैं। मुझे डर है कि कई राज्यों में इसकी जाँच बहुत कम हो रही। अगर गाँव–गाँव और कस्बों तक सघन जाँच शुरू हो जाये तो हर दिन पचास–साठ हजार मामले सामने होंगे। आखिर वही हुआ.....जो दुःस्वप्न था। मैं गलत हो गया। मेरे सारे अनुमान.....सारी आशावादिता धरी की धरी रह गई। यह पूरे देश को ढँकता जा रहा है।''

''लेकिन तुमने ही कहा था कि भारत में कोविड से स्वस्थ होने वाले लोगों की संख्या बहुत ज्यादा है। रिकवरी रेट.....! और मृत्यु दर भी अन्य देशों से कम है।''

''यह सच है विजया कि पौने सात लाख ठीक हो चुके हैं। यानी जाँच और टेस्टिंग के आँकड़ों के मुताबिक सवा तीन लाख ही सक्रिय मरीज हैं। लेकिन संक्रमित लोगों की संख्या तो बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। इसके कम होने के कोई आसार नहीं दिखाई दे रहे। न जाने क्यों यह श्रृंखला अंतहीन सी होती जा रही!''

''जीना दूभर हो गया है। कोई निश्चिंतता नहीं रही। सारी स्वतंत्रता नष्ट हो चुकी है। कहीं जाना.....किसी से मिलना.....बाजार से कोई साधारण वस्तु खरीदना.....यह सब जटिल और चुनौतीपूर्ण हो गया है। अनिश्चय, जाँचना और भय का वातावरण कब खत्म होगा.....कोई नहीं जानता।''

''देखो....तुम्हारे इस तरह बेहाल होने से कुछ नहीं होता। विशेषज्ञों ने पहले ही कहा था कि जुलाई–अगस्त के समय कोरोना अपने उफान पर होगा। किसी भी वायरस के संक्रमण का यह सबसे माकूल समय होता है। अभी तो धैर्य रखना ही होगा। बरसात के बाद ही स्थितियाँ सुधरेंगी। हाँ..... सुधरेंगी अवश्य.....इतना मैं जानती हूँ।''

''विशेषज्ञों ने तो और भी बहुत कुछ कहा था। वे तो हर दिन कुछ न कुछ कहते हैं। दरअसल वे कुछ कहते नहीं। खेल खेलते हैं। यानी यूँ ही कुछ भी। सारी विशेषज्ञता ध्वस्त हो चुकी है। पूरा मेडिकल साइंस ट्रायल ऍंड एरर के सिद्धांत पर चल रहा है। यह थोड़ा हास्यास्पद हो चला है। कुदरत इन पर क्रूर अट्टहास कर रही है।''

तड़के एक झरझराती आवाज से उसकी नींद खुली। वह आँखें बंद किए बिस्तर पर अलसाया हुआ सुनता रहा। बरसात हो रही थी। इस मानसून की पहली स्थिर और सधी हुई बारिश, जिसमें बूँदें अनुशासन में गिरती हैं। सुबह उसके बिस्तर छोड़ने के बहुत देर बाद तक पानी गिरता

रहा। कई दिनों से मेघ छाए हुए थे लेकिन बारिश नहीं हुई थी। दिल्ली में मानसून को आए हुए तीन सप्ताह हो चुके थे। आज उसकी पहली दमदार उपस्थिति दर्ज हुई।

बाहर सब धुल गया था। उसके घर के सामने का गुलमोहर तृप्त दिखाई देता था। जैसे प्रतीक्षा समाप्त हुई हो। डालियाँ....पत्तियाँ.....मर्मर प्राणवंत हो गए थे। फूलों की लाली चमक आई। हरीतिमा को किसी ने सँवार दिया। उसे नई रौनक.....दीप्ति मिल गई। जैसे मन से कोई खिल उठा हो।

इस बरसात ने माधव के उदास मन को थोड़ी खुशी दे दी। यद्यपि एक लाचारगी.....बेबसी उसे घेरे रहती थी। उसके हाथ बँधे थे। मन बँधा था। छोटी–छोटी इच्छाएँ बुझ चुकी थीं। एक दिन पहले ही वह घोर निराशा में डूबा हुआ था। पाशबद्ध प्राण....जो कुछ भी न कर पाने से व्यथित हो। मगर आज उसे ऐसा लग रहा कि दुख की यह अंतहीन सुरंग जल्दी ही किसी प्रकाशपुंज से झिलमिल हो उठेगी। एक रास्ता दिखाई देगा। अवश्य ही.....

***

बाईस

कोविड से संक्रमित लोगों की संख्या और नए अपडेट को देखने के लिए उसने जैसे ही मोबाइल फोन उठाया....एक पल के लिए सिहर उठा। क्या पता आज कितनी बढ़त दर्ज हुई हो....! तीस हजार से अधिक लोग हर दिन संक्रमित हो रहे हैं। बल्कि पिछले चौबीस घंटों में संक्रमण सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर चालीस हजार के निकट जा पहुँचा है। एक ही दिन में अड़तीस हजार लोग बीमार हुए। महाराष्ट्र.....तमिलनाडु.....की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया था। इन दोनों राज्यों में तेरह हजार से अधिक मामले सामने आए थे। कर्नाटक, आंध्रप्रदेश पश्चिम बंगाल, असम, उत्तरप्रदेश...बिहार.. ....में तेजी से लोग बीमार हो रहे थे। कर्नाटक तो तमिलनाडु से होड़ ले रहा था। दिल्ली में स्थिति पहले से बेहतर हो गई थी। लेकिन चौदह–पंद्रह सौ लोग प्रतिदिन संक्रमित हो रहे थे। कुछ मिलाकर देश ग्यारह लाख मरीजों का आँकड़ा छूने वाला था जिसमें करीब सात लाख लोग स्वस्थ हो चुके थे। छब्बीस हजार लोगों की जान जा चुकी थी।

आम तौर पर कोविड से संबंधित समाचारों को पढ़ते हुए उसने कई जगहों पर विशेषज्ञों की टीका–टिप्पणियाँ पढ़ी। बहुत सारे लोग यह मान रहे थे कि अगर भारत की जनता ने थोड़ी समझदारी दिखलाई होती और अनुशासन का पालन किया होता तो हालात ऐसे नहीं रहे होते। अब भी अगर उन्होंने समझदारी दिखलाई तो दो महीनों में बाढ़ का पानी उतर जाएगा। तो क्या अब यह बीमारी अपने चरम पर पहुँचने वाली है! निश्चय ही इसका उफान भयास्पद होगा.....लेकितन इसका पतन भी जल्दी ही देख सकेंगे। यह दृढ़ता न जाने कहाँ से उसके मन में आई। मौजूदा हालात ऐसी किसी सकारात्मकता का संकेत नहीं कर रहे फिर भी वह कुछ अच्छा देख पा रहा है। उसकी बड़ी वजह भारत में इस बीमारी से स्वस्थ होने वाले लोगों की संख्या है। वह इसे ईश्वर की कृपा ही मानता है कि कई सारे विकसित और बहुत बेहतर मेडिकल सुविधाओं वाले देशों के मुकाबले अपने देश में मृत्यु दर बहुत कम है

बाहर लोग तनिक विश्राम की मुद्रा में आ गए थे। कुछ दिनों पहले तक ऐसी स्थिति नहीं थी। अब लोग कुछ छूट लेने लगे थे। उसने सड़क... फुटपाथ पर बहुत सारे लोगों को पास–पास बैठकर बातें करते हुए हिलते–मिलते देखा। मास्क मुँह से उतार कर उन्होंने ठुड्डी पर टाँग रखे थे। यह जो दृश्य था.....वह ऊपर वांछित समझदारी की बात से उल्टा था।

इसकी एक वजह शायद यह रही हो कि उस इलाके में कोविड ने कोहराम नहीं मचाया। सोसाइटीज़ में जो लोग संक्रमित हुए.....वे पहचाने गए और उन्होंने खुद को क्वारंटीन कर लिया। वहाँ से कुछ दूर तकरीबन दो–तीन किलोमीटर दूर घनी बस्ती में कुछ मामले थे पर उनकी सीधी लपट यहाँ तक नहीं आई।

यह तो आजमाया हुआ देखा हुआ सत्य है कि जब खतरा जरा कम हो जाता है तो लोग पाँव अधिक फैलाने लगते हैं। उस दिन भी यही हुआ। शॉपिंग प्लाजा की पार्किंग से अपनी कार निकालते हुए उसने शीशा थोड़ा नीचे किया। पैसे चुकाने के लिए उसने दस रुपये का नोट आगे बढ़ाया तो वह लड़का जिसका चेहरा....भय, अशंका और सुरक्षा की चिंता इन सबसे पूरी तरह मुक्त हो कर चमक रहा था.....कर्कश स्वरों में चीख पड़ा.....

''सर बीस रुपये होते हैं!''

दस और बीस रुपये का सवाल तो बेकार था। परदे से पूरी तरह स्वतंत्र उसका चेहरा एक खतरे की तरह दिख रहा था। उस लड़के का लहराता हाथ.....कार के शीशों को छूने लगा। जैसे कि कार वाला दस रुपये देकर भाग जाना चाहता हो! माधव ने पेंट की जेब में हाथ डालकर दस रुपये का एक और नोट निकाला। दुबारा खिड़की जरा नीचे सरकाई, उसे थमा दिया। चेहरे को कुछ भावहीन बनाते हुए कहा–

''तुम मास्क नहीं लगाते हो.....सबसे यूँ ही बात करते हो क्या?''

पहले तो वह हँसा फिर मस्ती के मूड में आकर बोल पड़ा–''अरे, कुछ नहीं होता सर। लोग फालतू डरते हैं।''

ऐसा कहते हुए उसने अपने गले में पड़े गमछे से मुँह ढँकने की रस्म अदायगी कर ली फिर दूसरी ओर चल पड़ा। माधव ने कुछ चिंतित, कुछ शंकित होकर अपनी कार आगे बढ़ाई। मानों किसी संभावित संकट को साथ लिय चला हो.....एक ऐसा संकट जो अदृश्य है और जब दिखाई देता है तो आदमी के पास उसकी मार सहने के सिवा कोई चारा नहीं होता।

मयूर विहार से निकल कर वह नोएडा के रास्ते पर चल पड़ा। आज दिल्ली–नोएडा की सीमा पर गाड़ियाँ आराम से जा रही थी। पुलिस के पिकेट्स मौजूद थे पर रास्ता खुला था। खाकी वाले दूर–दूर खड़े गाड़ियों को घूर रहे थे। न जाने क्या तलाशते थे! उसने नोएडा में एक जगह अपनी गाड़ी खड़ी की। उसे याद आया कि एक जरूरी मैसेज भेजना है। वह गाड़ी में बैठे–बैठे टाइप करने लगा। लिखते हुए उसे कुछ गर्मी सी महसूस हुई।

वह बाहर आ गया। तभी एक छोटी बच्ची हाथ फैलाते हुए उसके सामने आ गई–अंकल पैसे दे दो।

माधव ने उसे देखकर भी नहीं देखा। बच्ची पास आ गई। बिल्कुल पास। वह थोड़ा पीछे हटा। उसे अत्यंत ठंडा चेहरा दिखाते हुए कहा; जाओ! वह नहीं मानी। हाथ फैलाए खड़ी रही। उसे भय हुआ कहीं बच्ची को कोरोना तो नहीं! उसने लगभग डाँटते हुए कहा; तुम जाओ यहाँ से! मैं नहीं दे सकता! ज्बकि वह ऐसा कभी कर नहीं पाता। वह वहीं खड़ी रही। भय ने उसे और घेरा। एक सिहरन–सी हुई। कार का दरवाजा खोलकर वह भीतर बैठ गया। शीशे बंद। वहाँ बैठते ही भय बुझ गया, ग्लानि भर आई। इस शंका से कैसा निर्मोही, स्वार्थी और अमानुष हुआ जाता है वह! एक छोटी बच्ची के प्रति कैसी कठोरता! वह ईश्वर से क्षमा माँगने लगा। भगवान इस बच्ची के बारे में उसने ऐसा क्यों सोचा? उसे क्यों भला यह बीमारी हो? यह तो बस उसके मन का पागलपन था।

गाड़ी खोलकर माधव दुबारा बाहर आया। वह जा चुकी थी। सामने एक पार्क में उसका पूरा कुनबा था। एक साथ बीस–पच्चीस लोग थे। उसने आवाज़ लगाई; ओ बच्चे, इधर आओ! आवाज़ सुनकर एक साथ पाँच–छह आ गए। जेब से पचास रुपये निकाल कर उस बच्ची के हाथ में देते वह बोला; आपस में बाँट लेना! इस दौरान कई छोटे–छोटे हाथ हिलते रहे। अंकल..... एक बार ख्याल आया, पचास और दे दे। परन्तु वह कोई दानशीलता का उदाहरण न होता! उसे तो केवल इसलिए दिए कि भीतर अपराधबोध की आग दह रही थी। भयावह स्वार्थ ने जकड़ा था उस क्षण उसे!

कार में बैठकर वह सोचने लगा, इस बीमारी ने मनुष्य को, कम से कम उसे तो अपार शंकाग्रस्त बनाया ही है। उसे मनुष्यों से भय होता है। इससे विकट बात क्या हो सकती है? यह भय स्थायी नहीं है किन्तु जीवन का एक वर्ष तो ले ही गया है और यह वर्ष इतना वाचाल है कि ताउम्र इसकी बड़बड़ाहट सुनता रहेगा। यह कभी न भुलाया जा सकेगा। एक शाप की तरह यह हमारी आत्मा पर छाया रहेगा! कसता रहेगा। जैसे बचपन में देखा कोई डरावना सपना प्राणों को कसता, कंपाता रहता है। हर रात नींद में जाने से पहले वही छाया हमारी आँखों की गुल्लियों पर लहराती रहती है... ...

***

तेईस

इन दिनों वह किसी से मिलता जुलता नहीं था। प्रमोद से मिले हुए भी काफी दिन हो चुके थे। पिछली बार जब वह उससे मिला था, तब प्रमोद ने तीन चार दिनों के बाद दुबारा भेंट करने की बात कही थी। लेकिन उसका कोई फोन नहीं आया, न ही माधव ने फोन कर पूछने की कोशिश की कि वह मिलने क्यों नहीं आया। हर मुलाकात एक खटके के साथ खत्म हो जाती। पिछली बार जब वे मिले थे तब प्रमोद ने कहा था कि उसके बिजनेस को भारी नुकसान पहुँचा है। अब वह एक लंबी बीमारी से उठ रहा है। इन दिनों उसने अपने सभी स्टाफ की सैलरी आधी कर दी।

माधव सोचने लगा कि जब बड़े–बड़े निजी संस्थानों के हाथ–पाँव फूले हुए हैं तो प्रमोद जैसे स्टार्टअप कंपनी के स्वामी कैसे झेल पा रहे होंगे! कम से कम आधी तनख्वाह तो देते रहे! इन सब बातों पर विचार करते हुए उसने फोन लगाया।

''कैसे हैं प्रमोद जी.....''

''कैसा क्या सर! बस चल रहा है।''

''आपका काम?''

''धीरे–धीरे पिक करने की कोशिश में हैं। नुकसान तो बहुत हो गया जून के महीने में कुछ ठीक था। इस माह बड़ी दिक्कत है।

''मतलब....? अब तो हालात बेहतर होना चाहिए!''

''नहीं...। कुछ जरूरी क्लाइंट हाथ से निकल गए। इस लॉकडाउन में उनकी हालत पस्त हो गई। बिजनेस पर बुरा असर पड़ा तो सप्लाई ही बहुत कम हो गई। अब नए–नए लोगों को खोज रहा हूँ।''

''हम्म.....''

इसके बाद उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि बात को कैसे आगे बढ़ाए। चुप भी नहीं रहा जा सकता था। उसने पूछा.....

''इन दिनों काम से ग्रेटर नोएडा जाते हैं आप?''

''हाँ जाता तो हूँ। पर बहुत कम। सप्ताह में दो बार। कई सप्ताह तो एक ही बार जाना हो पाता है।''

''वहाँ तो कोरोना के मामले बहुत कम है!''

''ऐसा ही लगता है। मैं जहाँ जाता हूँ वहाँ तीन–चार लोग ही हैं। वही जाने–पहचाने चेहरे। बाहर क्या स्थिति....है, कैसे कह सकता हूँ।''

दोनों के बीच करीब पाँच–सात मिनट तक बातचीत हुई। दोनों मिलने की बात करते हुए भी न मिलने पर सहमत हो गए थे। जबकि उन्होंने ऐसा कुछ कहा नहीं था। वह स्वतः समझा जा चुका था। शब्दहीन सहमति...! माधव जानना चाहता था कि प्रमोद कितने दिनों में शहर से बाहर जाते हैं? बाहर कितने दिन ठहरते हैं? किन लोगों से मिलते हैं? अगर वह बराबर अपने काम से दूसरे शहरों में जाते हैं तो उनसे मिलना ठीक नहीं होगा शायद! वह यह सब जानते–पूछते हुए खुद से कुछ शर्मिन्दा भी होता था, मगर क्या कर सकता था! घर में किसी एक व्यक्ति का बीमार होना दूसरों को बीमार करना भी तो था। खुद प्रमोद भी तो उससे मिलने से कतराता था। वह भी इसी संकोच में होता होगा! यह तो एक सामान्य मनोदशा है! हर आदमी के भीतर यही ऊहापोह.....यही द्वंद्व चल रहा! इसमें कैसी नैतिकता!

प्रकाशक से दुबारा मिले हुए भी काफी दिन हो चुके थे। तब उसने आश्वस्त किया था कि जल्दी ही पुस्तक प्रेस में चली जाएगी। आश्वासन के बाद उसका कोई फोन नहीं आया। हर दिन इंतजार में बीत जाता रहा। हर दिन शून्य में बुझता चला जाता रहा। कैसा दुःसाध्य है यह रोग....! एक हाथ से पकड़ में आता है तो दूसरे हाथ से छूट जाता है!

जुलाई का महीना बीतने वाला था। कहने को अभी महीने में सप्ताह भर बाकी थे मगर ये ऐसे दिन थे.....जो बस बीत जाया करते हैं। आदमी सोचता है, अभी तो महीने का एक चौथाई सिरा बचा हुआ है.....और वह पुच्छल तारे–सा चमकता हुआ अचानक गुम हो जाता है। भारत में इस महामारी के बढ़ने और सामाजिक शाप के रूप में पूरे देश पर छा जाने के चार महा हो चुके थे। बल्कि उससे भी ज्यादा समय बीत चुका था। किन्तु कहीं त्राण नहीं था। दिल्ली में स्थिति बेहतर हो गई थी। मेडिकल के जानकार फूँक–फूँक कर कुछ कहते थे। कुछ ने माना कि संभवतः यहाँ इस महामारी की रौद्र धूप उतरने लगी है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु.....कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र, बंगाल, उत्तरप्रदेश में यह रोग जोर पकड़े हुए था। लगभग समान संख्या में मरीज हर दिन पाए जाते। उत्तरप्रदेश, असम, बिहार, झारखंड जैसे राज्यों में संक्रमण बढ़ने से हर दिन का आँकड़ा पैंतालीस से पचास हजार के बीच डोलने लगा था। जबकि महाराष्ट्र, तमिलनाडु और

कर्नाटक मिलकर ही बीस हजार की विशाल संख्या को छूते थे। यह एक बड़ा अंक था।

एक दिन में इससे अधिक मरीज सिर्फ अमेरिका में मिल रहे। भारत में तेरह लाख लोग बीमार पड़ चुके थे। उनमें से साढ़े चार लाख सक्रिय मरीज थे। साढ़े आठ लाख लोग ठीक हो चुके थे। तीस हजार लोगों की मृत्यु हुई थी। मृत्यु दर अन्य देशों से मुकाबले कम थी लेकिन बीमार लोगों का ग्राफ ऊर्ध्वाधर था। वह ऊपर को उठता जा रहा। एक अंतहीन फेलाव....विस्तार..... उठान! जिसके थमने....रुकने या गिरने का समय कोई नहीं जानता। कोई नहीं जानता कि अपना फन काढ़े पूरे देश पर विष उगल रहा यह विषधर कब कुचला जाएगा!

''तुम्हें खबर मिल गई?''

''कैसी खबर....''

''मिस्टर चक्रवर्ती और उनकी पत्नी की रिपोर्ट आ गई है। वे दोनों ठीक हो चुके हैं। आज तो मैंने उन्हें नीचे घूमते हुए भी देखाा।''

''क्या.....बिस्तर से उठकर सीधे नीचे सैर करने चले गए?''

''अरे नहीं.....ऐसी बात नहीं है। सोसाइटी के व्हाट्सएप ग्रुप में उनके स्वस्थ होने की खबर चार दिन पहले ही आ चुकी थी। मुझे लगा.....तुमने देखा होगा।'' विजया ने जवाब दिया।

''नहीं.....मैं नहीं देख सका था। चलो.....अच्छी बात है। वे स्वस्थ हो गए। मैं मानकर चल रहा हूँ कि फिलहाल यहाँ एक भी मरीज नहीं है। हालाँकि ऐसा कहना बहुत मुश्किल है। सबकुछ पाक–साफ तो नहीं है।''

''हाँ.....वह तो तुम ठीक कहते हो। यू नेवर नो.....''

''अरे भई.....पहले भी दो लोग झूठ बोल गए। इसलिए यकीन नहीं कर सकते। और यहाँ तो लोग अपनी बालकनी से कूड़े का थैला नीचे सोसाइटी में यूँ ही फेक देते हैं। कितनी सामाजिक जिम्मेदारी होगी? कल तुमने देखा.... ..बगल वाले भैया ने भी शिकायत की। इस छुआछुत की बीमारी के समय में लोग सरेआम अपार्टमेंट के नीचे कूड़ा फेक देते हैं। कमाल है...!''

''मैं जानती हूँ, कौन फेकता है कूड़ा।''

''तुम कैसे जानती हो? यहाँ से ऊपर देख नहीं सकते तो कैसे जान लेती हो कि कूड़ा किसने फेका?''

''मुझे पता है.....!''

''यह तो अंदाजा लगाना हुआ है। तुमने किसी की छवि गढ़ ली है और मान लिया है कि वही फेकती होगी या फेकता होगा कूड़ा।''

''ऐसा नहीं। तुम भूल गए हो कि पिछले साल ऊपर के दो प्लेटों में इसी वजह से कितना गाली–गलौज हुआ था। दो महिलाएँ एक–दूसरे को अंग्रेजी में गालियाँ दे रही थी। एक ने दूसरे पर आरोप लगाया था कि वह अपने घर से कूड़ा बाहर गलियारे में बिखरे देती है। मैं जानती हूँ.....उस औरत को। यूँ तो वह बहुत कैलिफोर्निया और लास वेगस की कहानियाँ सुनाती है मगर इंडिया को एक वास्ट लैट्रीन मानती है! उससे बात कर के देखो।''

''तो क्या उस अमेरिका रिटर्न में इतनी सभ्यता भी नहीं है? इन दिनों तो यह अपराध ही है। मैंने तो फोटो खींच कर प्रेसिडेंट को भेज दिया। वह कहने लगे.....क्या कर सकते हैं माधव जी! यहाँ लोग सुनने–समझने को राज़ी नहीं हैं। आप सावधानी से नीचे पाथ वे पर जाया कीजिए। आपकी गाड़ी तो वहीं खड़ी रहती है।''

''मैंने उनसे कहा था कि वह आम रास्ता है। वहाँ लोग सैर करते हैं। बच्चे दौड़ते हैं। साइकिल चलाते हैं। यह कितनी अजीब बात है कि कोई वहाँ अपने घर की गंदगी फेंक रहा। वह चुप रहे। उनकी भी एक सीमा है..... लड़ने की।''

***

चौबीस

सुबह–सुबह उसने एक वीडियो देखा। जिसे देखकर उसे बड़ी हैरत हुई। हरियाणा के हाईवे पर एक मशहूर भोजनालय में भारी भीड़ उमड़ी थी। यूँ तो वहाँ हमेशा भीड़ हुआ करती थी। उस रास्ते से जाने वाले राहगीर तो वहाँ भोजन के लिए रुकते ही थे। दिल्ली और पास–पड़ोस के शहरों से भी लोग ड्राइव कर वहाँ खाने जाते थे। मगर इन दिनों....!! हाँ...इन्हीं दिनों में, जब कोरोना से संक्रमित लोगों की संख्यसा हर दिन पचास हजार का आँकड़ा छूने लगी है, वहाँ सैकड़ों लोग बैठकर खाने का लुत्फ़ ले रहे थे। हैरत की बात यह भी थी कि उनमें से अधिकांश लोगों के चेहरे खुले थे। सिर्फ वेटर और रेस्तरां के दूसरे स्टाफ मास्क पहने दिखाई दे रहे थे।

इस वीडियों का एक सीधा सा मानी तो यह है कि देश के बहुत सारे हिस्सों में लोग उस बंधन, अनुशासन या फाँस से आजिज़ आ चुके है, जिसने पिछले चार महीनों से उनका जीना दूभर कर दिया है। अब खुली हवा में साँस लेने से उन्हें रोकना मुश्किल हो रहा है। वे अपने मन को बाँधे रख कर इस जकड़न में जीने को तैयार नहीं हैं। दूसरा, संभवतः यह भी कि वहाँ इस बीमारी का खास असर नहीं है। वैसे दूसरी वाली संभावना में कोई दम नहीं है! भोजन करने के लिए आए लोगों का पता कौन जानता है? कौन कहाँ से उठकर आया है, यह किसे मालूम था! इस वीडियो को देखने के बाद उसे जितनी चिन्ता हुई और उस चार गुना अधिक प्रसन्नता हुई। भला मनुष्य कब तक एक आभासी भय....शंका की छाया से बच–बच कर जीता रहे!

उसके घर के पास शाम को कतार से लगने वाले रेहड़ी, पटरी, ठेले भी वापस लौट आए थे। चाट, पकौड़ी.....रोल.....वालों के पास भीड़ मँडराने लगी थीं पहले की तरह कारें और मोटरसाइकिलों की लाइन लगने लगी थी। प्राण को कसने वाला पाश टूट रहा था! वह भयावह प्रेतबाधा दूर हो रही थी! लोग वापस जीने लगे थे। और यह सब उन दिनों में हो रहा था जब महामारी बढ़ रही थी। लोग इसे बहुत करीब से जानने–समझने लगे थे कि इससे कैसे बचा जा सकता है। दिल्ली में इसकी विभीषिका भी उतरने लगी थी। जबकि कुछ राज्यों में यह अपना फन उठा रहा। महाराष्ट्र और तमिलनाडु के हालात में कोई अंतर नहीं आया कर्नाटक.....आंध्रप्रदेश..... तेलंगाना में बीमारी तेजी से फैल रही। अन्य कई राज्यों में भी मरीज बढ़ रहे। शायद यह समय वहाँ इसके उफान का हो, जल्दी ही इसका सिमटना भी तय है!

एक खबर उसे बार–बार चौंकाती रही। सच तो यह कि अब उसे समाचार पढ़ते हुए हँसी भी आती थी। यह समाचार कोरोना वैक्सीन का था। हर दिन पाँच देशों के दावे आते। भारत में जो वैक्सीन का ट्रायल चल रहा है, वह मनुष्यों के ऊपर आजमाये जाने के पहले पड़ाव पर है। एक विश्वविख्यात न्यूज़ एजेंसी ने पुष्ट किया कि भारतीय वैक्सीन के पहले ह्यूमन ट्रायल का सकारात्मक परिणाम आया है। जल्दी ही वह दूसरे चरण के लिए भेजा जाएगा। वर्ष के अंत तक वैक्सीन बाजार में उपलब्ध होगी। अमा...यार, कौन जीता है तेरी जुल्फ के सर होने तक.....!

उस रोज़ उसने देखा कि नोएडा की फिल्मसिटी में थोड़ी रौनक लौट आई है। सांय–सांय कर बहता हुआ सन्नाटा टूट गया है। लोग नजर आने लगे हैं। कतार से कारें भी खड़ी हैं। ओपन बार के पुराने दिन लौटते हुए दिखाई देते हैं। पत्रकार बंधु कारोबार में व्यस्त हैं। कुछ कार के भीतर.....कुछ बाहर खुली हवा में। उनमें से एक आध के चेहरे ढ़ँके हैं, बाकी सब बिना मास्क के ही हैं। पुलिस की वेन यदा–कदा गश्त लगाती है। चाय पानी और चखने की दो दुाकनें भी खुल गई है। बहुत कुछ पहले जैसा होता जा रहा है।

माधव ने प्रमोद से पूछा; ''क्या आप मानते हैं कि अब यह बीमारी धीरे–धीरे उतार पर है?''

''क्या कहूँ। कुछ समझ में नहीं आता। दिल्ली और मुंबई जैसे शहर तो उम्मीद जगाते हैं लेकिन कई राज्यों में तो स्थिति विस्फोटक हो गई है। ऐसा क्यों हो रहा है.....यह भी जानना चाहता हूँ।''

''देखिए.....जो मैं देख समझ रहा हूँ, उसके हिसाब से यह संक्रमण एक स्तर तक ही जा सकता है। अगर लोग थोड़ी सावधानी और सजगता से काम करें तो.....! दिल्ली मुंबई में यह फेलता रहा। एक समय ऐसा भी आया जब लगा कि पता नहीं क्या होने वाला है। लेकिन मैं हमेशा आशावादी था कि वैसा कुछ नहीं होने वाला है, जैसा हमारे माननीय विशेषज्ञों ने कहा है। यह एक लेवल तक जाकर नीचे गिरेगा। इसकी संक्रमण क्षमता कमतर होती जाएगी। इसकी मारक शक्ति भी घटेगी, जो कि दिलली में दिखाई दे रहा है।''

''हाँ.....दक्षिण के राज्यों में अभी यह उफान पर है। शायद वहाँ का मौसम भी इसके म्यूटेशन में मददगार हो। उत्तर–पूर्व में भी यह बढ़ा है। मैं मानता हूँ कि दो महीनों में स्थिति बेहतर होने लगेगी। संभवतः पूरा वर्ष शंका...भय में कट जाए!''

''आप ठीक ही कहते हैं माधव जी। अभी तीन दिन पहले मैं लखनऊ से लौटा हूँ। लोग सावधान हैं मगर ये भी कह रहे कि अब बंद–बंद नहीं रह सकते। दम घुटता है। जो होगा देखा जाएगा।''

''मैं तो बहुत शुरू से कहता आया हूँ प्रमोद...कि इस बीमारी ने शारीरिक रूप से मनुष्य को जितना तोड़ा है, उसे कहीं अधिक तो मानसिक रूप से चोट पहुँचाई है। इस सामूहिक कारा की किसी ने कल्पना की थी क्या...? किसी ने सोचा था कि दो–तिहाई दुनिया ठहर जाएगी! थ्कसी ने ऐसा सपना भी देखा था कि भारत महीनों के लिए बंद हो जाएगा!''

''यह त्रास.....यंत्रणा बड़ी है। मृत्यु भयास्पद है, मैं मानता हूँ, लेकिन जब जीवन की सारी स्वच्छंदता ही छिन जाए, जब मनुष्य को यह अनुभव होने लगे कि उसका जीना निरर्थक है, तब भय जाता रहता है। आखिर कब तक.....कोई इस पाश में जकड़ा रहे! एक दिन तो पर्वत का आरोहण होकर ही रहेगा।''

''हाँ.....अब तो सभी जगहों पर यही स्थिति है। यही वजह है कि संक्रमण भी बढ़ रहा है।''

उसने देखा कि फिल्मसिटी में रातें सामान्य होने की ओर चल पड़ी थी। झिलमिलाती रोशनी में उसने कारों की कतार देखी। धीरे–से अपनी गाड़ी को मुख्य सड़क पर ले जाते हुए उसने पाया कि सड़क के दोनों ओर काफी तादाद में कारें खड़ी हैं, जो इस बात का इशारा कर रही हैं कि पत्रकारों के एक बड़े समूह का वर्क फ्रॉम होम समाप्त हो चुका है। वे अपने दफ्तर आ रहे हैं। कुछ दिनों पहले तक इन्हीं सड़कों पर सूनापन रेंगता रहता था। रात को जाते हुए भय होता।

मुख्य सड़क पर वाहन कम थे। आम दिनों में रात के नौ बजे वहाँ अधिक गाड़ियाँ होतीं। उसने कार का शीशा नीचे गिरा दिय। ठंडी हवा बह रही थी। उसका भय उड़ गया। चेहरे पर बँधा मास्क उतार कर नीचे रख दिया। नोएडा के फ्लाई वे से होकर दिल्ली के मयूर विहार की ओर उतरते हुए सामने खूबसूरत सड़क थी। बेहद साफ सुथरी। झिलमिल रोशनी में डूबी हुई। वहाँ दूर–दूर से गाड़ियाँ जा रही थीं। उसके पास...बिल्कुल सामने या पीछे कोई नहीं था। सौ–डेढ़ सौ मीटर आगे दो तीन कारें चली जा रही थीं। नाके पर भी औसतन कम लोग थे। दिल्ली–नोएडा सीमा पर पुलिस वाले गाड़ी में बैठे ऊँघ रहे थे। उनके चेहरों के मास्क भी उतर चुके थे। रात गहरी नहीं हुई थी। भरी जवानी में ही उसने चादर तान ली थी।

पच्चीस

अगस्त का पहला सप्ताह बीत रहा था। उमस भरे दिन थे। कुछ देर हवा चलती फिर ठहर जाती लेकिन आज सुबह से मौसम बदला सा बदला ाि। सुबह पहले तो बारिश हुई। फिर दिन खुल गया नीला आकाश उजले परदों से झाँक रहा था। वह खिड़कियों के पास खड़े होकर बाहर का दृश्य निरखने लगा। उसने डायरी लिखी–

भादों के शुरुआती दिनों का धुला आकाश है। ईश्वर के नीले सरोवर में गंधर्वों की नौकाएँ हैं। पेड़ के पीछे से उबले हुए धवल मेघों की पर्वतमाला उठी थी अभी–अभी। हवाओं ने उन्हें बिखेर डाला। जो कुछ अखंडित, शृंखलित रहे वे जैसे अपने ही जलभार से नीचे को उतर गए। मेरी आँखों से दूर हो गए। अब यहाँ यही रह गए हैं। आड़ी–तिरछी डोंगियाँ डोल रही हैं।

आज धूप–छाँव का खेला है। जैसे छुप्पन–छुपाई खेल रहे हों। हवा के हिलकोर से धुपीली छाया आती है। चली जाती है। दमकता सूरज अपना पीतांबरी उड़ेल जाता है। फिर वही काले–उजले मेघ उन्हें धूसर कर देते हैं। सामने वाला गुलमोहर कुछ गाता है। संभवतः लोकगीत। पंछी सुनते हैं। बौराए–बौराए से उड़ते धड़फड़ाते हैं। लगता है गिर पड़ेंगे। मुझे देखकर जैसे हँसते हैं कि देखो ठग लिया तुम्हें!

गुलमोहर स्थिर होकर बहता सा दिखाई पड़ता है। मैं इस खिड़की के पास देर तक खड़ा रह जाता हूँ। इस आनंदनिकेतन के जंगल से शांत नीले जल का देखता हूँ। इस चित्र के आगे सारे चित्र फीके लगते हैं। यह सब एक विश्वास की अनुभूति जगाता है। त्रास के दिन अब जाने वाले हैं। बस कुछ दिन और.....आश्विन के अंत तक बहुत सँभल जाएगा यह देश। शरद फिर वही हरसिंगार लेकर आएगा।

सुबह करीब नौ बजे डोरबेल बजी। माधव ने दरवाजा खोला। बाहर कोई नहीं दिखाई पड़ा। उसे थोड़ा ताज्जुब हुआ। लोहे की जाली से तिरछा झाँकते हुए उसने पूछा; कौन है भाई.....?

''मैं हूँ साहब।''

''अच्छा...वीर सिंह जी आप।''

वह बिना कुछ कहे.....वापस मुड़ा। बटुए से पाँच सौ रुपये निकाले और वीर सिंह के हाथों में थमा गया। माधव ने एक पल के लिए सोचा, चेहरे पर मास्क लगा ले लेकिन फिर यूँ ही चला गया। वीर सिंह के चेहरे पर मास्क था। वह सोसाइटी में गाड़ियों की सफाई करते और करवाते थे।

लॉकडाउन के दो महीनों तक वह नहीं आए। फिर जब थोड़ी रियायत हुई तो वह अपने लड़कों के साथ दिखाई पड़ने लगे। गाड़ियों की सफाई का काम पूर्ववत चालू हो गया था। पहले की ही तरह वह हर माह के बाद घर–घर जाकर अपने पैसे भी लेने लगे थे।

वीर सिंह के जाने के बाद उसकी नजर गलियारें में सामने रखे हुए अखबार पर ठहर गई। उसने पास जाकर देखा.....दो दिन पुराना अखबार था। यानी.....अखबार वाले ने बिना मर्जी जाने उन्हें बाहर छोड़ने का काम शुरू कर दिया है! लड़के से खबर लेता हूँ कि कौन फ्लैट के बाहर से अखबार उठा रहा है.....और कौन यूँ ही छोड़ दे रहा! जो अखबार उठा ले जा रहे हैं, उन्हें फिर से नियमित तौर पर पहुँचाया जा सकता है। उसे याद आया.....करीब महीना भर पहले समाचार पत्र वितरण करने वाले एक सज्जन घर आए थे। उन्होंने माधव को समझाने की कोशिश की थी कि समाचार पत्रों को छूने या उनके संपर्क में आने से संक्रमण नहीं होता। उन्होंने कहा था कि इस बात का प्रमाण उनके पास है। माधव ने तब उन्हें यह कह कर लौटाया था कि वह समाचारपत्रों को दुबारा मँगवाने के बारे में दो–तीन दिनों में तय करेगा। उस मुलाकात को महीना भर हो चुका था। वह सज्जन दुबारा नहीं आए, ना ही उनका कोई फोन आया लेकिन फ्लैट के ठीक सामने रखे अखबार इस बात की पुष्टि कर रहे थे कि वह लोगों के विचार जानना चाहता है। इस लॉकडाउन और बीमारी के दिनों में उसके धंधे पर भी प्रतिकूल असर पड़ा था। दो महीने तक तो अखबार वितरण ठप ही हो चुका था।

विचारों के भँवर में डूबे माधव ने दरवाजा बंद कर लिया। खिड़कियों से उसने झाँक कर देखा। कुछ लोग सैर कर रहे थे। अधिकांश के चेहरे अनमास्क्ड थे। आकाश में बादलों के टुकड़े थे। हवा उन्हें उड़ाए ले जा रही थी। ऐसा लगता जैसे बच्चों का अलग–अलग झुंड बस्ता टाँगे चला जा रहा हो। ठीक सामने गुलमोहर का हरा रंग गाढ़ा हरा हो गया था। उसकी फुनगियों पर तीस–चालीस फूलों की लाली छाई थी–जैसे मुरगे की कलगी हो। नीचे फूल नहीं खिले थे। पास की सोसाइटी में भी लोगों का चलना फिरना हो रहा था। धूप–हवा, मौसम सभी मुखर थे। मनहूसियत....रेंगती हुई चुप्पी....खत्म होने लगी थी और बंद–बंद दिशाएँ खुलने लगी थीं। समय ने बिस्तर से उठकर चलना शुरू कर दिया था। लेकिन....कितनी अजीब बात थी कि संक्रमण बढ़ रहा था। हाँ.....ठीक होने वाले भी लगातार बढ़ रहे थे। मृत्युदर निरंतर कम हो रही थी। जबकि मरने वालों का आँकड़ा ऊपर उठ रहा था। स्वाभाविक ही उसे उठना था।

छब्बीस

रक्षाबंधन का पर्व फीका–फीका सा बीत गया। बहनों से मिलने जाना या उनका दिल्ली आना इस बार मुमकिन न था। चिट्ठियाँ आई। राखी पोस्ट से भेजी गई थी। बाहर भी चहलकदमी, लोगों की आवाजाही नहीं थी। सोसाइटी में कुछ लोग दिखाई दे रहे थे, जो अपने भाई–बहनों से मिलने आए थे। सडक पर बीते सालों के मुकाबले कम लोग दिखाई पड़े इस बार। जीवन के आकाश को खुलते–खुलते भी तो समय लगना ही है। अभी तो जैसे बहुत लंबी–सी बीमारी से वह उठ खड़ा होने की कोशिश में है। जैसे उसने अभी–अभी बिस्तर छोड़ा हो.....और परदे हटाकर अस्पताल की खिड़कियों से बाहर देख रहा हो। शहरों में स्थानीय स्तर पर तो लोगों का आना–जाना बढ़ गया है मगर यात्राएँ कहाँ हो रही हैं? दिल्ली से उत्तरपूर्व जाना खतरे से खाली नहीं। दक्षिण के राज्यों में बीमारी फैली हुई है। कोविड का हाल सांप–सीढ़ी के खेल जैसा है। कभी लगता कि अब मंजिल की ओर बढ़ने वाले हैं.....तभी साँप काट कर उसे नीचे गिरा देता है।

तीन दिन पहले ही एक दिन में करीब आठ हजार लोग संक्रमित हुए थे। वह संभवतः बाढ़ की सबसे भयावह चोट थी। जैसे विषधर ने अपना सारा विष तब उड़ेल दिया। उसके बाद उतार आने लगा। अब बावन हजार लोगों के संक्रमित होने की खबर थी। बड़े शहरों के हालात सुधरने लगे थे। दिल्ली. .....मुंबई....चेन्नई में संक्रमण कम हो रहा था। माधव इन महीनों की उथलपुथल को देखने के बाद पक्का नहीं रह सका था। उसके ही सारे अनुमान आकलन गलत हुए। वह बस साँस रोके देख रहा था। भीतर आशा का दीप मद्धम–मद्धम जल रहा था कि अब दिन फिरेंगे....

एक सप्ताह तक खामोश होकर बीमारी के उतार–चढ़ाव को देखने के बाद वह ठगा सा रह गया साठ हजार.....पैंसठ हजार लोग एक दिन में बीमार पड़ रहे। भारत पच्चीस लाख मरीजों के साथ बहुत जल्दी ब्राज़ील को बौना करने वाला है! मौतों का आँकड़ा भी मरीजों की संख्या के आनुपातिक है। करीब अड़तालीस हजार लोगो की जान जा चुकी है। अठारह लाख लोग ठीक हो चुके हैं। उसने फोन को एक ओर फेंकते हुए झल्लाहट में कहा–

कुछ समझ में नहीं आ रहा कि यह कब थमेगा?

पत्नी ने पहले तो उसकी झल्लाहट पर चुप्पी साध ली, फिर बोल पड़ी–''भला तुम हर दिन यह देखते क्यों हो? क्या होता है आँकड़ा देखने से?''

''क्या होता है.....यानी? इस बीमारी से मुक्ति कैसे मिलेगी? इतने सारे राज्यो में यह फैल रही है।''

''देखो.....अभी यह उफान पर है। इसका पीक समझो। बहुत जल्दी यह नीचे आएगी। दूसरी बात यह कि अब तो लोगों में कोई पैनिक नहीं है।''

''पैनिक तुम्हें यहाँ बैठे–बैठे नहीं दिखाई देता है। यहाँ तो बीमारी बहुत कम हो गई है मगर दूर–दराज के गाँव कस्बों में यह फैल रही। वहाँ के बारे में सोचो। वहाँ तो स्वास्थ्य सुविधाओं के नाम पर भी कुछ नहीं है।''

''माधव.....तुम ऐसी बात करते हो जैसे भारत के लोगों ने पहले कभी कोई महामारी देखी ही नहीं।''

''कैसी बातें करती हो तुम! महामारी जब देखी तब देखी होगी। लंबे समय से ऐसा कोई रोग नहीं पनपा, जो पूरे देश में फैल गया हो। मैं मानता हूँ कि इसकी मारक क्षमता पुरानी महामारियों के मुकाबले काफी कम है.... पहले तो हैजे में गाँव के गाँव साफ हो जाते थे.....मगर सामूहिक, सार्वदेशिक स्तर पर भय का ऐसा वातावरण तो कभी नहीं बना। मेरे देखे में तो कभी नहीं रहा। आज की पीढ़ी तो इससे अछूती रही है।''

''और.....और इस बीमारी का मनौवैज्ञानिक असर कैसा है? कैसा त्रास है.....कैसी बंदी है। जहाँ दो–चार लोगों को बीमारी हो गई.....वहाँ उजाड़–सा हो गया। इस पिंजर से मुक्ति तो मिलनी चाहिए। मैं मानता हूँ कि अब भय के वे दिन नहीं रहे। लोगों ने उसे अपनी आत्मा पर बोझ नहीं बनने दिया है। लोग दुबारा अपने जीवन में लौट रहे.....फिर भी।''

''देखो.....इंडियन मेडिकल काउंसिल रिसर्च की बातों पर विश्वास करें तो यह बीमारी भारत में करोड़ों लोगों को हो चुकी और उनमें से अधिकांश को इल्म तक न हुआ कि वे कोरोना से पीड़ित थे, ठीक भी हो गए। इसका एक ही मानी है कि हमारे देश में इसकी मारक क्षमता बहुत कम है। इसने एक विशाल आबादी को प्रभावित किया तो कुछ हजार मौतें भी होनी ही थीं। यह सब दुखद है मगर इससे बचने का कोई रास्ता किसी बड़े देश ने दिखलाया हो तो बताओ। मैं तो नहीं जानती।''

''हाँ....यह भी सच है कि शुरू के दिनों में इस रोग.....लॉकडाउन और इससे जनित भय ने आदमी का जीना मुहाल कर दिया। पूरी दुनिया ने ऐसी मानसिक यंत्रणा कब झेली.....मुझे ध्यान नहीं आता। अब इसकी विदाई का समय है। पूरी तरह जाते–जाते शायद यह साल लग जाये।''

विजया ने माधव को चुप करा दिया। इस छोटे से संवाद के बाद वह ड्राइंग रूम से उठकर चली भी गई थी इसलिए एक पूरी उपस्थिति शून्य हो गई। शब्द बुझ गए। उन्हें बोलने वाला मनुष्य गुम हो गया। वहाँ शांति भर गई। घुप्प सी। एक विचित्र–सा मौन....अस्पष्ट, किन्तु न जाने कब से मनुष्यों के बीच रहता आया हुआ–सा। मगर कुछ क्षणों के लिए ही ऐसा हो सका। उसका फोन बज रहा था। स्क्रीन पर चमकने वाले नाम को देखकर वह आशा से भर उठा। जैसे चुपचाप कह रहा हो.....आखिरकार.....!

''हैलो अशोक जी.....कैसे हैं!''

''बंढ़िया हूँ सर.....क्षमा कीजिएगा। थोड़ा विलंब हो गया.....लेकिन अंततः आपकी पुस्तक प्रिंट में चली गई है। केवल एक सप्ताह और...।''

''अरे वाह.....बहुत धन्यवाद अशोक जी।'' प्रकाशक अशोक को धन्यवाद कहते हुए उसके सीने पर रखा कई मन का पत्थर उतर गया।

''नहीं....नहीं धन्यवाद मत कहिए। वह तो समय की ऐसी मार पड़ी कि हम बैठ गए। वरना अब तक तो दूसरा संस्करण आ जाता, समीक्षाएँ लिखी जा रही होतीं।''

''अच्छा, यह बातइये कि पुस्तक छप कर आ जाने के बाद आप स्वयं अपनी प्रतियाँ लेने आएँगे या मैं कूरियर करवा दूँ?''

''कूरियर क्यों करेंगे? मैं खुद आऊँगा। बस एक फोन कर दीजिएगा।''

''ज़रूर सर। मैं आपको सूचित करता हूँ। अच्छा तो रखूँ फोन?''

''जी.....जी.....ध्यान रखिए अपना।''

अगस्त का महीना बीतने वाला था। माया का खेल अभी खत्म नहीं हुआ। बीमारी अब एक सामान्य समाचार होकर रह गई है। जिस भय और संत्रास ने मानवीय सभ्यता को ढँक लिया था, उसकी बेड़ियाँ टूट रहीं। कम से कम भारत में तो ऐसा ही दिखाई पड़ता है। कनाट प्लेस की ओर जाते हुए उसने सड़क पर वाहनों की आवाजाही आम होते देखी। बीते दिनों की सूनी सड़कें वापस भरने लगी थीं। ज्यादातर दफ्तर खुल चुके थे। शैक्षणिक

संस्थान अब भी बंद थे। कनॉट प्लेस में घुसते हुए उसे यह अनुभव हो गया कि रौनक लौट रही है। उसके संकेत मिलते हैं। उस दिन प्रकाशक के दफ्तर में जाते हुए उसे पार्किंग की थोड़ी जद्दोजहद भी करनी पड़ी। यह कनॉट प्लेस की आम–सी कहानी थी।

माधव ने कुछ प्रफुल्लित मन से अशोक के दफ्तर में कदम रखा। रिसेप्शनिस्ट काम पर वापस लौट आई थी। माधव को देख कर एक स्मित से उसने दूसरे कमरे की ओर संकेत किया। वह चुपचाप उस कमरे में दाखिल हुआ।

''अरे.....सर, स्वागत है आपका। बैठिए.....बैठिए।'' अशोक ने एक कुर्सी उसकी ओर खिसकाई। माधव वहाँ बैठ गया। सामने ही मेज़ पर उसकी पुस्तकें रखी हुई थीं। अपनी पुस्तकों को देखकर उसकी आँखें चमक उठीं। वह उन्हें लेने को आगे बढ़ा ही था कि अशोक ने उठकर प्रति उसके हाथ में थमा दी।

''यह लीजिए.....आखिरकार आपकी प्रिय वस्तु आपके पास आ ही गई!''

''सच ही कहते हैं। बड़ा लंबा इंतज़ार हो गया खैर.....पुस्तक आ गई।''

प्रति हाथों में लिए वह पन्ने पलटने लगा। कितनी आत्मीयता का अनुभव हो रहा था उसे! अपनी लिखी पुस्तक का प्रकाशित होना.....और उसका हाथ में होना, कैसा विरल, दुर्लभ आनंद का क्षण होता है! उसने देखा कि प्रकाशक अशोक ने लेआउट से लेकर फॉन्ट आदि के वैभव का विशेष ध्यान रखा था। पुस्तक दिखने में सुघड़.....सुंदर और ग्राह्य प्रतीत होती थी।

''बहुत धन्यवाद आपका.....अशोक जी।''

''कैसी बातें करते हैं आप! यह तो बहुत पहले आपके हाथ में होती.... मगर परिस्थितियाँ ही ऐसी हो गईं कि आदमी विवश हुआ।''

''जब इसकी पांडुलिपियाँ यहाँ–वहाँ भेज रहा था.....तब दो–तीन लोग चुप रह गए थे। मैं हताश हुआ था। इस पुस्तक को प्रकाशित करने में आपने रुचि ली। आप धन्यवाद के पात्र हैं।''

''देखिए.....उनकी वह जानें। वे लोग बड़े प्रकाशक हैं। मुझे तो आपका लिखा हुआ अच्छा लगा। पहली बार में ही मैंने पांडुलिपि स्वीकृत कर ली। अब इसका प्रमोशन करना है मुझे। मैं चाहता हूँ कि लोग बड़ी संख्या में इस पुस्तक को पढ़ें।''

कृतज्ञता के साथ उसने अशोक का दुबारा धन्यवाद किया। पुस्तक की प्रतियाँ अपने बैग में लेकर वह सीढ़ियाँ उतरने लगा। शाम होने लगी थी। धूप ढलकर इमारतों के पीछे चली गई थी। वहाँ हल्का–सा अँधेरा उतर आया था। दुकानों में बत्तियाँ दमक रही थीं। दिल्ली के सबसे मशहूर इलाके की ज़िन्दगी अब सहमी–सहमी सी नहीं रह गई थी। वह फंदा काट रही थी। काट चुकी थी! उसने कार में हौले से एक्सलरेटर दिया, गाड़ी आगे बढ़ गई। एक बड़े चौराहे पर लाल बत्ती जल रही थी। उसने शीशे से देखा.....गुलाब और कलम बेचने वाली बच्चियाँ मंडरा रही हैं। एक दो लोग उन्हें खरीद भी रहे। सड़के के दोनों ओर फुटपाथ पर मास्क लगाए हुए लोग चले जा रहे।

उसकी कार आगे बढ़ी। रौशनी के झालर फैलते चले जा रहे थे। वह अशोक रोड को पार कर इंडिया गेट के पास पहुँचा। तब तक शाम का आखिरी स्केच आकाश के कोनों पर धूमिल पड़ने लगा था.....अँधेरा एक विराट आँगन को लीप रहा था। बत्तियों के फूल खिल रहे थे। इंडिया गेट के पास भीड़ थी। वही भीड़ जो छुट्टियों के दिन वहाँ जुटा करती थी, वही भीड़ जो अचानक गुम हो गई.....आज फिर से उमड़ आई थी।

अगस्त की वह शाम बीत गई। सितंबर आ गया उसे उम्मीद थी कि जैसे जीवन खुल रहा है.....वैसे ही रोग भी अब विदा हो जाएगा। मगर जो हुआ.....और जो हो रहा था वह अभूतपूर्व था। माह के पहले सप्ताह में ही हर दिन मरीजों की संख्या अस्सी हजार से ऊपर पहुँचने लगी। दूसरे सप्ताह तक आँकड़ा नब्बे हजार और तकरीबन लाख तक को छूने लगा। जिन शहरों–प्रान्तों में संक्रमित लोगों की संख्या कम होने लगी थी, वहाँ बीमारी ने फिर से फुफकार भरी। यह साँप–सीढ़ी का ऐसा खेल था जिसमें शह–मात की कोई संभावना दिखाई ही नहीं पड़ती थी। कौन जाने....क्या होगा? कहाँ जाकर थमेगा यह सिलसिला? ज़िन्दगी ढर्रे पर लौटने लगी तो उसने फिर से खुद को ढँकना.....छुपाना....कैद करना नामंजूर कर दिया। अब तो जो होना है वही सही!

जीवन–मृत्यु की यह लड़ाई अब किसी सरकारी नियंत्रण, कायदे कानून में नहीं थी। वह मनुष्य और उसका संघर्ष बनकर सामने खड़ी थी। उससे भिड़ना ही था। एक बात तो साफ और स्पष्ट थी कि भारत से अब कोरोना का भय खत्म होने लगा था। मृत्युदर भी विश्व में सबसे कम थी। लेकिन दुर्भाग्य यह कि प्रतिदिन इतनी बड़ी संख्या में लोग संक्रमित हो रहे थे तो हर रोज़ मरने वाले भी हजार से ऊपर ही रहे।

माधव ने आँकड़ा देखना बंद कर दिया था। सितंबर के तीसरे सप्ताह में उसने निराशाजनक पूर्वाभास और उदासी के साथ आँकड़ों पर नजर डाली। उसे फौरी तौर पर राहत मिली। पिछले चार पाँच दिनों से संख्या लगातार नीचे आ रही थी। गिरने और गिर कर फिर से उठ जाने का यह आखिरी दौर हो! गिरना हो! कि अब केवल इसका गिरना ही गिरना हो! साँप–सीढ़ी के खेल में अंततः सर्पदंश से बचने की उसने चाल चली हो! संभवतः इसका सबसे बुरा दौर बीत गया हो! यही सोच कर उसने लंबी साँस ली। तभी सोसाइटी के व्हाट्सएप ग्रुप में एक मैसेज मोबाइल स्क्रीन पर उभरा। उसके बगल वाले फ्लैट में रहने वाले त्रिपाठी जी ने सूचना दी थी कि वह कोविड से संक्रमित हो गए हैं। माधव ने उस संदेश को वैसे ही पढ़ा जैसे मार्च के दूसरे सप्ताह में उसने अखबार पलटते हुए कोरोना से पहली मौत का समाचार पढ़ा था। तब वह हँसा था। फिर अथाह दुख के पाँच महीने काटै थे। अब वह फिर से हँस रहा था। मृत्यु का भय उतना भयंकर नहीं होता, जितनी जीने की स्वच्छंदता को नष्ट–भ्रष्ट कर छीन लिए जाने की घुटन होती है। उसने अपनी बैठक की खिड़कियाँ खोल दीं। बाहर शरद का संकेत था। जैसे ऋतु आने से पहले कोई सूक्ष्म चिह्न छोड़ जाती है..... धूप और हवा में तैरता हुआ एक मलमल गुलमोहर के ऊपर से उठ रहा था। नीचे कुछ बच्चे साइकिल से रेस लगा रहे थे....।

***

पाँच महीने बाद.....

वर्ष 2021

एक

मध्य मार्च की एक साधारण–सी दोपहर थी। तंद्रालस से भरी हुई। कमरे में घुप्प सन्नाटा छाया हुआ था। बसंत के इन दिनों में वह अनायास ही व्याप जाया करता है। मानों चारों ओर किसी महामौन का घेरा हो। चार दीवारें.....दो दरवाजें....खिड़कियाँ सब थिर। न जाने क्यों शीशे कुछ ज्यादा चमक रहे थे। बाहर से रह–रहकर सूखे पत्तों के गिरने की आहट सुनाई देती। जब भी पत्ते गिरते, निर्वेद में डूबी खड़खड़ाहट होती फिर वही मौन बहने लगता। माधव चुपचाप बैठा था। उस गहन शान्ति में अपनी ही साँसें सुन रहा था। सामने शीशे की खिड़कियों से दिख रही खाली दुपहरी पर उसकी आँखें जीम हुई थीं। सहसा वह उठकर कमरे से बाहर निकल आया। सामने ठीक–ठाक व्यस्त सड़क थी। लेकिन तब वहाँ भी मौसमी सूनापन बिखरा हुआ था। हवा बहती। बीच–बीच में कोई मोटर साइकिल, गाड़ी उस गुम को तोड़ कर चली जाती।

निरुद्देश्य से कुत्ते यहाँ–वहाँ डोल रहे थे। पतझड़ जा चुका था। उसके होने के चिह्न भर रह गए थे। डालियाँ हरी–भरी दिखती थीं पर बसंत बड़ा ही निस्तेज सा था। कुछ देर तक रुका रहा। जैसे कमरे में निरुद्देश्य बैठा था, उसी तरह बाहर भी बेमानी ही खड़ा रहा। फिर कमरे में वापस लौट आया। कक्ष में लौट कर उसने बाहर जाने की अपनी दस मिनट पुरनी इच्छा पर किसी तरह का कोई विचार या प्रश्न नहीं किया कि गया ही क्यों था। मेज पर टांगें टिकाए वह झपकियाँ लेने की कोशिश करने लगा। तभी दीपक ने पास आकर पूछा; खाना लगा दूँ सर?

एक क्षण के लिए वह चौंक उठा। एक कान से लटक रहे मास्क की दूसरी डोरी को फौरन दूसरे कान तक ले गया। मुँह ढँक कर उसने कुछ बुझी सी आवाज में कहा–''हाँ, लगा दीजिए। चंद्रप्रकाश जी तो नहीं आएंगे आज?''

दीपक ना में सिर हिलाकर लौट गया। कमरे में पुरानी चुप्पी छा गई। लेकिन उस क्षण की चुप्पियों में उसके भीतर कैसा शोर उठा है, यह उसके सिवा कौन जानता है! ठीक वर्ष भर बाद वही भीति लौट आयी है। वही..... आशंका घिरने लगी है। वैसी ही चिन्ता छा रही। साल 2020 का मध्य मार्च कैसा उथल–पुथल भरा था! कितने सारे प्रश्न उठे थे! कितनी व्यग्रताएं..... उद्विग्नताएं और कैसा संत्रास! कैसे बंधन.....! उफ...ध्यान धरते हुए वह सिहर उठा। कैसे काटे थे वर्ष के छह महीने! सितंबर–अक्टूबर के बाद ही ज़िन्दगी

अपनी रीढ़ सीधी कर सकी। शहर गाँव सब अपने जीवन में लौट आने लगे। जनवरी–फरवरी 2021 तक लगने लगा कि भारत ने कोविड के विरुद्ध समर जीत लिया है।

फरवरी के शुरुआती दिनों में उसने रेलयात्रा की। अपने गाँव गया। सब कुछ सामान्य दिखाई देता। किसी के चेहरे पर मास्क नहीं। कहीं से संक्रमण का कोई समाचार नहीं। यहाँ तक कि रेल के बंद डिब्बों में लोग साँकेतिक रूप से मुँह पर मास्क जैसा कुछ लटकाए घूम रहे थे। भारत पूरी दुनिया के सामने एक उदाहरण बन कर उठा था। जिस देश के बारे में लाखों–करोड़ों मृत्यु की अटकलबाजियाँ की जा रही थीं। आधुनिक देशों के विज्ञ, विज्ञानी चिंतक अपनी–अपनी भविष्यवाणियों से भारत की स्याह तस्वीर पेश कर रहे थे और भारत कोविड को मात देकर उठ खड़ा हुआ। उसने न सिर्फ कोरोना को परास्त किया.....बल्कि दुनिया को वैक्सीन देने वाला देश बन गया। मगर विडम्बना.....! अभी तो उसने दुर्दान्त व्याध को पछाड़ा ही था, अभी वह ठहर कर दम ले रहा था, उसने अपने बदन की धूल झाड़ी थी कि व्याध लौट आया।

देश के इक्के–दुक्के राज्यों में सिमट कर रह गई बीमारी फिर से पाँव पसार रही है। कुछ राज्यों में इसका साया गहराने लगा है। महाराष्ट्र इस बीमारी से कभी उबर ही नहीं सका। वहाँ इन दिनों हजारों लोग संक्रमित होने लगे हैं। यहाँ तक कि जिस दिल्ली शहर में कुछ दर्जन बीमार रह गए थे....वहाँ भी लोग विषाणु की चपेट में आने लगे हैं। एक भारी चिन्ता उसे जकड़े जा रही थी। रह–रह कर वही पाशबद्ध दिन याद आते। वही निचाट सूनापन....विषाद, आशंका...लॉकडाउन.....! व्ह इस वैचारिक अंधड़ में फंसा हुआ था कि तभी किसी ने फ्लैट की छोटी सी लॉबी का द्वार खोला। उसने झांकने की कोशिश की...देख नहीं सका, कौन आया है। उठना ही चाहता था कि काँधे पर बैग टाँगे चंद्रप्रकाश कमरे में दाखिल हुआ।

अरे...आप! माधव ने सुखद आश्चर्य से भर कर पूछा।

''हाँ, आ गया। जहाँ मुझे जाना था, वहाँ से कोई सूचना नहीं मिली। मैंने बारह बजे तक प्रतीक्षा की फिर निकल पड़ा। घर में बैठे–बैठे भी सड़न होती है। सोचा दीपक जी के हाथ का दाल–चावल ही खा लूँ।'' इतना कहते हुए चंद्रप्रकाश जोर से हंसा। माधव के अकेलेपन का ताप तत्क्षण उतर गया।

''चाय पियेंगे या भोजन करेंगे.....? माधव ने पूछा।''

''अभी चाय क्या पीना! भोजन ही कर लेते हैं। आप ने खा लिया?''

''करीब पंद्रह मिनट पहले ही दीपक ने मुझसे पूछा। मैंने सोचा, आप नहीं आ रहे तो.....।''

''अच्छा किया.....आप ने।''

''दो मिनट में आया। जरा हाथ–मुँह धो लूँ।''

हाँ.....

चंद्रप्रकाश वॉशरूम से जब तक लौटा, टेबल पर खाना लग चुका था। और आज दाल–चावल नहीं, रोटी–सब्जी थी। चंदू ने तंज कसा.....''अरे दीपक, आज रोटियाँ कैसे बन गई?''

''बस बन गईं सर।''

''अच्छा, तो तुमने इसलिए रोटी बनाई कि मैं आज आने वाला नहीं था!''

दीपक हँसा। ''नहीं सर.....मैं आटा लगा चुका था, मुझे बाद में पता चला कि आप नहीं आ रहे। आपके लिए आटा नहीं लगाया होता तो रोटियाँ होतीं क्या?''

चंद्रप्रकाश भोजन में व्यस्त हो गया। माधव कोविड के आतंक से कुछ देर के लिए मुक्त हुआ था, पर एक बार फिर उसी झंझा में घिर गया। इस बार वह अकेला नहीं था। उसे आशा थी कि चंद्रप्रकाश से कुछ तसल्ली की बातें सुनने को मिलेंगी। उनका आकलन.....नजरिया सटीक होता है।

''चंद्रप्रकाश भोजन में व्यस्त हो गया। माधव कोविड के आतंक से कुछ देर के लिए मुक्त हुआ थाा, पर एक बार फिर उसी झंझा मे घिर गया। इस बार वह अकेला नहीं था। उसे आशा थी कि चंद्रप्रकाश से कुछ तसल्ली की बातें सुनने को मिलेंगी। उनका आकलन.....नजरिया सटीक होता है।

''चंद्रप्रकाश जी....थोड़ी उलझन में हूँ। समझ में नहीं आ रहा, क्या हो रहा है। कोरोना फिर से पसरने लगा है।''

''हाँ, संक्रमण बढ़ा तो है। मुझे लगता है थोड़ा बहुत ऊपर–नीचे होगा। सेकंड वेव यूरोप में भी आया था। वहाँ स्थिति बिगड़ गई थी। बहुत खतरनाक था। भारत में अधिकांश लोगों को कोविड हो चुका है, इम्युनिटी भी हो गई होगी। मुझे नहीं लगता कि बहुत परेशानी की बात है। अस्सी फीसद मामले महाराष्ट्र और केरल में हैं।''

''हम्म.....धीरे–धीरे दूसरे राज्यो में भी रोगी बढ़ रहे!''

माधव चंद्रप्रकाश की बातों से आश्वस्त तो हुआ पर एक सुलगती हुई शंका भीतर रह गई। जैसे घूरे के बुझे–बुझे से ढेर से कोई धुआँ रह–रह कर उठता रहता है। अक्सर लोगों को इस बात का अंदाजा नहीं होता कि बुझे–बुझे से घूरे से उठ रहा धुआँ...किसी दीर्घजीवी अग्निशिखा का अंश है। उसे सूखी लकड़ियाँ दे दो तो वह सुलग उठता है।

कमरे में कुछ देर तक रिक्त छा गय। जिसे हमे शून्य की अवस्था कहते हैं, कि अब क्या कहें! और ऐसा बहुत सामान्य परिस्थितियों में होता रहता है। जैसे ध्वनि और मौन का द्वय हो। दोनों का होना एक सामान्य क्रिया भी तो है। उस शाम को माधव साउथ एवन्यू से जल्दी निकल गया। अमूमन छह बजे के बाद ही निकला करता था। आज सड़क खाली थी। तीन मूर्ति वाला गोलंबर इस समय पाँच से सात मिनट का समय घेरा करता, आज वह यूँ ही छूट गया। अकबर रोड सूना था। इक्के–दुक्के वाहन चले जा रहे थे। डीटीसी की कुछ झूलती हुई बसें शोर करती बढ़ रही थीं। पौने छह बजते–बजते ही वहाँ के सघन दुछत्तों से पीली बत्ती झरने लगी थी। पुलिस के बैरिकेड्स सड़क किनारे लगे हुए थे। एक दो सिपाही वहाँ खड़े थे। इंडिया गेट के अर्धवृत्त से गुजरते हुए भी उसे भीड़ नहीं मिली। प्रगति मैदान के पास लंबे समय से चल रहे निर्माण कार्य से जो जाम रोज लगता था, वह भी आज नहीं था। कोई अवकाश तो नहीं है। फिर वही हवा चली है..... शायद!

***

दो

मार्च के आखिरी दिन थे। होली का उत्सव....उसकी प्रतीक्षा कर दहन हो चुका था। न कोई उल्लास.....न रागात्मकता। हाँ.....होली आ रही है! जब सामान्य दिनों की देह टूट रही हो, जब उन दिनो पर अनायास ही उन्हीं काले बादलों की छाया फिर से मंडराने लगी हो, जिसे महीनों भोग कर वह मुक्त होता हुआ अनुभव कर रहा हो, तो विशेष दिन निष्प्रयोजन रह जाते हैं। उनकी सारी चमक जाती रहती है। विशेष की सारी अर्थवत्ता ही सामान्य के होने, उसकी निरंतरता से है। सामान्य नष्ट हो जायें तो विशेष भी नष्ट ही समझा जाता है।

होली आई। आते–आते ही आकर चली गई। सुबह रह–रह कर कुछ शोर उठा। कुछ छोटे बच्चों की हँसी–खुशी फुलझड़ियाँ खिलीं। पास की सोसाइटी में सिनेमा के घिसे–पिटे गाने बजे। दो–बार लोगों को रंग और पानी से नहाते–खेलते देखा। उल्लासहीन उत्सवधर्म.....किसी तरह निभ गया! बारह–एक बजते–बजते सब सिमट गया। बिना रंग के ही रंग का नशा चढ़ गया। सन्नाटा पसर गया। आम तौर पर होली की दुपहरी बड़ी थकी सी होती है। सबकुछ निढाल हो जाता है। इस बार उस दुपहरी के निठल्लेपन में निराशा भी मिल गई है। वही चुप्पी। वही पिछले बरस का उजाड़ उत्तर–बसंत लौट आया है! या.....उसके आने की आहट सी हुई है!

अप्रैल का पहला सप्ताह बीत रहा था। भारत ने महज दस दिनों में एक लाख से अधिक संक्रमित लोगों का आंकड़ा पार कर लिया। पिछले बरस जब कोरोना फैलने लगा तो उसे लाख का आंकड़ा छूने में सात–आठ महीने लगे। इस बार कोविड की रफ्तार भयावह थी। आठ अप्रैल को ही देश में एक लाख तीस हजार नए मरीज आ चुके थे। जबकि महीना भर पहले देश में मुश्किल से पंद्रह–सोलह हजार बीमार रह गए थे। वह बीमारी भी दो–तीन राज्यों तक सीमित थी।

अप्रैल 2021 से कोरोना का काल भारत में भटकने लगा। शहर–दर शहर घिरने लगे। महाराष्ट्र से लहर उठी, देखते ही देखते दिल्ली पर चोट कर बैठी। ऐसा लगा जैसे किसी शांत सी नदी में अचानक प्रलय का जल भर आया हो और वह कूल, कगार, तटबंध सब ध्वस्त कर बह चली हो। सोशल मीडिया पर तस्वीरें उमड़ने लगीं। हर दिन दो–चार परिचित और उन परिचितों के सम्बन्धी, मित्र विदा होने लगे। आँसू....हाहाकार.....सदमा.....शोक। मनुष्य जड़ीभूत हो गया।

दस अप्रैल की शाम वह नोएडा की फिल्म सिटी में था। कार में अकेला गुमसुम बैठा था। खिड़कियाँ थोड़ी खुली थीं। ध्यानमग्न होकर कुछ सोच रहा था, तभी एक छाया ड्राइविंग सीट के पास वाले शीशे पर लहराई।

''राम राम जी.....''

वह चौंक उठा। गर्दन घुमा कर उसने देखा। सरदार जी थे। वही हँसी...वही भंगिमा। चेहरा अनावृत, उघड़ा हुआ। माधव को करंट सा लगा। उसने कार के डैशबोर्ड पर रखा अपना मास्क फौरन उठा लिया। चेहरे पर लगाते हुए बोला.....कैसे हैं सर.....प्लीज.....फॉलो सोशल डिस्टेंसिंग....!

सरदार जी कुछ गंभीर होकर हँसते रहे। गले से बंधे मास्क को मुँह पर चढ़ाते हुए बोले–बिल्कुल भाईसाहब....।

वह थोड़ा पीछे हटे। माधव ने डोर खोला। कार से बाहर निकल आया। बाहर खुली हवा में उसे तसल्ली हुई। सरदार जी बोल पड़े–''माधव भाई, आज उधर साउथ दिल्ली से लौटा हूँ। कुछ काम से गया था। एम्स और साउथ एक्सटेंशन के पास जितने एम्बुलेंस मैंने आज देखे, उतने कभी नहीं देखे हैं। पूरी सड़क थमी पड़ी थी।'

''हाँ, अचानक जैसे कुछ फट गया है। पता नहीं क्या हुआ, कैसे हुआ? मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा। आप यहाँ कैसे?''

उन्होंने बीस कदम दूर खड़ी एक गाड़ी की ओर इशारा किय–''दफ्तर के दो लोग साथ हैं। कुछ काम से दक्षिणी दिल्ली गया था।''

''लेकिन यह थोड़ा खतरनाक है। आप लोग एक ही कार में घूम रहे हैं।''

''भाई, मास्क तो लगा रखा है।''

वह चुप हो गया। ज्ञानोपदेश में उसकी आस्था नहीं थी। पचास–बावन वर्ष के मनुष्य को क्या ज्ञान देना कि मास्क लगाइये। चार लोगों के सासथ मत घूमिए!

सरदार जी भाँप गए कि माधव असहज हो चला है। बोले–चलिए भाई मैं निकलता हूँ। ख्याल रखिए अपना। इतना कहकर उन्होंने हाथ बढ़ाया। माधव ने हाथ मिलाते हुए कुछ जल्दबाजी की। सरदार जी अपने साथियों की ओर बढ गए। माधव ने उस ओर न देखने की इच्छा से देखा। संभवतः वह किसी और नजर या हाय–हैलो से बचना चाहता था। हौले से कार का

दरवाजा खोलकर बैठ गया। उसे अपने जिस साथी का इंतजार था, वह अब तक नहीं आया था। पांच–सात मिनट यूँ ही बीत गए। भीतर कुछ घुटन सी हुई तो वह दुबारा बाहर निकल आया। सरदार जी अपने साथियों के साथ जा चुके थे।

***

तीन

बारह अप्रैल 2021.....यह आखिरी दिन था, जब माधव और चंद्रप्रकाश अपने दफ्तर में मिले थे। वहाँ काम करने वाले दो–तीन साथियों ने आना बंद कर दिया था। दीपक तब तक वहीं था। आज के बाद वहाँ से बोरिया बिस्तर समेटा जाना तय था। घर से ही काम करना होगा! जैसे भी मुमकिन हो.....! एडिटर अपने साथ एडिटिंग सिस्टम लेकर चला जाएगा। घर बैठे ही एक दो स्टोरी एडिट करेगा। यह सिलसिला कब तक चलेगा, कोई नहीं जानता।

''चंद्रप्रकाश जी, क्या आप मानते हैं कि यह लहर केवल असावधान रहने या सामान्य रूप से संक्रमण के बढ़ने से आई है?''

चंद्रप्रकाश चुप रह गया। फिर बोल पड़ा–''संदेह गहरा हो रहा। वैसे कई देशों में कोविड की दूसरी लहर आई। पर भारत में कुछ अजीब सा हो रहा।''

माधव को बल मिला–''आप देखिए, आज से एक सवा माह पहले..... यह लगभग समाप्त हो चुका था। महाराष्ट्र और केरल में कुछ हजार मरीज थे। इन दोनों राज्यों के अलावा.....पाँच सात प्रान्तों में मुट्ठी भर लोग बीमार थे। आज भारत में कोविड पहली वेव की ऊपरी सीमा को ध्वस्त कर भयावह रूप ले चुका है। ऐसा लगता है जैसे कोई धमाका हुआ हो। मुझे हैरत इसलिए होती है.....कि भारतीय उपमहाद्वीप के किसी और देश में कोई बदलाव नहीं हुआ। पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, नेपाल जैसे देशों में कोई लहर नहीं है। क्या वहाँ की भौगोलिक स्थितियाँ भारत से सर्वथा भिन्न हैं? क्या इन देशों के लोग लगभग हम भारतीय जैसे नहीं? क्या ये अपनी सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि के प्रति हमसे अधिक सतर्क या जागरूक हैं? क्या ये चौबीसों घंटे मुँह पर मास्क लगाए घूमते हैं?''

इतना कहते हुए वह कुछ उत्तेजित हो उठा।

''आपके सवाल बेमानी नहीं है। इसे किसी तरह से निरस्त नहीं किया जा सकता या हवा में नहीं उड़ाया जा सकता। यह तो हम सभी जानते हैं कि कोविड की पहली लहर जब भारत आई थी, तब वैश्विक स्तर पर भय, सनसनी के कितने सिद्धांत गढ़े गए थे। भारतीय समाज को डराने की कितनी कोशिशें की गईं थीं। कितनी झूठी रिपोर्ट छापी गई थी। संभावित मृत्यु के कितने अतिरंजित आंकड़े दिये गए थे। भारत ने उन सबको गलत सिद्ध कर दिया। एक तरह से विश्व के सामने भारत मिसाल बना। यह संभव

है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने और मौजूदा सरकार की छवि को खण्डित करने के लिए इसे जैविक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया गया हो। कुछ पुष्ट करना कठिन है। आज की हालत देख कर मन षड्यंत्र को झुठला नहीं पाता.....!''

''वैसे एक सच तो यह भी है कि केन्द्र सरकार ने संकेत किया था कि दूसरी लहर आ सकती है। सभी राज्य सावधान, तैयार रहें।''

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। माधव ने चुप्पी तोड़ी; ''दिल्ली में लगाए गए नाइट कर्फ्यू का क्या तुक है? इससे भला क्या फायदा हो सकता है? मुझे लगता है कि धीरे–धीरे लॉकडाउन की तैयारी की जा रही है।''

''हाँ, जिस तेजी से मरीज बढ़ रहे हैं, उससे तो यही लगता है। आज ही ग्यारह हजार से अधिक लाग संक्रमित हुए हैं। पिछले वर्ष कोरोना जब उफान परथा, तब दिल्ली में एक दिन में रोगग्रस्त लोगों की सर्वाधिक संख्या साढ़े आठ हजार थी। इस दफे यह जिस गति से ऊपर उठा है, उसे देखकर भय होता है।''

इसके बाद चंद्रप्रकाश ने बातचीत का सुर बदल दिया।

''मेरे विचार से अब यहाँ आने का कोई अर्थ नहीं है। जब तक स्थिति सुधरती नहीं, तब तक हम घर से कुछ लिख कर भेजते रहेंगे। लड़का एडिटिंग सिस्टम लेकर आज जा रहा है। जैसे संभव होगा, कुछ न कुछ एडिट करता रहेगा। हाँ, वॉयस ओवर का अतिरिक्त भार आपके ऊपर ही होगा।''

''वह कोई समस्या नहीं। मैं कर दिया करूँगा। तो फिर....मैं चलूँ?'' माधव ने कुछ अनमने ढंग से पूछा।

''हाँ.....हाँ.....यहाँ रुकने से कोई लाभ नहीं। दीपक भी घर जाने की हड़बड़ी में है। सुबह से ही तैयार बैठा है।'' ऐसा कहते हुए वह मुस्कुराया। उसने दीपक को तिरछी निगाहों से देखा। वह अपने फोन में डूबा हुआ था।

साउथ एवेन्यू के फ्लैट में ताला जड़ते हुए चंद्रप्रकाश को वह चुपचाप देख रहा था। विकल अनिश्चितता का भाव उसे घेर रहा था। कौन जानता है.....अब यह ताला किस दिन खुलेगा? कितने दिनों के बाद यहाँ आना होगा! फिर वही मनहूस दिन लौट आए हैं! वही क्लान्त हवा बहने लगी है! न जाने क्यों उदास बारबेट शाखों पर दुबारा हूकने लगी है!

सूने रास्ते पर उसकी कार चली जा रही थी। जो विजय चौक अपनी विशालता से आम दिनों में भी खाली–खाली दिख पड़ता है, आज सरपट मैदान सरीखा नजर आ रहा। मध्य में बड़ा सा झरना पानी उगल रहा था। लाल बत्तियों के आसपास और इधर–उधर पुलिस के बैरिकेड्स लगे थे। इक्के–दुक्के रिपोर्टर अपने माइक संभाले फाइनल टेक के लिए प्रयासरत थे। इन सबके अलावा वहाँ निर्जन इमारतें थीं। सन्नाटा था। दो चार गाड़ियाँ लोहित आकाश से लटके क्षितिज की ओर बढ़ी चली जाती थीं। माधव उनके पीछे–पीछे गुमसुम सा चला जा रहा था।

बारह–तेरह अप्रैल तक आते–आते देश का दृश्य डरावना हो गया। मौत के समाचार छाने लगे। मीडिया में हा जीवन.....हा जीवन.....हाय अव्यवस्था.....यह समस्या....वह समस्या.....अस्पतालों की मारामारी, मृत्यु...बस यही सब रह गया। चौबीस घंटे शोक समाचार। चौबीस घंटे रुदन। सोशल मीडिया पर जाते हुए उसे भय होता और बिना गए रहा भी नहीं जाता। आज जब उसने फेसबुक खोलकर देखा तो एक परिचित लोकप्रिय चेहरा वहाँ छाया हुआ था। अमित अज्ञेय नाम के एक जाने–पहचाने व्यक्ति। जिनके फॉलोअर्स बहुत थे। वह पैंतालीस–पचास की आयु में ही कोरोना का ग्रास बन गए। माधव उनसे मित्र रूप में परिचित नहीं था, बस जानता था। हर दूसरी तीसरी फेसबुक वॉल पर लोग विलाप कर रहे थे।

अमित अज्ञेय को जानने वालों और उनके परिजनों का दुःख दूना था। बारह दिनों पहले उनके पिता भी कोविड से कवलित हो चुके थे। घर में माँ... .....पत्नी बच्चे सभी संक्रमित। अमित की वृद्धा माँ बेहाल थीं। एक तरफ पति... .पुत्र का मर्मभेदी देहांत, दूसरी ओर अपनी रुग्णता। बच्चे.....बहू की बीमारी। अनिश्चितता, भय–भ्रान्ति और अंधकार। मानों काल ने क्रुद्ध होकर झपट्टा मारा हो।

मध्य अप्रैल तक आते–आते देश में हाहाकार मच गया। संक्रमण उफान लेने लगा। दूसरी लहर ने पिछले वर्ष के सारे कीर्तिमान ध्वस्त कर दिए। शहर–शहर, गाँव–गाँव घिरने लगे। राज्य दर राज्य वायरस फैलने लगा। भारत मात्र एक डेढ़ माह पहले तक इसे परास्त कर देने के विजयी भाव से भरा हुआ था, आज हारा हुआ, म्लान, बोझिल.....हताश....नजर आ रहा था। दिल्ली लॉकडाउन की ओर बढ़ चुकी थी। नगर में निस्तब्धता छाने लगी। सड़कों पर सूनापन....निर्वाक। मुहल्लों से मनुष्य.....और उसके साए उड़ने लगे। काल सूनापन छिटक कर आकाश में बैठ गया। लोग दुबारा घरों में दुबक गए, जो दिखाई देते वह तो केवल रोजमर्रा के सामानों को खरीदने

के लिए निकलते थे। आम ज़िन्दगी उसी खोखल में सिमटने लगी जिससे बाहर निकलने.....सहमे–सहमे पांव बढ़ाने की उसने अभी पहल ही की थी।

वह खिड़कियाँ खोलकर गुलमोहर की लाली देखता। सूने आकाश की नीली चादर ओढ़ लेता। सोचता कि मनुष्य ने ऐसा कौन सा गुनाह कर डाला कि एक बरस से उसके जीने के अधिकार ही छीन लिए गए हैं। तभी एम्बुलेंस का सायरन धीमे से उठता हुआ तेज होकर उन खिड़कियों के पास आ जाता। वह सिहर उठता।

***

चार

इक्कीस अप्रैल को भारत में सवा तीन लाख मरीज सामने आए। सवा तीन लाख संक्रमित.....! यह तो व्याधि–विस्फोट है! महाराष्ट्र.....केरल..... तमिलनाडु....मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली, उत्तप्रदेश, बिहार.....बंगाल.....इन सभी राज्यों में तेजी से लोग घिरने लगे। जिस रफ्तार से संक्रमण बढ़ रहा था, उस से दुगनी रफ्तार से अफरातफरी, अव्यवस्था फैल रही थी। भय ने वामन का डग भर लिया। हर दिन ढाई तीन हजार लोगों की मृत्यु होने लगी। देश त्राहिमाम कर उठा। उदासी उसे घेर रही थी। कैसे मुक्ति मिलेगी इस रोग से.....! यह तो जाकर वापस लौट आई है! एक बार फिर वही गुलमोहर उसकी आँखों के सामने है, कल जिसे बारिश ने धो डाला है! फूलों की लाली कैसी धुली–धुली सी है....।

पिंकी पुकारती रही

पुकारते धरा–गगन

मगर कहीं रुके नहीं

बसन्त के चपल चरण....

यों, ऋतुकाल के अनुसार बसंत कब का बीत गया। बीत जाना ही था। बैसाख का माह चल रहा है। मगर एक बरस से बसन्त आया ही नहीं है। पिछले बरस जब वह आया था, तब उसका उल्लास नहीं आतंक था। यहाँ तक कि ताप के दिनों में बसंत छाया हुआ था। बस जीवन से वह अदृश्य, दूर रह गया। वह हमें छूता, चिढ़ाता रहा, हम मुँह खोले स्तम्भित देखते रहे। जीवन जड़ हो गया।

साल भर बाद दो बसंत के आने की खुशी छायी। एक ऋतु बसंत दूसरा जीवन–बसंत। जीवन खुल गया था। लोग भयमुक्त हो चुके थे। तभी वह लौटा। दोनों बसंत अपने साथ ले गया। अब तो बस ग्रीष्म है। अंतर का निदाघ। धू–धू कर मन जल रहा। बाहर ठंडी हवा बहती है। मई में मेघ बरसते हैं। हवा में वर्षा ऋतु सी शीतलता है। लेकिन सब व्यर्थ....यह गुलमोहर कैसी लाली समेटे हुए है? कल शाम जब बादल घिर आए और बूंदे गिरने लगी तब यूँ लगा जैसी किसी पर्वतीय प्रदेश में खड़ा हूँ। पर ऐसी ऋतुओं का कोई मोल नहीं। जब मनुष्य मरे और धरती–आकाश आनन्द मनाए, उस आनन्द का क्या अर्थ? किसी का आनन्द किसी और का दुख नहीं

हो सकता। इस हवा, मौसम, आकाश से झरती बूंदों को अपने हिय में भरने वाले मनुष्य ही नहीं रहे। बस एक निचाट सूना रह गया। भय द्विगुणित होकर छिटक गया है। बच्चों को बाहर खेलते देखे हुए अरसा हो गया है। सबकी साइकिलें स्टैंउ में जा चुकी हैं।

हर सुबह जब मैं सैर के लिए आता हूँ तो अकेला होता हूँ। कोई बाहर नहीं निकलता। बालकनी तक सूने होते हैं। मेरी सोसाइटी में आठ दस लोग बीमार हुए थे। अब अधिकांश ठीक हो चुके हैं। ईश्वर की कृपा है। पर भय है कि जाता ही नहीं। इस मेघाच्छादित आकाश से जितनी बूँदें झरती हैं उससे अधिक अफवाहें बरसती हैं। उन अफवाहों में से एक यह भी है कि हवा में कोरोना के विषाणु हैं। बाहर मत जाना! हाँ, लोग शायद इसलिए नहीं निकलते कि किसी से मुलाकात न हो जाये। हर मनुष्य एक संभावित विषाणु वाहक है!

इस बरस का बसंत बीत चुका है। उसका समय तो बहुत पहले समाप्त हो गया। वह थोड़ा–बहुत रह गया। ताप अभी कहाँ बरसा है! इस बार धरा–गगन किसी ने उसे नहीं पुकारार। न पिंकी ही कोई आग्रह कर सकी। टूटे मन में बसंत नहीं रहता। विडम्बना देखिए कि जब इस धरती आकाश को उसकी चाह नहीं थी, तब वह महीनों रह गया। इस गुलमोहर को देखकर मेरा मन कचोटता है। मैं अकेला चक्कर काटता रहता हूँ यहाँ। कूड़े उठाने वाला मनीष मुझे टोकता है कि सर अब इधर मत जाना। कोरोना पीड़ित लोगो के घर का कचरा भी है यहाँ। मैं एक क्षण के लिए अपने पाँव रोक लेता हूँ फिर चुपचाप आगे बढ़ जाता हूँ। कई चक्कर काटता हूँ। बसंत ऊपर इस पेड़ पर टंगा रहता है। नीचे शहतीर घूमता है!

माधव को एक बात हैरान करती थी। पिछले बरस इन्हीं दिनों लगभग माह–डेढ़ माह पहले जब कोविड का खतरा देश में बढ़ा और देश दुबक कर अपने घर में बैठ गया तब मौसम मेहरबान हो गया। मार्च के महीने में दिल्ली में इतनी बरसात हुई कि सौ वर्षों कीर्तिमान टूट गया। लगभग पूरे भारत में ऋतुचक्र बदल सा गया था। मार्च से मई के बीच दो चार दिनों के अंतराल पर कभी बारिश होती अंधड़ आते और कभी ओले गिरते। आम राय लोगों की यह थी कि प्रकृति कुपित है। आश्चर्य यह कि प्रकृति का वही रूप–रंग इस वर्ष भी दिखाई देता है। ताप के दिन हैं लेकिन ताप कहाँ है! वह विचारों में डूब गया–

पिछले बरस से देख रहा हूँ। ताप के दिनों में ताप नहीं है। पिछले साल जब यह मनहूस बीमारी आई तो ऋतु कितनी सांकेतिक हो गयी! कभी

आंधी। कभी बारिश, कभी ओले। मई तक मौसम खुशगवार रह गया। पारा ऊपर नहीं चढ़ा। लोग उन बरसातों, मेघ गर्जनाओं और अतिशय ओलावृष्टि से कुछ आतंकित भी हुए।

ऊपर से भूकम्प ने उन्हें भयाक्रांत किया किन्तु चैत–बैसाख की गर्मी में बसंत का अनुभव एक विशेष कृपा ही है। भले ही वह उल्टबाँसी या बुरा माना जाता हो। भले ही उसमें किसी अनिष्ट की छाया लहराती हो। किन्तु मैं उसे भिन्न अर्थ में प्रकृतिदेवी का प्रेम मानता हूँ। जब मनुष्य अकारण ही इतना ताप भोग रहा, इतनी मृत्यु, आशंकाओं और बंधनों हाहाकारों से घिर रहा तो प्रकृति अपना ताप कम कर रही। उसे किसी अदृश्य शक्ति–सत्ता की थपकियाँ ही समझिए। मृत्यु के दहन के बीच आकाश से झरते आत्मीयता के ओसकण!

आश्चर्य इस वष्र के मौसम पर भी होता है। इस साल मौसम विज्ञानियों ने मार्च के प्रारंभ में प्रचण्ड गर्मी का संकेत किया था। लेकिन अब तक ग्रीष्म नही है। हर दूसरे दिन बारिश होती है। बादल घिर आते हैं ठंडी हवा चलती है। विज्ञानी इसके कारण बताएंगे। मैं इसे किसी अनिष्ट का इशारा नहीं मानता। बल्कि मेरा मानना है कि पहले से तप्त और दुखी मानव ह्रदय को प्रकृति सहला रही है। मेरा मत है कि उस ऋतुकर्ता ने अपनी प्रखरता को मद्धम कर लिया है। तर्कशास्त्री और महाज्ञानी लोग मेरी इन बातों को पढ़कर हँस सकते हैं। मैं उन्हें विशेष महत्व नहीं देता। मैं तो केवल यही जानता हूँ कि आपदा में भी ईश्वर का आशीष बरस रहा है। चाहे जिस रूप में बरसे।

जब देखने, घूमने जीने को कुछ न रह गया हो तो यही सही। आदमी अपनी छत, बालकनी और जंगल के पास खड़ा होकर ठंडी हवा को छूता तो है। तमतमाए हुए दिनों में कुछ तो शीतल है। उसे ही संहर्ष स्वीकारता, ग्रहण करता है। यही अनन्य कृपा है उस महाशक्ति की.....।

***

पांच

वज्रपात!.....नहीं रहे रोहित सरदाना.....।

सोशल मीडिया पर यह पहला ऐसा समाचार था, पढ़ते हुए उसे काठ मार गया। अगले ही पल उसे लगा....यह सच नहीं हो सकता। नहीं.... नहीं! यह तो झूठ है! कोरी अफवाह! जिस व्यक्ति ने सबसे पहले इस दुखद और स्तब्धकारी समाचार को अपनी फेसबुक वॉल पर लगाया था.....भयावह खबर को पोस्ट किया था, वह आम तौर पर झूठी और सनसनीखेज बातें नहीं लिखता। तो फिर....! वह तनिक नीचे स्क्रॉल करने लगा। अगले पांच मिनटों में उसने पच्चीस लोगों की वॉल पर इस अविश्वसनीय समाचार को पढ़ा। सोशल मीडिया का लगभग हर चौथा व्यक्ति न मानते हुए भी जैसे मान रहा हो कि मशहूर न्यूज़ एंकर रोहित सरदाना की कोविड से मृत्यु हो गई।

माधव ने फोन परे हटाकर समाचार चैनल ऑन किया। वह टीवी नहीं देखता। इन दिनों तो टीवी ऑन करते हुए जी घबराता है। जिस बड़े समाचार चैनल से रोहित सम्बद्ध था वहाँ कोविड के दूसरे समाचार चल रहे थे। कोरोना की आम खबरें ऊपर–नीचे दौड़ रही थीं। इतने लाख नए संक्रमण.....इतनी मौतें.....इतने ठीक हुए! वही श्मशान.....वही लपटें.....वही व्यवस्था का रोना। अचानक लाल पट्टी में ब्रेकिंग न्यूज लिखा हुआ उभरा.... उसकी नसें खिंच गईं। वह भी कोविउ से जुड़ी आम खबर निकली। रोहित के गुजर जाने की कोई सूचना नहीं थी। माधव ने अपने दिल को हल्की सी तसल्ली दी। भला...यह कैसे संभव है कि रोहित का अपना ही समाचार चैनल उसकी अकाल मृत्यु पर चुप रह जाये! उसने टीवी बंद कर दुबारा फोन उठा लिया। इस बार फेसबुक की हर वॉल इस मनहूस समाचार से पुती हुई थी कि रोहित की मृत्यु हो चुकी है। इस त्रासद समाचार के गलत होने की संभावना समाप्त होती जा रही थी।

माधव ने अपने जूनियर साथी रमेश को फोन मिलाया। आम तौर पर रमेश जब काम में फँसा होता है तो फोन नहीं उठाता। देर शाम या अगली सुबह कॉल बैक करता है पर आज दो घंटियों में ही उसकी बुझी सी आवाज आई.....हाँ सर.....

''यह क्या पढ़ रहा हूँ भाई! इसमें कितनी सच्चाई है?''

''हाँ सर, ''रोहित जी नहीं रहे। अभी पांच सात मिनट पहले ही मैंने कन्फर्म किया है। कोविड से तो ठीक हो गए थे। सुबह ह्रदयाघात हो गया। दो छोटी–छोटी बेटियाँ हैं। अनर्थ हुआ....।''

माधव की धूमिल पड़ती हुई आशा ढह गई। उसने फोन पर बात खत्म करने का कोई शिष्टाचार भी नहीं निभाया। फोन ठंडा पड़ गया। एक विचित्र सी खाली–खाली शांति उसे घेर गई। सांस फूलने लगी। मन को भय ने कस लिया। भय इससे पहले भी हुआ था.....किन्तु उसकी तीव्रता इतनी रौद्र.. .....निरंकुश नहीं थी। इस बार वह उसे सिहरा गया। जीवन का कोई मोल ही नहीं रहा! न मृत्यु की कोई गारिमा रही!

कुछ देर तक एक उद्विग्नता उसे घेरे रही। मानों.....कोई आवाज भीतर से उठ रही हो कि यह सब जो देख–सुन और पढ़ रहा हूँ.....एक झूठ है! सभी लोग झूठे साबित होंगे! कुछ देर तक वह जड़वत रहा। शिथिलता उसे घेरे रही। धीरे–धीरे बीते लम्हें उमड़ने लगे जब न्यूजरूम में उन दोनों का मौन अभिवादन हुआ करता। वे एक–दूसरे से कम बातें करते। बहुत कम। केवल समान आवृत्तियों की हँसी उन्हें जोड़े रखती थी। उसी में एक–दूसरे के प्रति सहज सम्मान और प्रेम निहित थे। देर शाम वह लिखने लगा–

फोन उठाते हुए घबराहट होती है। कहीं...फिर से वही खबर तो नहीं! उठाता हूँ तो वही पढ़ने को मिलता है। हजारों की भीड़ में से किसी न किसी को कोई अपना रहा होता है, जा चुका होता है। कितने मित्र, सोशल मीडिया के परिचित, उन परिचितों के प्रिय और फिर अचानक सबका परिचित–कोई हीरो सरीखा युवा चला जाता है। उसकी छवियाँ उमड़ने लगती हैं। मन धक्क सा कर जाता है। हाय.....निष्ठुर मृत्यु! और जो मृत्यु सामान्य दिनों में गर्वीली होती है, वह महामारी में यूँ ही भटकती फिरती है। किसी के भी द्वार दस्तक दिये जा रही––हैरत यह कि वह अपने साथ जिसे ले जाती है, उसके जाने के चिह्न कितनी जल्दी–जल्दी मिटने लगते हैं। एक दिन.....दो दिन। बस इतना ही! फिर आदमी अपने काम में लग जाता है।

बहुत सख्तजान है आदमी। या, यूँ कहिए कि जीने की तलब ऐसी कि किसी के मरने की तड़प रहती ही नहीं। कितने तो चले गए यहाँ से। इन बीस–पच्चीस दिनों में सदमों के समाचार ही पढ़े। सभी एक–दो दिन की श्रद्धांजलियाँ पाकर रह गए। न जाने कितनों के ह्रदय में उनकी स्मृतियाँ रही हों! माँ, पिता, पत्नी, संतान, परिजनों के अतिरिक्त कोई और लंबे समय तक नहीं रोता।

मैंने साफ अनुभव किया है कि किसी का जाना घंटों, और कुछ मुट्ठी भर दिनों का दुख है। शायद वह भी नहीं। विपिन चौहान एक दिन अपने होते रहने में न रहे। दो–चार दिन लोगों ने याद किया। फिर.....किसी ने पलट कर नहीं पूछा। वह हमारी याद से उतर कर चुपचाप चले गए। विपिन कहाँ हैं, कोई नहीं जानता। घरवालों को परवाह होगी। हमें तो नहीं है।

रोहित सरदाना मर गया! किसी ने सोचा था? यह कैसा अनर्थ हो रहा। इसका प्रदाह हमें कब तक जलाएगा? एक–दो दिन, सप्ताह भर! यदा–कदा जब चैनल देखेंगे तो बहस–मुबाहिसे में उसकी कमी खलेगी। रोहित के हिस्से की सामाजिक स्मृति इतनी सी ही होगी। यकीन कर लीजिए। वह अपने निकटतम परिजनों के लिए जीवन भर का दुख होकर रहेगा। यहाँ यदा–कदा चमका करेगा। अरे हाँ, रोहित था!

यह गुलमोहर एक बरस से बसंत की प्रतीक्षा कर रहा। पिछले बरस भी यह लाल होकर रोया था। इस साल तो दहक रहा है। वैसे ही अर्थहीन दिन हैं। वैसी ही कान्तिहीन रातें। पिछले तेरह महीने से ऋतुएं बदलकर भी नहीं बदली। सुबह–शाम सब व्यर्थ। अब मन नहीं लगता। मन मानता भी नहीं। घर में रहा नहीं जाता। जी पत्थर का हुआ जाता है। रोहित भाग्यवान था कि उसके लिए रोनेवाले वाले लाखों करोड़ों हैं। यहाँ कितने तो स्पर्श तक को तरस गए.....सहज छुअन से दूर रह गए और जीवन अपने वज्रहृदय को लिए आगे बढ़ गया। रोहित के लिए भी वह नहीं रुकेगा। किसी के लिए रुका है भला....?

हाँ, रोहित के हिस्से में बड़े आँसू आए हैं। उस धार में मेरी आँखों में उमड़ी कुछ बूँदें भी मिली हुई हैं।

***

छह

उसका फोन बज रहा था। अमित का फोन था। वह अलीगढ़ से पच्चीस तीस किलोमीटर दूर एक कस्बे में रहता है। उसका पुराना साथी है।

''हैलो.....''

''प्रणाम सर''

''प्रणाम भाई। कैसे हो।''

''क्या बताऊं....बहुत बुरा हाल है। समझ में नहीं आता कि क्या होने वाला है।''

माधव की चिन्ता दुहरी हो गई–समझा नहीं...!

''कैसे समझाऊं सर! हर दूसरे–तीसरे घर में लोगों को सर्दी–खांसी, बुखार हो रहा। मगर लाग मान नहीं रहे। जिसे देखो वही बाजार में घूम रहा। लॉकडाउन है बंधन कोई नहीं मानता। दवा की दुकानों पर पैरासिटामॉल नहीं मिलता। यहाँ से अलीगढ़ तक यही कहानी है। पंद्रह रुपये की दवा का पत्ता लोग पचास रुपये में बेच रहे हैं। गुटखा और सिगरेट बेचने वालों तक की मनमानी चल रही है। सरकार कुछ नहीं करती।''

''सरकार कुछ नहीं करती.....यानी.....! क्या तुम मानते हो कि सरकार को हर शहर, हर कस्बे के गली–नुक्कड़...दुकानों पर एक पुलिस वाले को तैनात करके रखना चाहिए। क्या नागरिक जिम्मेदारी कुछ नहीं....मनुष्य का कर्त्तव्य कुछ नहीं? वह भी इस आपत्काल में!''

''नहीं सर.....मैं मानता हूँ कि यह लोगों की बदमाशी है....लेकिन सबकुछ तो पुलिसवालों के सामने हो रहा है। वो देखते हैं.....रोकते नहीं।''

इसके बाद पाँच सात सेकेंड की चुप्पी छा गई। अमित फिर बोल पड़ा–''आप जानते हैं यहाँ सरकार के लोग आते हैं। स्वास्थ्यकर्मी आते हैं। आँगनवाड़ी से महिलाएँ आती हैं। ये लोग घर–घर जाकर पूछते हैं कि आप के परिवार में कोई बीमार तो नहीं...अगर है तो जाँच करवा लीजिए। लोग झूठ बोल देते हैं। दो–तीन लोग घर में बीमार पड़े हैं लेकिन टेस्ट नहीं करनवाना है। न जाने क्यों टेस्ट से डर लगता है। अगर कोविड पेशेंट हो गए तो दुकान बंद हो जाएगी।''

माधव ने बीच में टोका–क्या वो वैक्सीन ले रहे हैं?

''पहले तो बहुत कम लोग तैयार हो रहे थे.....अब थोड़ भय बढ़ने लगा है तो लगवाने लगे हैं।''

''अब तुम ही बताओ कि इस देश में बीमारी से बचाव भला कैसे संभव है। लोग सरकारी कर्मचारियों.....हेल्थ वर्कर्स के सामने झूठ बोलते हैं। वैक्सीन नहीं लेते। वही लोग जब गंभीर रूप से बीमार होकर हक्के–बक्के होंगे तब सरकार को कोसेंगे कि हमारी जान नहीं बचाई गई। हमें अस्पताल नहीं मिला....हमें बिस्तर नहीं मिले.....ऑक्सीजन नहीं मिली।''

माधव ने बातचीत की दिशा बदल दी–''क्या तुम मानते हो कि इन सब बातों का अगले बरस होने वाले चुनावों पर भी असर होगा?''

''बिल्कुल हो सकता है। लोगों में बड़ा गुस्सा है इस अव्यवस्था के प्रति।''

''कैसी अव्यवस्था?''

''वही जो अभी कायम है। किसी चीज की गारंटी नहीं है। दवा तक नहीं मिलती।''

''और लोगों की अपनी जिम्मेदारी? जिन लोगों ने बाजार से दवा गुम करदी है या बेशर्मी से उन दवाओं को चार गुनी कीमत पर बेच रहे हैं.....वो कौन हैं? क्या वो उत्तरप्रदेश के नागरिक नहीं हैं.....? तो इसमें सरकार का अधिक दोष है या लोगों का?''

माधव समझ गया कि इस बातचीत का कोई तुक नहीं है। उसने कहा–''तुम अपना ध्यान रखो भाई। घर में माँ–पिता भी हैं। छोटे–छोटे बच्चे हैं। बाजार या भीड़–भाड़ में तो नहीं जाते?''

''नहीं.....नहीं। मैं तो कभी–कभार निकलता हूँ। हमेशा टाला भी नहीं जा सकता।''

''ख्याल रखो अपना। देखो.....शायद मई के मध्य तक हालात बेहतर जो जाये।''

उसी शाम को माधव ने सोशल मीडिया पर एक दूरस्थ मित्र का संदेश पढ़ा। आदित्य नाम के उस व्यक्ति ने नैराश्य में सहायता मांगी थी। उसके भाई की सेहत बिगड़ रही थी। ऑक्सीजन का स्तर नीचे गिर रहा था। वह उसे अस्पताल ले जाना चाहता था। अपील के नीचे आदित्य ने अपना फोन नंबर भी लिख रखा था।

माधव ने संदेश पढ़ा। उसका मन बैठ गया। जिधर देखो.....हताशा ही हताशा है। बीमारी.....अनिश्चितता.....अविश्वास.....मृत्यु और उसका भय। उसने कुछ....हिचकते हुए आदित्य को फोन लगाया।

''हैलो.....कौन''

''मैं माधव। आपका फेसबुक मित्र।''

उधर से कोई आवाज नहीं आई।

''आपके भाई का ऑक्सीजन लेवल अभी कितना है?''

''पिच्यासी''

''ओह.....लेकिन आपको घबराना नहीं चाहिए। घबराहट से बीमार आदमी की मुश्किलें बढ़ जाएंगी। मैं कोई उपदेश नहीं दे रहा। जब तक आपको अस्पताल में जगह नहीं मिलती या जब तक आप जगह के लिए प्रयास कर रहे हैं....घर में ही कुछ उपाय करें। ऑक्सीजन का स्तर बढ़ जाएगा। मैंने एक प्रसिद्ध डॉक्टर का वीडियो देखा है।''

आदित्य के पास सलाह सुनने के सिवा कोई चारा नहीं था। माधव ने उसे समझाया कि भाई को पेट के बल लिटाकर छाती के नीचे दो तीन तकिए लगा दे.....पेट के निचले हिस्से में भी एक तकिया हो और नीचे पाँव में टखने के पास एक तकिया। यह स्थिति प्रोन वेंटिलेशन कहलाती है। जिसके सहारे कई बीमार लोगों का ऑक्सीजन स्तर बढ़ाया जा चुका है।

फोन बंद हो गया। माधव के मन में उथल–पुथल मची हुई थी। लाखों संक्रमित लोगों की भीड़ में जान–पहचान के लोगों का मिलना –तिना सहज हो गया था। पर एक बात की उसे प्रसन्नता हुई कि वर्चुअल मित्रता के इस युग में लोग पास–पड़ोस के अतिरिक्त एक विशाल जनसमूह से सहायता की अपील कर सकते हैं। ट्विटर या फेसबुक पर मांगी गई मदद अक्सर सफल रहती।

दो घंटे बाद उसने आदित्य को फिर से फोन लगाया। इस बार किसी स्त्री ने फोन उठाया। वह रुआंसी थी। माधव ने कुछ चिंतित होकर पूछा; ''अभी उनका ऑक्सीजन लेवल कितना है?''

''अट्ठासी है..... ''

''अच्छा फिर तो कुछ बढ़ा है।''

स्त्री रोने लगी।

''नहीं, साँस लेने में तकलीफ हो रही है। अस्पताल ले जा रहे हैं।''

माधव का मुँह सिल गया। इसके आगे वह उपदेश देने की हालत में न था। इस संवेग और शंका के समय भला कोई किसी से यह कैसे कहे कि आप नाहक परेशान हो रहे! अस्पताल ले जाने की ज़रूरत नहीं है! जिस पर बीतती है.....वही जानता है! कितने युवाओं की मृत्यु हो गई और कितने तो बूढ़े–बूढ़े इसे मात देकर उठ खड़े हुए। इस संकटापन्न धुंधकाल में ज्ञान और धीरज का उपदेश नहीं सुहाता। आदित्य के भार्ठ को अस्पताल में बिस्तर मिल गया....यह क्या कम संतोषप्रद है!

***

सात

अप्रैल के अंत और मई के शुरू में ही महामारी देश को ढंक गई। ठीक एक बरस पहले जैसे सभी राज्यों में इसने पांव पसार लिए थे। अंतर केवल इतना था कि इस बार रोगियों और मृतकों की संख्या पिछले बरस के मुकाबले कहीं अधिक थी। जिस प्रचण्ड आकाशीय पिण्ड के वेग से कोविड की दूसरी लहर ने फुफकार भरी थी.....उसे देखते हुए कुछ सकारात्मक कहने सोचने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती तथापि उसने यह अनुभव किया कि उत्तर के कई राज्यों में वह अपना सर्वाधिक विष उगल चुकीहै। उत्तरप्रदेश, दिल्ली.....मध्यप्रदेश.....जैसे राज्य संभलने लगे थे। संक्रमित लोगों की संख्या बढ़ नहीं रही थी। कम हो रही थी। रोग से मुक्त होने वाले लगातार बढ़ रहे थे। दक्षिा के कई राज्यों में कोविड का आतंक अधिक बरसा था।

बिहार–बंगाल में भी मरीज बढ़ रहे थे। ऐसा लगता था कि यह चरम पर पहुँचने ही वाला है या पहुँच चुका है। ऐसे दिनों में देश के साथ षड़यंत्र करने वाली शक्तियों का सामने आना विस्मयकारी था! लेकिन सच तो यही था कि ऑक्सीजन.....सिलेंडर छुपाने वाले.....दवाओं की कालाबाजारी करने वाले.....इलाज के नाम पर ठगने वाले.....सरकार को नीचा दिखाने वाले उजागर हो रहे थे। देश एक साथ कई स्तरों पर युद्ध लड़ रहा था। इस बात को भी बल मिल रहा था कि वायरस का दूसरा संक्रमण सामान्य नहीं है। उसके पीछे कोई भयावह योजना लंबे समय से काम कर रही थी। सुख और संतोष इस बात का था कि मनोबल गिरा नहीं है। एक अदम्य जिजीविषा..... अपराजेय प्राणशक्ति.....है। एक पवित्र हठ कि इस शैतान को परास्त करना है। जीने की इच्छा....मुक्त होकर रहने का मौलिक अधिकार तो ईश्वर प्रदत्त है.....उसे कौन छीन सकता है! मृत्यु और जीवन तो धरती–आकाश की तरह हैं। दोनों मिलकर भी कहाँ मिलते हैं! दोनों एक दूसरे को छूते हुए भी दूर–दूर हैं। इस जगत के होने तक दोनों को होना होगा। किसी एक की उपस्थिति कहाँ हो सकती है! कभी नहीं.....

मध्य मई से कुछ पहले ही राहत की एक हौली सी हवा बह चली। संक्रमण कम होने लगा। किसी महामारी को समझने के लिए पूरी धरती का पैटर्न जानना जरूरी नहीं होता। अपने आसपास उसके व्यवहार से भी हम बूझ सकते हैं कि ताप चढ़ रहा है या कम हो रहा। माधव ने एक बात को महसूस किया था कि उसकी सोसाइटी में नए लोगों को यह रोग नहीं हो

रहा। पंद्रह दिनों पहले इस से बाहर परिवारों ने कोविड से पीड़ित होने की सूचना सोसाइटी के ग्रुप में दी थी। अब लगभग सभी ठीक हो चुके। बीते दिनों में केवल एक नया मामला आया था। यह अति स्थानीय ग्राफ था। लघुतम भूगोल का मानचित्र। फिर भी ग्राफ एक सूचक तो था ही। वह सूचक सार्वभौमिक सत्य न हो.....उसके आंशिक सत्य होने से कौन मना कर सकता था।

माधव जब भी बाहर निकलता.....अपने आसपास को सचेष्ट होकर देखता। दवा की दुकानों के बाहर खड़े लोग....वो किस तरह की दवा माँग रहे हैं। या मदर डेयरी और किराने की दुकान के बाहर खड़े लोगों से भी वह इलाके का चित्र गढ़ सकता था। उसे एक साधारण सा सामाजिक दृश्य या वार्तालाप यह सूचित कर जाते कि बीमारी चढ़ रही है या उतार पर है। इन दिनों उसके चढ़ने के संकेत नहीं थे। त्राण की एक छआंक भी कुछ कम है क्या? मगर इस महाज्वार का जल उतरते–उतरते लंबा समय खप जाएगा।!

कोविड पर भारत की वर्तमान स्थिति का आकलन करना आसान नहीं। ठोस तो कुछ कहना ही मुश्किल है। कुछ राज्यों में यह नीचे जा रहा। ऐसा लगता है जैसे महाराष्ट्र.....गुजरात.....मध्यप्रदेश.....उत्तरप्रदेश..... दिल्ली में इसका सबसे बुरा दौर बीत चुका है। करीब दस दिनों से यहाँ उतार पर है। लेकिन दस–बारह राज्यों में मरीज बढ़ रहे हैं। वहाँ भी बाढ़ हाहाकारी नहीं है। चिन्ताजनक अवश्य है। खास कर दक्षिण के कुछ राज्य। ऐसे हालात पर कोई क्या अटकलबाजियां करे। कल का अंदाजा आज गलत साबित हो जाता है। सबसे बड़ी कठिनाई यह कि इतनी विशाल संख्या में संक्रमण हो चुका है कि उसे खत्म होते–होते भी अरसा बीत जाएगा। भीषण जलप्लावन जब थम जाता है तो गांव–जवार के खेत–खलिहान बाग बगीचे पानी से भरे रहते हैं। दिनों बाद जब वे सूख भी जाते हैं तो सड़ांध रह जाती है।

मध्य मई तक हर दिन बीमार पड़ने वालों की संख्या तीन–सवा तीन लाख रह गई। अब प्रतिदिन संक्रमित होने वाले तकरीबन एक लाख तक कम हो गए थे, जो कि निस्तार का पहला चरण था। शहरों.....राज्यों से आने वाली रोती–कलपती तस्वीरें कम दिखाई देती थीं। अस्पतालों में भीड़ छंटने से प्रबंधन कुछ सुधर गया था। यद्यपि मृत्यु की रेखा अब भी ऊर्ध्वाधर थी। माधव इस ग्राफ को नियमित देखता....कुछ तसल्ली करता। तभी.....कोई डरानी छाया उसे कँपा जाती।

नहीं रहे चण्डीदत्त.....! किसी ने चण्डीदत्त के चले जाने का दुखद समाचार दिया था। साथ में उसका क्लान्त....पीला....जर्द चेहरा लगा दिया था। मृत्यु से विभीत.....जैसे अंतिम सांस से पहले व्यक्ति सिहर उठा हो। साँस की उस महीन डोरी को थाम लेने के लिए कातर नयन उसने याचना की हो! पर....। चण्डीदत्त की मृत्यु का समाचार पढ़कर वह निश्चेष्ट हो गया। मानों..... कह रहा हो.....कौन सुरक्षित है भला? माधव उस से उतना ही परिचित था.... जितना शहरी सोसाइटी में रहने वाले लोग एक–दूसरे से परिचित होते हैं..... पर उस परिचय की औपचारिकता या दोनों के बीच सतत पसरी रहने वाली निःशब्दता उतनी अकेली....या सिमटी हुई नहीं थी कि मृत्यु भी उसका ध्वंस न कर सके। निश्चय ही मृत्यु ने उसका बंधन छिन्न कर डाला था। सारे आंकड़े.....ग्राफ और संक्रमण घटने के समाचार निरर्थक रह गए। यही अनिश्चितता....भीति आशंका और व्याकुलता फिर से घिर आईं आगे.....न जाने कौन!

***

आठ

मधुकर का फोन आया था। उस से बातचीत के दौरान पता चला कि उसके दफ्तर में पचास से अधिक लोग बीमार हैं। हर नया दिन एक परीक्षा है। कठिन परीक्षा। दो–दो मास्क लगा कर नौ घंटे कार्यालय में रहना पड़ता है। हर पल एक खतरा मंडराता रहता है। कौन जाने.....जो पास से गुजरा है. .....वह संक्रमित नहीं है!

''भैया.....मैं रामचंद्र जी का नाम लेकर दफ्तर आता हूँ। घर में अकेला सोता हूँ। पत्नी के साथ दो छोटी–छोटी बेटियों की चिन्ता घेरे रहती है। यहाँ दम घुटता है। दिन भर वही अस्पतालों के विजुअल.....रोना.....कल्पना..... शिकायतें सुनना यही सामने होता है। इनसे छुटकारा कहाँ है! रिपोर्ट तैयार करनी ही होती है। सोशल मीडिया से मैंने खुद को दूर कर लिया है। घर में टीवी बन्द रहता है। इतनी नकारात्मकता कौन झेले? जो बीमार नहीं है.....वह भी बीमार हो जाएगा।''

माधवको यह अनुभव हुआ कि इन दिनों समाचार चैनल में काम करना कितना मुश्किल है। वह इसी लोक में लगभग बीस साल रह कर आया था। उसे टीवी न्यूज़ चैनल की संस्कृति समझने की जरूरत नहीं थी। वह तो उसका अस्थिमज्जा तक छू चुका था। परन्तु यह भी एक सत्य ही है कि दर्जनों हादसों.....तूफानों.....युद्ध की स्थितियों.....आतंकी हमलों के दौरान भावनात्मक उद्वेग से गुजरा चुका माधव अपने टीवी पत्रकारिता जीवन में इतने लंबे त्रासद समय से अनछुआ रह गया था। उसके वहाँ रहते–रहते ऐसा विकट समय नहीं आया। कभी नहीं।

''तुम चिन्ता न करो मधुकर! तुम्हें कुछ नहीं होगा! सावधान तो तुम हो ही।''

''वैसे.....अब तो दफ्तर में हालात पहले से बेहतर होंगे?''

''हाँ भैया। पहले जो लोग बीमार हुए थे....उनमें से ज्यादातर क्वारंटीन हैं। कुछ तो ठीक होकर काम पर वापस लौट भी आए हैं। इधर इक्के–दुक्के लोग ही संक्रमित हुए हैं।''

मधुकर उसका जूनियर....साथी था। टीवी चैनल छोड़ने के बाद भी जिन गिने–चुने लोगों से उसकी मित्रता अचल रह गई उनमें से एक वह भी था। बल्कि मधुकर उन लोगों में शुमार था जिनसे उसका स्नेह भ्रातृवत रहा।

भारतीय न्यूज़ चैनल की कामकाजी संस्कृति में नाटकीयता उसका अविभाज्य अंग हो चुकी है। उस नाटकीयता को देखना–झेलना बड़े धीरज का काम है। कोरोना की दूसरी लहर के इन दिनों में भारत का एक बड़ा जन समुदाय टीवी इंडस्ट्री की नकारात्मक रिपोर्टिंग से क्षुब्ध हो उठा। लोग बहुत नाराज भी हुए। लेकिन इस सच से कौनमना कर सकता था कि आपदा के समय उनकी जाँचना भी खूब हुई। टीवी इंडस्ट्री के कितने ही लोग इस कठिन समय में चले गए। उनमें से कोई तो चालीस की चौहद्दी भी न छू सके थे। पिछले वर्ष कुछ चैनल्स में एक तिहाई लोगों को घर से काम करने की छूट मिली थी। इस साल उन्हें दफ्तर आना पड़ा। रिपोर्टरों के लिए वह छूट मिली थी। इस साल उन्हें दफ्तर आना पड़ा। रिपोर्टरों के लिए वह छूट कभी संभव ही नहीं थी। इस बार डेस्क वालों के लिए भी मुनासिब न रही। बड़ी संख्या में पत्रकार बीमार हुए।

मई के मध्य में माधव और चंद्रप्रकाश की भेंट हुई। दोनों कुछ शंकित मन से मिले थे। मिलने के कुछ समय बाद शंका जाती रही। दोनों जानते थे कि उन्होंने इन दिनों किसी तरह की स्वच्छंदता या छूट नहीं ली है। दोनों की मुलाकात अपने काम क सिलसिले में हुई थी। पर अब तो कोविड हर बात.....हर विषय का अतिक्रमण करता था। उसकी घुसपैठ कहीं भी इतनी सूक्ष्म....सहज होती कि पुराना सब दफन हो जाता.....।

''मेरे पिता स्पेनिश फ्लू की कुछ कहानियां सुनाया करते थे। उन्होंने तो वह दौर नहीं देखा था, दादा ने देखा था। दादा ने उन्हें जो सुनाया..... वही हमने पिता के मार्फत जाना है''–चंद्रप्रकाश बोला।

''वह तो बड़ा भयंकर समय था। पूरी दुनिया में सात करोड़ से अधिक मौत हो गई थी।''

''माधव जी.....हमने तो किस्से सुने। इतिहास में पढ़ा। जिन्होंने देखा और भोगा... उनके हिस्से की दहशत कोई कैसे कहे? गांव के गांव साफ हो गए थे। आज गांव में एक–दो मृत्यु हो रही तो कोहराम मच गया है।

''पिता जी कहते हैं कि तब हमारे गाँव देहात में या लगभग पूरे उत्तरप्रदेश में ही उसे बॉम्बे बुखार कहते थे।''

''बॉम्बे बुखार यानी....?''

''वह बीमारी भी तो कोविड की तरह पहले बाहर विदेश में फेली। वहाँ से भारत आई। तो उन दिनों अधिकांश लोग जो बाहर से भारत आते थे..... बंबई पहुँचते थे। बंबई से वे अपने–अपने गंतव्य स्थानों को जाते। बंबई में भी

उसकी शुरुआत पहले विश्वयुद्ध के सिलसिले में वहाँ आने वाले सैनिकों से हुई। इसीलिए भारत में स्पैनिश फ्लू को बॉम्बे बुखार कहा जाता था। पिता जी ने बताया कि उन दिनों बॉम्बे या दूर के शहरों से गाँव आने वाले लोगों को कुछ दिनों तक गाँव के भीतर प्रवेश नहीं मिलता था। उन्हें बाहरी इलाके के किसी परित्यक्त भवन या विद्यालय में रहना होता था। सप्ताह–दस दिन तक वहाँ रखने के बाद जब उन्हें पूरी तरह से स्वस्थ पाया जाता तो गाँव में घुसने की आज्ञा मिलती। जिसे हम दूसरे अर्थों में आज क्वारंटीन कहते हैं।''

''निश्चय ही उन दिनों स्पेनिश फ्लू का भय विकट रहा होगा। न इलाज....न दवा.....वैक्सीन तो सपने में भी नहीं। जिसे हुआ.....उसे साफ ही समझा जाता होगा।'' माधव ने मानों हामी भरी।

''आज विश्व लंबे समय के बाद किसी महामारी का सामना कर रहा है। एक ऐसी महामारी जिसका वितान तीन चौथाई संसार तक है। जिसने बड़े से बड़े महारथी मुल्क को पस्त कर डाला है। जबकि उसकी मारक क्षमता बीते कुछ वर्षों में आए सार्स.....स्वाइन फ्लू और इबोला जैसे वायरस से कम है। इस बीमारी के प्रति मेरे मन में शंका अब तक गहरी है। मैं इसे परिस्थितियों से पैदा होने वाली बीमारी नहीं मानता। मुझे हमेशा यह लगता रहेगा कि इसे बनाया गया है।''

चंद्रप्रकाश ने सिर हिलाया; ''यह तो उस दिन भी मैंने कहा था। आपकी शंका निर्मूल नहीं है। इसका पैटर्न अजीब है। और यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कोविड का कहर उन्हीं मुल्कों में सर्वाधिक है.....जिनके व्यापारिक.....आर्थिक हित चीन से टकराते हैं।''

''जीवन और खुशहाली के मानदण्डों पर हमसे कहीं पीछे छूटे हुए देशों में आज कोविड नहीं है। है भी तो मुट्ठी भर। ये वही देश हैं....जो भारतीय भूगाग का हिस्सा हुआ करते थे। इन देशों में भारत से भिन्नता नहीं। हैरत की बात यह कि समान वातावरण के देशों में इस वायरस का व्यवहार अलग है। सर्वथा अलग भूगोल पर यह काल की तरह टूटा है।''

चंद्रप्रकाश ने विषयान्तर किया–अब दिल्ली में लॉकडाउन शायद खत्म हो जाये! अधिक से अधिक एक सप्ताह और खिंचेगा। मुझे तो यही लगता है। फिर क्या करें हम?

''क्या हमें अपने वर्क स्टेशन पर दुबारा लौट जाना चाहिए?''

''हाँ, हाँ.....क्यों नहीं। हमारा वैक्सीनेशन हो चुका है। एडिटर साहब भी पच्चीस–छब्बीस साल के हैं तो उनका भी हो चुका होगा। अगर उन्होंने सुई नहीं लगवाई हो तो आज ही रजिस्ट्रेशन के लिए कहे देता हूँ। घर से काम नहीं होता। दूसरी जरूरी बात यह कि उसके पास अच्छा एडिट सिस्टम नहीं है। जिस पर वह इन दिनों काम कर रहा.....उसकी बहुत सीमाएं है।''

चंद्रप्रकाश नोएडा के सेक्टर तिरानवे में रहता था। बीते दिनों उसकी सोसाइटी में दर्जनों कोविड मरीज थे। पास के ही अस्पताल में कई लोग भर्ती भी हुए। कुछ घर में ही क्वारंटीन होकर ठीक हो चुके थे। बीच में वह सोसाइटी रेड जोन में आ गई थी। अब हालात बेहतर हो रहे।

बाहर भीड़ नहीं थी। सांझ होने वाली थी। दो–चार लोग नीचे सैर कर रहे थे। तीन सौ परिवारों की सोसाइटी में दो–चार लोग नीचे थे। वह भी ऐसे खुशनुमा मौसम में! रेगिस्तान में गुल खिलने सा करिश्मा हुआ था। बैसाख में ही बहार आ गई थी। माधव ने वहाँ से निकलते हुए अंडर पास का रास्ता लिया। एक्सप्रेस वे पर चढ़ते हुए उसने देखा कि सड़क लगभग सुनसान है। पीछे दो कार नजर आ रही। कुछ–कुछ दूरी पर.....आगे पीछे दो–चार वाहन चलते चले जा रहे हैं। दो ट्रक....एक दो बसें.....आगे–पीछे..... दाएं–बाएं। जीवन के चलायमान होने का आभास भर होता था। आपदा बीते साल से बड़ी थी। मृत्यु के आँकड़े ऊंचे थे.....बंधन का अनुशासन झीना था। लोग कम निकलते थे पर पिछली गर्मियों सा सन्नाटा नहीं था।

पांच मिनट के भीतर वह नोएडा की फिल्म सिटी के पास जा पहुँचा। गर्दन घुमाकर उसने देखने की कोशिश की। वहाँ केवल ध्यानमग्न पेड़.....और उनसे सटी भासमान बिजली की बत्तियां थीं। डीएनडी के लिए ऊपर को मुड़ता सर्पीला पुल किसी सूने पहाड़ी इलाके के खाली–खाली चढ़ाव की याद दिलाता था। एक कार उस पर हौले–हौले सरक रही थी। आगे पुलिस का बैरिकेड लगा था। अब पूछताछ नहीं होती। लोग चले जा रहे थे। प्रशासन ने कर्फ्यू लगाया था मगर यह सुनिश्चित भी किया कि आने–जाने वालों को बेवजह परेशान न किया जाये। उसे याद आया कि लगभग बीस दिनों पहले एक महिला पुलिसकर्मी ने उससे पास मांगा था। फिर किसी ने दुबारा नहीं पूछा।

शहर कैसा लगता है इन दिनों! जहाँ भीड़ भड़क्के.....गाड़ियों की लंबी–लंबी कतारें हों। हर दो–तीन मिनट पर पुल के ऊपर से एक मेट्रो सरकती हुई चली जाती हो....जहाँ लाल बत्तियों से आगे बढ़ते ही ई–रिक्शा... पैडल रिक्शा.....पैदल राहगीर, रेहड़ी पटरी वाले दिख पड़ते हों, समोस....कुल्चे

और रोल वाले कतार में नजर आते हों, जिनके इर्दगिर्द ढेरों लोग मंडराया करते हो....वहाँ सबकुछ ठहरा हुआ है। अचानक सभी गुम हो गए। न लोग..... .....न भीड़ भड़क्का.....न मेट्रो.....न रोल.....कुल्चे और समोसे वाले। न उनके तवे से उठता धुआँ। न आग.....न वो रोशनी। रूप–रस....स्पर्श संवाद से विच्छिन्न केवल रास्ते ही रास्ते.....रूठे–रूठे खाली। उन पर चलने वालों से अलगाए हुए। यह शहर अच्छा नहीं लगता! माना कि भीड़ परेशान करती है! आदमी को जगह चाहिए। जहाँ रेलमपेल कम हो। और.....जब आदमी ही न दिखाई दे तो जगह काटने को दौड़ती है। वहाँ से जाते हुए वह सुस्ताता....आनंदित तो नहीं होता। बस गुजर जाता है.....जल्दी–जल्दी से। वहाँ पहुँच जाना चाहता है जहाँ उसे दो–चार निगाहें मिलती हों। कुछ कदमों की आहट। सीढ़ियों पर धड़धड़ाती चप्पलें। चीखते–चिल्लाते शोर मचाते बच्चे। बोलते–बतियाते बूढ़े। शाम के समय पार्किंग में दफ्तर से लौट कर आने वाले लोग। घूमने–फिरने सैर करने वाले पाँव। उनकी पदचाप। यह सब अचानक उड़ जाये तो आदमी का मन टूटता है।

***

नौ

पंद्रह मई के बाद उसे कुछ छुटकारा मिलता हुआ नजर आया। मन इस विश्वास से भरने लगा कि सबसे बुरा दौर बीत चुका है। लगभग आठ–नौ दिनों से संक्रमित लोगों की संख्या घट रही थी। उत्तरप्रदेश..... मध्यप्रदेश.....छत्तीसगढ़.....महाराष्ट्र.....दिल्ली.....बिहार में उल्लेखनीय बदलाव दिखाई देता था। दिल्ली में असाधारण परिवर्तन आया था। कुछ दिनों पहले ही चौबीस हजार मामलों के साथ.....एम्बुलेंस के चीखते सायरनों से सहमा हुआ शहर अब जरा सुस्ता कर दम लेने लगा था। जैसे उसे वेन्टीलेटर से उतार दिया गया हो। एक दिन पहले वहाँ सात हजार नए मरीज आए। कई अस्पतालों से खाली बिस्तरों की तस्वीरें सामने आई थी।

दक्षिण के कुछ राज्य इस समय संघर्षरत थे। वहाँ भी उसका चरम शायद आ चुका था। तार अपनी सीमा तक खींचा जा चुका था। अब बीमार पड़ने वालों की तादाद कम हो रही थी। लगातार ऊपर को उठने वाला ग्राफ नीचे मुड़ गया था।

इन्हीं दिनो.....बीते दस–पंद्रह रोज की बात है। माधव ने देखा कि विदेशों में भारत की स्थिति पर बड़ी हायतौबा मची है। वहाँ का मीडिया ..... डबल्यूएचओ.....और वहाँ रहने वाले भारतीय....ये सभी मिलकर बहुत शोर मचा रहे। शोर मचाने वालों मे ऐसे भारतीय अधिक हैं जो साल–डेढ़ साल में देश आते हैं। दस दिनों में ही हाँफने लगते हैं। भारत की हवा यहाँ का पानी.... यहाँ का यातायात...यहाँ के लोग....सबकुछ तो उन्हें खराब, लो क्वालिटी, स्तरहीन लगता है। यही लोग जब विदेशों में होते हैं तो इनसे भारत दुर्दशा देखी नहीं जाती! यह कितना बेईमान और दुराग्रहपूर्ण सोच है! कोविड से भला कौन सा देश लड़ सका? अमेरिका से लेकर ब्राजील और पूरा यूरोप घुटनों पर आ गए। जापान जैसे छोटे....विकसित देश का स्वास्थ्य क्षेत्र चरमरा गया। इन छोटे–छोटे और बड़े आधुनिक देशों में जहाँ हेल्थ सेक्टर हमारे मुकाबले बहुत नियोजित.....सुविधासंपन्न है...वहाँ अधिक मौतें हुईं। तब ये शांत रहे। कुछ कर भी नहीं सकते थे लेकिन जैसे ही भारत में स्थिति बिगड़ी ये छाती पीटने लगे। इस तरह के दुख का भी अपना ही आनन्द है! ऊपर से देशप्रेम का प्रदर्शन भी हो जाता है!

अभी कल की ही बात है। विश्वप्रसिद्ध डॉक्टर देवी शेट्टी ने लोगों को समझाने का प्रयास किया था कि बीते एक डेढ़ महीनों के दौरान विशाल संख्या में लोग कोविड से संक्रमित हुए और किस मुस्तैदी से देश ने संघर्ष

किया। डॉक्टर शेट्टी ने कहा था कि अगर इतनी बड़ी संख्या में लोग अमेरिका में संक्रमित होने लगते तो वे भी कुछ नहीं कर पाते। ऑक्सीजन की उपलब्धता....उसकी व्यवस्था के लिए भी उन्होंने सरकार की पीठ ठोकी थी। मगर.....इन बातों का क्या अर्थ? जो आपदा में खिल्ली उड़ाए.....नकारात्मक खबरों से पन्ने भरते जाए दुष्प्रचार करे.....उसी में जनकल्याण समझे, अपनी कॉलर ऊंची करे उनके लिए किसी डॉक्टर का कथन निरर्थक है।

शाम को वह घर से बाहर निकला। उसकी सोसाइटी से तीन–चार सौ मीटर दूर की एक सुरम्य रास्ता है। गुलमोहर और अमलतास के पेड़ वहाँ गलबहियाँ डाले खड़े रहते हैं। जब दोनों साथ–साथ खिलते तो आकाश तले ईश्वर अपने हाथों से रंगोली रचते। इन दिनों वहाँ केवल गुलमोहर खिले हैं। वह भी जरा को प्राप्त हो रहा धीरे–धीरे। फूल कम रह गए हैं। फिर भी शोभा बनी हुई है। कुछ देर तक वह सैर करता रहा.....। वहाँ सरपट सूना था। इक्के–दुक्के लोग थे। यों.....आम दिनों में सुबह–शाम बड़े लोग घूमते–फिरते मिल जाते हैं। इन दिनों भय रेंगता है। वह एक गुलमोहर के सघन पेड़ तले खड़ा हो गया। कुछ सोचता हुआ अपने मोबाइल फोन में लिखता चला गयाः

वृक्ष के नीचे खड़ा हूँ। झिंगुर बोलते है। सामने किसी घर का वातानुकूलन यंत्र आवाज़ करता है। जैसे मनुष्यों की चहलकदमी से सूनी इस जगह को भर रहा हो। बीच–बीच में हॉर्न बजते हैं। फिर वही घुप्प सा सन्नाटा घेर जाता है जिसे कोई अकेली पदचाप तोड़ती है। पुनः हो जाती है वही रिक्ति.....वही मरुमौन। वही असारता का अंधेरा। घिरती बाँझ संध्या। मद्धम–मद्धम उठते तारे। टूटा चाँद। सूना आकाश। छूछा क्षितिज।

वही रिक्ति। इस छतनार के नीचे कैसी विचित्र नीरवता है! शहर का हो–हल्ला कहीं नहीं। नीला आकाश अब बुझता जा रहा। उधर मानस अपार्टमेंट के कोने से लटाक अम्बरान्त गहरे कुएं में उतर रहा। मेट्रो ट्रैक खाली दौड़ती है। ऊपर बिजली के तारों पर बैठे कपोत भी अब जा चुके हैं। जीवन गतिहीन है। उसे अवाक कहना ठीक होगा। ठिठक कर झांक रहा। उसका बाहरी संसार लगभग घरों में सिमट कर रह गया है।

घर वापस लौटते हुए वह कुछ देर तक शॉपिंग प्लाजा में रुका रहा। वहाँ बीस–पच्चीस लोग रहे होंगे। अलग–अलग कोनों में सिमटे हुए। अधिकांश लोग जरूरत की खरीदारी करने आए थे। कुछ सूंघने निकले थे..... उसकी ही तरह कि बाहर क्या चल रहा। कब खुल रही दुनिया। तब तक ढेर सारी बत्तियाँ रोशन हो गई थीं। मगर अवरुद्ध मन का अंधेरा नहीं छंटता था। चुपचुप चलते हुए वह अपनी सोसाइटी के पास पहुँचा। जहाँ कतार में

फास्ट फूड वाले खड़े होते थे। साँझ का भोजन बाजार बड़ा गर्म रहा करता। पिछले छह महीनों से उसमें रवानगी आई। एक झटके में वह फिर से उजड़ गया। उनके तंदूर सीखचों से बंध गए। सारी ऊष्मा उड़ गई। ठेले–गाड़ियां गुम हो गए।

माधव को उम्मीद थी कि इस सप्ताह से दिल्ली का कर्फ्यू शायद खत्म हो जायें। मरीजों की संख्या जो उफनाई थी.....अब घट कर एक चौथाई से भी कम हो गई। पर खतरा टला नहीं। अभी तक वह संख्या हजारों में है। कर्फ्यू खिं गया। कहने को उसे सात दिनों के लिए बढ़ाया गया है। ऐसा लगता है। यह संसार चलता है। चल ही रहा। घर बैठे कुछ दिखाई नहीं देता। मृत्यु के समाचारों में एक–एक जीवन का संघर्ष दब जाता है। किन्तु उसका ताप.....उसकी बेचैनी.....आंतरिक उत्पात.....व्यग्रता को समझना आसान है क्या? हर दिन कमा कर खाने वालों के लिए कैसा भीषण समर है!

***

दस

अठारह मई की सुबह वह विजया के साथ मंदिर गया। विजया ने आग्रह किया था। इन दिनों मंदिर जाना भी लगभग बंद हो चुका है। जनवरी–फरवरी में जब जीवन आम सा होने लगा.....तब वे सप्ताह–दस दिनों में मंदिर चले जाते। यह सिलसिला मार्च तक चलता रहा। अप्रैल से वही कथा दुहरा दी गई। इस बार दिल्ली के लॉकडाउन में मंदिर पूरी तरह से बंद नहीं हुए। सुबह के साढ़े पांच से आठ बजे तक उत्तर का गुरुवायुरप्पन मंदिर खुला करता। वे जब परिसर के पास पहुँचे तो वहाँ कोई भीड़ नहीं थी। प्रांगण में पाँव रखते हुए वे कुछ ठिठक से गए। ध्वजस्तंभ के पास का बरामदा खाली था। स्तंभों से लगी मूर्तियों के ऊपर ढलवाँ छत के ताखों पर एक दो कबूतर फड़फड़ा रहे थे। दोनों दो क्षण के लिए खड़े रहे। काउंटर पर जाकर उन्होंने अर्चना की रसीद कटवाई। धीमे–धीमे चलकर गर्भगृह के भीतर पहुँचे। वहाँ पूर्ण शांति थी। अयप्पा स्वामी की प्रतिमा के पास दीप जल रहे थे। बाईं ओर के बरामदे पर बैठे हुए एक–दो पुजारी पुष्पमाल गूंथ रहे थे। अभिवादन पर मंद–मंद मुस्कुराए। शिव–शिवप्रिया और शिवपुत्र की प्रतिमाएं अपने–अपने मौन में थीं। दर्शनार्थी नहीं। प्रार्थनाएं भी नहीं।

दर्शन कर उन्होने गर्भगृह की प्रदक्षिणा की और बाहर निकल आए। अर्चना का प्रसाद मिलने में अभी समय था। दोनों ध्वजस्तंभ से लगे बरामदे की बाई दिशा में रखी कुर्सियों पर बैठ गए। भोर–वेला की स्वर्णजड़ित स्निग्धता जा चुकी थी.....मटमैला उजाला फैलने लगा था। ऊपर आकाश में छाए मेघ उसका तेज हरते थे। ठंडी हवा बह रही थी। इस मंदिर में वे सैकड़ों बार आ चुके हैं। लेकिन ऐसा सूना.....ऐसा निर्वाक इससे पहले कभी नहीं अनुभव किया। दोनों चुपचाप बैठ गए। माधव की निगाह परिसर के बड़े से वृक्ष पर ठहर गई। उसकी शाखों पर सुबह के समय सैकड़ों पंछी बैठे थे। दूर से देखने पर हिलते–डुलते पातों से लगते। शायद निदाघ में बसंत का आनन्द मना रहे थे। वह उन पंछियों को अनिमेष देखता रहा। सहसा वे शाखों से उड़ गए। एक साथ सीधे ऊपर को गए और त्रिभुज का समबाहु कोण बनाकर डुबकी लगाई। फिर अनुशासन से मुक्त होकर तिरने लगे। कुछ इधर कुछ उधर। कितने ही अकेले। अपने–अपने आकाश में। देखते ही देखते वे उसकी आँखों से ओझल हो गए। न जाने कहाँ गए। मगर कैसा आश्चर्य.... .! उसी वृक्ष की उन शाखों पर अब दर्जनों तोते आकर बैठ गए। मानों दोनों

पक्षी समुदाय के बीच कोई मूक सहमति रही हो। तभी वे दल के दल बनाकर कूदते–फुदकते.....बहते हुए लौटे। अब तोते उड़ चले।

वह मुदित होकर परिंदों की इस विशिष्ट सामाजिकता पर विचार कर रहा था। विजया मंदिर के सूनेपन से व्यग्र थी। उसे भीड़...चमक..... दर्शनार्थियों की आवाजाही.....में ही मंदिर आना अच्छा लगता। वह बुदबुदाने लगी–

''मुझे अजीब सा अनुभव हो रहा।''

''हमारे सिवा कोई नहीं। बस एक अंकल है।''

''हाँ.....लोग मेल–जोल से बच रहे। नियमित मंदिर आने वाले इसलिए नहीं आ रहे हों कि उन्हें अपने पुराने परिचितों से मिलने का भय होगा। मंदिर में भेंट होने पर कतरा कर निकलना संभव नहीं है। मुझे तो ऐसा ही लगता है।'' माधव ने धीमे से कहा ।

हम्म....

कुछ क्षण के लिए चुप होकर उसने चमकती आँखों से विजया को देखा–''तुम्हें यह एकान्त अच्छा नहीं लगता? कैसी निर्मल शान्ति है! उन प्रस्तरखण्डों को छू लो तो देवत्व की अनुभूति हो जाये। कैसा सहज–सुन्दर रूप है। हवा....बादल.....आकाश और यह मौन। तुम्हारा सौभाग्य है कि इस वेला में तुम यहाँ आईं और देवता इस पार्थक्य में तुम्हें देख रहे। और बाहर देखो––सामने उस पेड़ पर बैठे पंछियों का खेल अनूठा है। आज की सुबह वे न जाने किस उत्फुल्लता से भरे हुए हैं।''

विजया ने कुछ व्यंग्य से कहा; ''हाँ.....तुम तो हो ही एंटी सोशल आदमी। तुम्हें तो सब से कट कर रहना है। मंदिर आकर पंछी देख रहे!''

इतना कह कर उसने तमिल में कुछ जोड़ा। जो निश्चय ही उपहास था। माधव थोड़ी तमिल समझता था। लेकिन तब उसने न समझने की चेष्टा से चुप रहना बेहतर जाना। वह जानता था कि तर्क करना किसी संभावित रण की पृष्ठभूमि तैयार करना है। तभी गर्भगृह से बाहर निकले एक पुजारी ने इशारों में कहा कि आकर प्रसाद ले लो।

दोनों तेज़ गति से पुजारी के इंगित स्थल की ओर चल पड़े। प्रसाद लेकर वे बाहर निकले। देवालय का मुख्य द्वार बंद होने वाला था। एक कपाट खुला छोड़ा गया था। उनके बाहर आते ही द्वार बंद हो गए।

ग्यारह

मई के तीसरे सप्ताहांत तक कोविड संक्रमण में आश्चर्यजनक गिरावट दिखाई देने लगी। बीते पंद्रह दिनों में प्रति दिन बीमार पड़ने वालों की संख्या लगभग डेढ़ लाख तक घट गई थी। कुछ दिनों पहले तक सवा चार लाख मरीजों के साथ भारत हाँफने लगा था। अस्पतालों में भीड़ उमड़ी चली जाती थी। वहीं अब हर दिन पौने तीन लाख से कम लोग दर्ज होने लगे। देश में फैली बीमारी का अस्सी प्रतिशत आठ–दस राज्यों में केन्द्रित था। मुख्य रूप से दक्षिण और पूर्व। उत्तर और मध्य भारत तेज गति से आरोग्य की ओर बढ़ रहे थे। मगर.....कौन जानता था कि यह निर्मूल होने की दिशा में जा रहा है! वर्ष के शुरुआती दिनों में बसंत ने अपनी बाहें पसारी थीं.....तभी यह लौट आया। किसी सुनामी की तरह देश के सीने पर टूट पड़ा। महज दस से पंद्रह दिनों में ऐसी तबाही मची.....कि लोग कराह उठे। मृत्यु.....मृत्यु हाहाकार.. ....अव्यवस्थाा.....आशंका.....भय। धीरे–धीरे दाह.....कम होता गया।

एक बात अब तक चिन्ताजनक थी। मृत्यु दर में कमी नहीं आई। अब भी हर दिन करीब चार हजार लोग चले जा रहे। लोग उम्मीद से देखते तो उनकी उम्मीदें तोड़ी जाती। एक वर्ग ऐसा था जो निरंतर निराशाजनक समाचारों को बुनने में लगा रहता था। वह कभी टीकाकरण पर प्रश्न खड़े करता। कभी तीसरी–चौथी लहर का डर दिखाता। कभी सब कुछ मुफ्त कर देने की वकालत करता। श्मशान तो खैर उसका प्रिय स्थल ही होते। इन बातों से आम ज़िन्दगी बड़ी प्रभावित होती थी। जहाँ यह रोग लगभग समाप्त हो चुका था। जिन छोटे–छोटे इलाकों.....मुहल्लों में नब्बे प्रतिशत से अधिक लोग ठीक हो चुके थे... वहाँ भी कोई जीवन की धार में बहने को तैयार न था। घर बंद....सीढ़ियाँ सूनीं.....बालकनी वीरान.....छतें अकेली.....परिसर परित्यक्त। भूले–भटके ही कोई घूमता फिरता हुआ दिखाई देता। कोई दिखाई भी देता तो निपट अकेला। बस मनुष्य और उसका साया साथ होते।

इन्हीं दिनों देश के दक्षिणी इलाके में समुद्री तूफान आया था। असर दिल्ली तक दिखाई दे रहा। दो दिनों से आकाश में बादल छाए हुए हैं। झिर–झिर कर पानी बरसता है। थमता है। फिर झरता है। हवा में पानी के छींटे हैं। ऐसा लगता है.....मानो डेढ़ महीने बाद आने वाले आकाश–अतिथि अपने तंबू कनात लिये चले आए हों। पिछले बरस से इस बरस के मौसम का मिजाज कितना मिलता–जुलता है। यह मेल ऋतुचक्र का नहीं है, ऋतुसंहार का है। ताप के दिन इतने मनोहर क्यों हैं? जबकि उन दिनों में मौज मनाने वाला भी कोई नहीं। बस परिन्दे आनन्दित दिखाई पड़ते हैं। कई बार तो

उसे ऐसा लगता है कि यहाँ जिन परिसरों को सोसाइटी का नाम दिया गाय है, वे एकल गेह–गुच्छ हैं। सोसाइटी तो केवल इस अर्थ में हैं कि एक चिह्नित और आवंटित क्षेत्र में सौ–डेढ़ सौ परिवार रहते हैं। उनका कोई नियमित सामाजिक सरोकार नहीं। उनकी सामाजिकता का कोई सिद्ध प्रमाण नहीं मिलता। जो सामाजिकता कभी–कभार दिखलाई दे जाती है....वह भी शून्य हो गई है। भला हो इस बीमारी का....!

लगभग बीस दिनों के बाद प्रमोद का फोन आया था। प्रमोद से उसे मिले हुए महीनों हो चुके हैं। कोविड की दूसरी लहर से बीस–पच्चीस दिनों पहले वह गंभीर रूप से बीमार पड़ा। उसे पीलिया हो गया था। लीवर में पानी भर जाने से सेहत बिगड़ गई। डेढ़ महीने के बाद वह पीलिया से उबरा तो कोविड ने दबोच लिया। पिछले बरस उसे कोरोना–काल में बहुत आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। उसने अपना काम–धंधा दिल्ली से दूर गृहप्रदेश में ले जाना शुरू कर दिया था। इसी सिलसिले में वह जमशेदपुर गया था। वहाँ यह बीमारी पल्ले पड़ गई। पच्चीस दिनों तक रुग्णता उसे पछाड़े रही। कल ही वह दिल्ली लौटा था। प्रमोद से शाम को उसकी मुलाकात तय हुई।

वह तय समय से कुछ पहले ही गंतव्य पर पहुँच गया। वहाँ इक्के–दुक्के लोग दिखाई देते थे। दुकानें बंद थीं। बाजार सरपट सूना। वह कुछ देर तक कार में ही बैठा रहा। पंद्रह मिनट के बाद बाहर चहलकदमी करने लगा। तभी प्रमोद हाजिर हुआ। उसे देखकर माधव की आँखें चमक उठीं। वह एक मोटा तंदुरुस्त इंसान हुआ करता था। उसका कायाकल्प हो चुका था।

''अरे.....यह कैसा चमत्कार हुआ। आप तो बदल ही गए हैं।''

वह हँसा। कुछ बँधी–बँधी सी हँसी।

''हाँ.....बीमारी का एक सुप्रभाव कहा जा सकता है इसे। पंद्रह किलो वजन कम हो गया है। पहले पीलिया ने मारा फिर कोविड ने कमाल किया। लेकिन कुछ भी कहिए.....मैं अब बेहतर अनुभव करता हूँ।''

''हवा में उड़ रहे हैं आप.....!''

''अब कोविड से संबंधित कोई समस्या तो नहीं। मैंने सुना है कि कुछ लोगों को महीनों तक कमजोरी रह जाती है।''

''मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ। मैं कमजोर तो पड़ा। पर अब ठीक हो चला हूँ।

''आपका हाड़ा पहले से तगड़ा है प्रमोद जी।''

''वहाँ झारखण्ड में अभी कैसे हालात हैं.....।''

''अब तो सुधार है। आसपास भी जितने लोग बीमार पड़े थे.....सभी ठीक हो चुके हैं। इस बार ताप बहुत था लेकिन लंबा टिक नहीं सका। जिस रफ्तार से वायरस फैल रहा था.....मैं बहुत फिक्रमंद था।''

''भयावह दिन थे भाईसाहब। खैर.....अब उत्तर भारत में स्थिति सामान्य होती जा रही है।''

''तो.....आपकी क्या योजनाएं हैं। धीरे–धीरे दिल्ली छोड़ने का मन बना रहे हैं।

''अभी कुछ कहना मुश्किल है। हाँ.....मेरा सत्तर प्रतिशत काम अब जमशेदपुर में है। मुझे वहाँ ज्यादा समय देना होगा। यहाँ भी आता ही रहूँगा।''

''बच्चे और पत्नी तो फिलहाल यहाँ लौट कर आएंगे ही। अभी कोई समस्या नहीं होती। क्लासेस ऑनलाइन हो रहे तो क्या दिल्ली और क्या हजारीबाग।''

''हम्म.....''

''एक बार जब वहाँ पूरी तरह से स्थापित हो जाएंगे तब सपरिवार चले जाएंगे?''

''यही सोच रखा है माधव जी। वहाँ की पढ़ाई में कोई कमी नहीं है।''

''बिल्कुल नहीं। दिल्ली से बेहतर ही होगी।'' माधव ने फौरन जवाब दिया।

''यह बहुत अच्छा फैसला है प्रमोद जी। अपने शहर में रहना हमेशा सुखकर होता है। वहाँ आपने जीवन के शुरुआती पच्चीस–तीस वर्ष बिताए हैं। घर लौट जाने का मौका मिल रहा आपको।''

वह दो पल के लिए रुका। फिर हौले से बोल पड़ा–

''कोविड के इस एक सवा साल में आपको काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। आर्थिक क्षति हुई। सेहत भी बिगड़ गई। पर अब आपके सामने संभावनाओं का नया दरवाजा खुल रहा है। सेहत भी ठीक हो गई है। पहले से कहीं अधिक चमकदार दिखाई दे रहे आप।''

''जी.....जी।''

''अभी कितने दिन यहाँ रुकेंगे?''

''दस दिन तो हूँ। थोड़ा इधर का काम भी देखना होगा। दस बारह दिन से अधिक नहीं ठहर सकूँगा।''

कुछ देर के बाद वे दोनों अपने–अपने रास्ते पर निकल पड़े। माधव प्रमोद की बड़ी इज्जत करता था। उसे खुशी हुई कि आखिरकार....तीन चार वर्ष के कड़े संघर्ष के बाद प्रमोद उठ रहा। हाल के कुछ दिनों तक उसकी हालत डावाडोल थी। अंततः मेहनत रंग लाई। यह कोविडकाल उसके लिए मुसीबत के बहाने नए अवसर ले आया। लेकिन एक अनजान दुनिया का बड़ा सा हिस्सा हिल गया था। कितने स्थापित उद्योग धंधे तबाह हो गए। कितने छोटे–बड़े होटल बंद हो गए। कई पाँच सितारा होटलों की रौनक सदा के लिए जाती रही।

***

बारह

अठारह मई को दिन भर बादल छाये रहे। देर रात से बारिश शुरू हुई। उन्नीस मई को भी निर्विराम होती रही। सुबह से लेकर पूरी रात..... झरझर....झरझर। उन्नीस मई को बरसात ने दिल्ली के सत्तर वर्षों का कीर्तिमान ध्वस्त कर दिया। मई की बेचैन रात ऐसी सिहरन जगा गई कि पंखें बंद करने पड़े। बीस मई को धूप–छाँव क खेला रहा। दोपहर के बाद धूप निकल आई। उमस हो गई। कुछ घंटों में ही मंजर बदल गया। मौसम विभाग ने आने वाले दिनों के बारे में जो अनुमान लगाया था....उसके मुताबिक धूप खिलने वाली थी। मगर इक्कीस मई की सुबह से ही टिपिर–टिपिर होने लगा।

मानसून तो अभी वहाँ भी नहीं पहुँचा.....जहाँ उसकी आमद सबसे पहले होती है.....फिर भी देश के कई हिस्से भीग रहे हैं। अब तो धूप की चाहत होने लगी है। मई के महीने में लोग छाँह खोजते हैं....यहाँ धूप ढूंढ़ रहे हैं। इस उदास मनहूस मौसम को.....वह भी इन दिनों.....भला कोई कब तक झेले। और इस मौसम का वह क्या करे? घर से बाहर पाँव रखे नहीं जाते। कोई घाट, कोई बाट नहीं। न बाजारों की चमक–दमक.....न रास्तों की रौनक.....न खाने–पीने के अड्डे। शटर गिरे शहर में मेघ बरसे.....या धूप जलाए, किसे फर्क पड़ता है! हाँ...इस गीली....सीली हवा.....और गृहकैद को बढ़ा देने वाले बादलों से कोफ्त होती है अब। ऋतुओं का आनन्द उसी जीवन में है.....जहाँ उसकी गति सहज है। नदियों का नाद मोहता है.....बाँध का बंधन रोकता है। वहाँ आदमी ठहर जाता है.....जैसे भीतर कोई ज्वार उमड़ रहा हो कि मुक्त कर दो इस जलराशि को!

मई के इन्हीं दिनों में एक और सुखद समाचार मिला। कोविड की रोकथाम के लिए दी जा रही वैक्सन के साथ–साथ दवाओं के निर्माण का कार्य जोरों पर था। भारत में ही डिफेन्स रिसर्च डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन ने एक दवा बनाई.....जिसे कारगर बताया जा रहा। इन्हीं दिनों उसे पता चला कि विश्व के कुछ छोटे–बड़े देश मास्कमुक्त हो चुके हैं। यानी वहाँ दी जाने वाली वैक्सीन की प्रक्रिया पूरी हो गई है। कितने भाग्यवान हैं वो! भारत में इतनी आसानी से यह सब नहीं होने वाला था। वैक्सीन के विरुद्ध सैकड़ों लेख.....रिपोर्ताज छापे गए। लोगों को डराया, शंकाग्रस्त किया गया। पहले से एक बड़ी जटिल मानव चेतना.....जिसके अपने अनेकानेक दुराग्रह..... आरक्षण हैं.....वह वैक्सीन के लिए उत्साह क्यों दिखलाए? दूसरी बड़ी

कठिनाई यह कि भारत की जनसंख्या इतनी कि कई–कई देश इसमें समा जायें। जिन्होंने वैक्सीन की पहली खेप ले ली थी.....अब उन्हें थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी।

एक दिन बाद प्रकृति ने उसका आवाहन सुना। बाईस मई की सुबह चहकती हुई थी। आकाश ने अपने पलकों पर छाए उनींदी बादलों को झटक दिया था। कुछ भी म्लान न रहा। उसकी आँख धुली–धुली सी दमक रही थी। बाहर तेज बिखरा था। मेघ का साम्राज्य छिन्न हो चुका था। वह सदा–सदा नई शोभा से भर देने वाली परिचित खिड़कियों के पास बैठ गया। उसे प्रकृति से चुप–चाप बोलने बतियाने में अकथ सुख मिलता। वह लिखने लगा। जो लिख रहा था.....उसे क्या कहे–डायरी.....स्वागत कथन या कुछ और.....मालूम नहीं!

आज रूप खिला है। शंका से सुघरतर अदर्शित होकर नहीं, प्रदर्शित होकर खिला है। (रूप शंका से सुघरतर अदर्शित होकर खिला है–निराला) जैसे, जाड़े की सुबह मोटे कपड़ों से लदा बच्चा माँ के हठ से नग्न होता है और गर्म पानी से नहा धोकर चमक उठता है। आकाश अम्लान हो रहा है। नीम और गुलमोहर की पत्तियों पर पीली कटार धंसी है। लगातार देखूँ तो आँखें चौंधिया जाती हैं। लेकिन इसकी आभा इतनी सी नहीं। यह तो ठंडी हवाएं भी सासथ लिये बह रहा है।

मौसम के सारे विज्ञ आकलनकर्ता नाकाम हो गए। मेघ उन्हें धप्पा कर जाते रहे। जब भी लगा कि अब सूरज का ही साम्राज्य होने वाला है, तभी वे क्षितिज से उठकर छा गए। बीती रात को भी ऐसा अंधड़ चला कि खिड़कियाँ उखड़ जाने को हुई। धूप खिली। आज धूप उतनी ही प्रिय है, जितनी सर्दियों से अकड़ी सुबहों में होती है। बैसाख की धूप इतनी सुहानी! आश्चर्य होता है।

दिन जब काले पहाड़ जैसे हों तो बादल को पांव में बांधे कौन चले! उसे तो धूप की लाठी चाहिए। टेकता हुआ उस पार उतर जाएगा। उस पार तो अंधेरा ही अंधेरा है। फिर इस पार का अँधार भी उसके हिस्से में क्यों हो? यह धूप साँकेतिक है। इसकी गुनगुनाहट नहीं, इसका ताप चाहिए। तपेगा तो आगे छाँह मिलेगी। ताप ही नहीं रहा तो धूप–सूरज दो कौड़ी के रह जाएंगे।

मैं इस वासंतिक वैशाख को देख–देख हैरत में हूँ। मेरा बस चले तो दिनभर सैर करता रहूँ। यमुना के किसी पुल पर बैठ जाऊँ। कहीं किसी बाग में सुस्ता लूँ। किसी सुरम्य रास्ते पर सरकता चला जाऊँ। पर बंदिशें हैं। और

जहाँ कोई बंदिश नहीं वहाँ भी आदमी का जिगर जवाब दे गया है। विडम्बना यह कि गर्मियों के बीच उसके एक हाथ में बसंत है, दूसरे में माघ। फिर भी उसके दोनों हाथ खाली हैं। भीतर भय फन काढ़ कर बैठा है।

लगभग एक बरस यूँ ही बीता। पर्व–त्यौहार उत्सव आनन्द सब व्यर्थ हो गए। धूप हवा और बरसात तक खाली–खाली लौट गई। ऋतुओं से मनुष्य का संवाद ही खत्म हो गया। आकाश लुटाता रहा, सभ्यता लौटाती रही। इस अपूर्व द्वैत को बाँधने का समय चाहिए। फिर से वही दिन चाहिए जहाँ मनुष्य भीड़–भाड़ को कोसता, घाम–धूप सहता हुआ, बंधनहीन भटकता है। उसे ठंडी हवा का झोंका सहलाता है। बरसात की झड़ियाँ ताजा करती हैं। छटाँक भर से ही वह मन भर लेता है। इस भंडार को लेकर वह क्या करेगा। मन और आत्मा तो भग्न हैं।

उस दिन विजया ने बाहर जाने की इच्छा जताई थी। लगभग एक माह बीत चुका था। उसके पांव सोसाइटी से बाहर नहीं पड़े थे। सप्ताह भर पहले माधव बाहर निकला था तब दस–बीस गाड़ियां दिखाई दे रही थीं। आज उनकी संख्या बढ़कर दर्जनों में हो गई। बेशक लोग घूमन–फिरने नहीं निकले, मगर कौन जातना था कि दूसरी गाड़ियों में विजया जैसी तुच्छ कामना वाली स्त्रियाँ न रही हों! दिल्ली में अब भी कर्फ्यू लगा था। मोड़ों–चौराहों पर अपनी गाड़ियों में बैठे पुलिसवाले निश्चय ही ऊबे–ऊबे से नजर आते थे।

वे मयूर विहार से निकल कर अक्षरधाम मंदिर की ओर जाने वाली सड़क पर आगे बढ़ने लगे। एक गति उन्हें खींचती ले गई। रास्ता जैसे बुलाता चला गया। सड़क लगभग सूनी थी। धवल नीला आकाश था। जलहीन मेघों की सफेद छतरियाँ यहाँ–वहाँ उगे अमलतास खिलने लगे थे। कैसा आलोक था.....अनिर्वच.....! कैसी निर्मलता.....! दोनों दो–ढाई किलोमीटर दूर गए हों शायद। माधव ने पूछा–

और आगे जाना है क्या.....?

''नहीं.....रहने दे।''

''मैं ले जा सकता हूँ। निज़ामुद्दीन पुल के बाद वाले तिराहे पर पुलिस की गाड़ियाँ होंगी। वे पूछताछ करेंगे कि कहाँ घूम रहे। मेरी कार में कोविड–काल का कोई स्टिकर नहीं है।''

''नहीं। यहीं से लौट जाते हैं।''

माधव ने गाड़ी पुल के नीचे से वापस मोड़ ली। वे जिस रास्ते से आए थे.....उसी रास्ते के समानांतर घर की ओर चल पड़े। उनकी कार पचार की रफ्तार पर चल रही थी। वे पुल पर चढ़े। ईंट–पत्थरों को विपरीत दिशा में गतिमान होते देखते रहे। मेट्रो स्टेशन पीछे छूटता चला गया। अमलतास के दैवीय फूल भागे। यमुना के सूने कछार छूटे। केवल वह समय साथ रह गया। एक चिरन्तन संतोष! अनश्वर सुख! विजया का मन आनन्दित था।

देर शाम वह सैर कर लौट रहा था। नीचे पार्किंग में खड़े होकर फोन स्क्रॉल करने लगा। उसकी एक दोस्त का व्हाट्सएप मैसेज था। चंद्रप्रकाश नहीं रहे.....! हाथ–पाँव कांप उठे। आज दिन खुलने के साथ.....जिस चटख धूप ने उसकी आशाओं को बाँधा था.....वह उसी क्षण ढहता हुआ प्रतीत होने लगा। उसे लगा....क्या पढ़ रहा हूँ। यह सच नहीं हो सकता! उसने पूछा..... कौन चंद्रप्रकाश.....?

पूछने के बाद माधव ने मित्र के जवाब का इंतजार नहीं किया। चंद्रप्रकाश को फोन लगाया। तीसरी घंटी बजते–बजते चंदू की आवाज आई। नमस्ते.....! माधव की साँस सम पर चलने लगी। एक क्षण के लिए वह ठिठक गया। क्या बात करे....। उसके मुँह से कुछ निकल पड़ा–

''आज आपकी रिपोर्ताज बहुत अच्छी थी।''

''कौन सी.....''

''वही.....जिसमें आपने गंगा किनारे जलती लाशों पर फैलाई जा रही अफवाह का खंडन किया है।''

''अच्छा.....वह तो कहीं से उठाई है। लेकिन समय की जरूरत है कि हम ऐसी रिपोर्ट दिखलाते रहें।''

''जी.....। मैं भी कुछ लिखकर भेजता हूँ।''

''अवश्य.....''

''अच्छा ठीक है चंद्रप्रकाश जी। कल बात करूंगा।''

बातचीत खत्म हो गई। वह दुबारा व्हाट्सएप पर लौटा। वहाँ दोस्त का जवाब पड़ा था–चंद्रप्रकाश दवे.....!

''ओह.....अविश्वसनीय! कैसा ऊर्जित.....सुदीप्त चेहरा! अभी कुछ दिनों पहले ही तो देखा था। फेसबुक पर नियमित अंतराल पर दिखाई देते थे। बड़े भोजनप्रेमी मस्तमोला मनुष्य थे। अभी उम्र ही क्या थी? यह कैसे

हुआ? नियति इतनी निर्मम है! उसका बिछाया जाल इतना सघन.....और दुस्तर कि काटे नहीं कटता! छोटे से निस्तार का समाचार मिलता नहीं कि शिकारी झपट्टा मार कर ले जाता है!

चंद्रप्रकाश दवे उसका पुराना परिचित था। परिचय संवाद का नहीं साझे सोच–समझ का था। वह अक्सर उसके लिखे पर मौन उपस्थिति देता रहा। सोशल मीडिया की बड़ी सी वसुधा पर सभी मित्र हर दिन तो नहीं दिखाई पड़ते। उस भीड़ में से ऐसे अत्यंत जरूरी लोगों का कुछ दिनों के लिए गुम हो जाना एक साधारण घटना है जिस पर लोगों की निगाह तक नहीं जाती। यूँ कहें कि लोग अमूमन उसका संज्ञान नहीं लेते। क्योंकि वह जिस तरह से जाते हैं....उसी तरह अचानक लौट भी आते हैं तो लगता है.....जैसे गए ही नहीं थे। फिर.....उनका सदा–सदा के लिए यूं चले जाना इन दिनों एक साधारण बात हो गई है। कौन सोचता है कि सप्ताह भर पहले तक जिसे उसके होने की निरंतरता में देखा.....वही गायब हो जाएगा!

अभी मुक्ति नहीं है! इस कठिन समय से पार आसान नहीं है! कौन जाने.....यह संघर्ष कितना लंबा चलेगा! संक्रमण का फैलाव कम हो गया है। बड़ी तेजी से मरीजों की संख्या घट रही। ठीक होने वाले लोग बढ़ रहे हैं। जीवन अभी मृत्यु के अप्रत्याशित प्रहार से मुक्त नहीं हुआ है। मृत्यु आती है.... ..उसे आना ही है। लेकिन तीस से पैंतीस–चालीस साल के लोग खत्म हो जा रहे। अचानक एक खबर कहीं चमकती है कि कल तक जिसे हंसते–खिलखिलाते देखा था...वह नहीं रहा। यह आशंका.....आकुलता मिटती नहीं। मन का ताप बुझता नहीं। इस संतर्जन से कब छुटकारा मिलेगा।

***

तेरह

25 मई 2021.....इस दिन एक महत्वपूर्ण समाचार पढ़ने को मिला। मार्च के अंतिम दिनों से जो आक्रान्तकारी उठान शुरू हुई थी वह शिखर पर जाकर ढलने लगी थी और आज के दिन उसका लुढ़कना अत्यंत सांकेतिक था। चालीस दिनों के बाद देश में हर दिन कोविड से संक्रमित होने वाले लोगों की संख्या दो लाख के नीचे चली गई थी। आज की सुबह वह एक नयी आशा से भरा हुआ था। न जाने क्यों.....उसे पूर्वाभास हो रहा कि कुछ सकारात्मक पढ़ने–देखने को मिलेगा। एक दिन पहले देश में दो लाख बाईस हजार लोग संक्रमित हुए थे।

उसने राहत की साँस ली। उफ...वे भयावह यंत्रणापूर्ण दिन! चर लाख से अधिक लोगों का रुग्ण होन हर रोज...जगह–जगह से मृत्यु के दुखद समाचार। सड़कों पर एम्बुलेंस के चीखते सायरन। उसे ध्यान आया कि उन दिनों वह जब भी बाहर निकला....भागते हुए एम्बुलेंस जरूर दिखाई पड़े। सन्नाटे को भेदती उनकी आवाज और धीरे–धीरे मन को कंपा कर उनका गुम हो जाना.....कैसा दुर्जेय....कर्कश मालूम पड़ता था। अब सड़कों पर उनका दिखाई देना बहुत कम हो गया है। दिल्ली और आसपास के क्षेत्र जीवन के अभय में लौट रहे। यह केवल दिल्ली का सच नहीं है। देश के अधिकांश भूभाग दूसरी लहर की चोट खाकर उठ रहे। दक्षिण के राज्यों में भी स्थिति बेहतर हो रही है। हाँ.....अभी निश्चिंत तो कोई नहीं हुआ।

इस सप्ताहांत के बाद क्या शहर अपनी खोई हुई लय पा सकेगा.... ? क्या बाजार....बंद पड़े दफ्तर खुलेंगे? अभी स्कूल कॉलेजों का खुलना तो नहीं होगा। ठरही हुई झील में दो–चार नौकाएं चल पड़ेंगी तो पानी का चेहरा खिल उठेगा। जीवन योग का ही नाम है। शहर और गाँव वहाँ रहने वाले मनुष्यों को खोजते हैं। नदी को नाविक की तलाश होती है.....वहाँ डुबकी लगाने वाला.....तिरने वाला न हो तो नदी ठहर जाती है। वन का जीव..... परिव्राजक.....संन्यासियों की आवश्यकता होती है। जीवन का मानी ही गति है। वह बंद कमरों में ठहर जाय तो सड़न होने लगती है।

माधव को यह उम्मीद जगी कि आने वाले दिनों में जीवन पुराने ढर्रे पर लौट आएगा। समय कितना निष्ठुर हो सकता है....! वह दयाहीन हुआ..... उस हद तक हमें खींच ले गया.....जहाँ हमें अपनी क्षुद्रता की अनुभूति होने लगी। जहाँ युवकों को हमने हठात ही जाते देखा। उन्हें जाते देखा.....जो कल तक हँस रहे थे। यह समय अस्पताल से घर लौट रहे मनुष्य को

दुबारा घसीट कर अस्पताल तक ले गया। उसकी साँसें ऑक्सीजन सिलिंडर की मोहताज हो गईं। उसकी प्रार्थनाएं आंसू....विकल मन की पुकार.....आह..... ..सब अनसुनी रह गई। काल का क्रूर निर्मोही पंजा उसकी पीठ पर पड़ा, वह बेदम होकर पछाड़ खाता चला गया। लेकिन अब तो उसे उठना है। श्मशान में अपने प्रिय को फूंक कर लौटने वाला भी धीरे–धीरे पग बढ़ाने लगता है। चेहरे पर बिखरे शोक के मेघ हौले–हौले उड़ने ही लगते हैं।

''आपने टीका लगवाया?''

उस सर्विस इंजीनियर ने माधव को यूँ हंस कर देखा जैसे कोई बेतुका सा सवाल पूछा गया हो। निरर्थक.....निहायत ही गैरजरूरी! सर्विस इंजीनियर को बहुत टालमटोल के बाद घर बुलाने को तैयार हुआ था वह।

''टीका–वीका तो नहीं लगवाया सर। बस ऐसे ही ठीक हूँ। ऊपरवाले की दया है।''

''हाँ.....वह दया तो सब पर बरसती रहनी चाहिए। लेकिन दुनिया इतनी जद्दोजहद क्यों कर रही है वैक्सीन के लिए? ऊपरवाले की दया बनी रहे। इसके लिए नीचे वालों को भी कुछ प्रयास करना पड़ता है। क्यों....?''

''वैसे.....मैं जानना चाहता हूँ कि आपने अब तक वैक्सीन क्यों नहीं लगवाई?''

वह दो पल के लिए निरुत्तर हो गया। फिर बोल पड़ा–''बस यूँ ही....''

अच्छा.....!

माधव ने इशारा किया। उसकी बूढ़ी माँ सोफे पर बैठी थी।

''मेरी माँ चौरासी वर्ष की वृद्धा हैं। उन्हें अप्रैल के पहले सप्ताह में ही सुई लगवा चुका हूँ मैं। वह बिल्कुल ठीक हैं। उन्हें सुई लगने से कुछ नहीं हुआ।''

अच्छा....! आश्चर्य से उसकी आंखें फैल गई। वह चुपचाप घर के दरवाजे से बाहर निकल गया। बाहर जूते पहनते हुए उसने कुछ भरपाई करने की कोशिश की।

''अभी तक हमारे दफ्तर में किसी को लगी नहीं सुई। आगे देखते हैं क्या होता है।''

माधव ने कुछ कहना या तर्क करना जरूरी नहीं समझा। नमस्ते कर सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। वह घर में लगाए गए पानी के रिवर्स

ऑसमोसिस सिस्टम का सर्विस इंजीनियर था। कोई पैंतीस–चालीस वर्ष का रहा होगा। उसके मन में इस वैक्सीन के लिए कितनी फिजूल की शंकाएं थीं। दरअसल कितनी अज्ञानता...कितना पूर्वाग्रह और कितनी देशघाती लापरवाही थी। दिल्ली जैसे महानगर में रहने वाला एक सर्विस इंजीनियर जो हर दिन मध्यवर्ग के मुहल्ले में घूमता फिरता है.....जहाँ कोविड का कहर सबसे अधिक टूटा.....वह इस वैक्सीन के लिए पूरी तरह उदासीन है। तो गांव देहात में क्या स्थिति होगी!

जैसे–जैसे भारत उबर रहा था.....आशा प्रबल हो रही थी। लेकिन दिये की बाती कुछ–कुछ देर में कंपित होकर फड़फड़ा उठती फिर संभल कर मन्द्र लौ में दीप्त होती जाती। देश कई स्तरों पर युद्ध लड़ रहा था। बीमारी अकेली चुनौती नहीं थी। आंतरिक घात–प्रतिघात.....प्रबल थे। उनकी चोटें रह–रह कर मन को पस्त करतीं कि.....फिर कहीं से कोई नयी लू–लहर तो नहीं चल पड़ेगी!

मई के आखिरी दिन थे। ऐसा लगने लगा था जैसे यूं ही जीने की आदत सी पड़ती जा रही हो। आशा बंध रही थी कि दिन खुलेंगे। यों दिन खुल गये थे! बड़ी तीखी धूप निकलती इन दिनों। ताप भी चढ़ा हुआ था। मगर वे दिन.....जो जिये जाते हैं.....गायब ही थे। पहली जून से दृश्य बदल जाए शायद! हरियाणा.....उत्तरप्रदेश की कर्फ्यू में ढील दे दी गई है। बाजरों की दुकानें एक अनुशासन.....तयशुदा नियम से खुलती बंद होती हैं। दिल्ली में भी कुछ वैसा ही हो जायें.....तो बाहर निकलते हुए अर्थशून्यता का बोध न हो। और भला वह सहजता दिल्ली.....हरियाणा या उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तक ही सीमित क्यों हो! पूरे देश के हालात बदल जाएं तो कितना अच्छा हो। ऐसा होता नहीं दिखाई देता। फिलहाल तो नहीं।

दक्षिणी राज्यों में अभी बाढ़ है। वहाँ स्थिति संभल नहीं रही। न जाने कहाँ चूक हो रही! लोग पाबंदी नहीं मान रहे या प्रशासन ही मुस्तैद नहीं! कौन जाने.....सच क्या है। वहाँ अभी तक कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं नजर आता। महाराष्ट्र जरूर बेहतरी की ओर बढ़ रहा। अगले दस–पंद्रह दिन बड़े महत्वपूर्ण होंगे! कुछ ऐसी ही उम्मीद बाँधे वह चुपचाप बैठा था कि एक समाचार पर उसकी आँखें टिक गईं। कोई परिचित आदमी चला गया था। माधव से उसका व्यक्तिगत परिचय नहीं था। एक–दो दफे ऐसा हुआ कि वे एक–दूसरे को जानने के करीब आकर वहीं रह गए जहाँ पहले थे। यथास्थितिवाद कायम रह गया। माधव के लिए सामीप्य की यह संज्ञा मायने नहीं रखती। मायने यह रखता था कि इस प्लेटफॉर्म का एक और

परिचित मनुष्य.....कोविड का शिकार हो गया। उसकी भी आयु अभी शेष रही होगी....!

क्या पता कुंडली में लिखा हो कि वह तो अस्सी बरस की आयु लेकर आया है! पचास के पास प्रस्थान कर गया....। कुंडली नहीं काल महत्वपूर्ण है। कौन जानता है काल के उस कैलेंडर से किस परिचित–अपरिचित की तारीख कटने वाली है। अभी तक हर दिन साढ़े तीन हजार से अधिक मौतें हो रहीं। हर मौत कितने ही परिचितों को यूँ ह चुप कराती होगी? उत्तरा से लेकर दक्षिण और पूरब से लेकर पश्चिम तक क्रंदन का एक तार जुड़ गया है। इस तड़प.....रुदन और आँसू में देश डूबा है। न जाने कब उबरेगा..... ? आँखों के आगे अंतहीन सूना आकाश दिखाई देता है। जड़ खड़े गुलमोहर से सटी इमारत के ऊपर उस शून्य में कोई थकी–हारी चिड़िया चली जा रही है। मानो उड़ते–उड़ते बोझिल हो गई हो। बस नीड़ तक पहुँचा दे पंख..!

***

चौदह

अकेलापन मनुष्य को तोड़ता है....भिन्न अर्थों में जोड़ता भी है। ऐसा अकेलापन जो उसका अपना चुना हुआ नहीं.....मढ़ा हुआ हो। मनुष्य के पास एकाकी हो जाने के सिवाा कोई चारा न हो....? वह प्रकृति से बातें करने लगता है। यो आम दिनों में घूमते–फिरते वह जीव–जगत को देखता है.... उसकी शोभा को निरखता है खुश होता है। किन्तु जब मनुष्य को कोई साथी नहीं मिलता। निपट सूने में रह जाना उसकी नियति हो जाती है। तब वह उसी प्रकृति के अधिक निकट हो जाता है। तब उन पेड़–पौधों.....सुबह की रश्मियों.....शाम की ढलानों में कोई नया रंग देखने लगता है.....कोई नया स्वर सुनने लगता है। पत्तों में नए वर्ण देखता है। फूलों में नई आभा खोजता है। तब यही सामान्य दृश्य बड़े सांकेतिक हो जाते हैं। मनुष्य....प्रकृति दोनों संवादी हो जाते हैं। वह भी इन दिनों पेड़ पौधों और संपूर्ण प्रकृति के सहारे कुछ नया देखता सुनता था–

आकाश आभाहीन हो रहा। उस निष्कांता नीलिमा को सड़क पर जल रही बत्तियाँ अपना प्रेम पठाती हैं। उन बत्तियों से ही हरे पत्ते जल रहे। नीचे अंधेरा छा रहा। कुछ लोग टहलते हैं। कुछ साइकिल सवार चले जाते हैं। दिन ढल रहा। ढल चुका है लगभग। मैं भी बस ढलान के बाद उठ रहा हूँ। अब न कोई साथी है न कोई आगंतुक। अकेलापन है। उसकी ही अनेकार्थी सामाजिकता शेष रह गई है।

लगभग सवा वर्ष का अनुभव कहता है कि स्वयं में सामाजिक हो जाओ। उसे गुन लो। ध्यान धरो। हँसों। जब अवसर मिले, छिटक दो। अवसर न मिले तो सहेज लो। आगे वह जीवन लौट आए शायद। आएगा ही। जिस दिन आएगा धारस्थ हो जाऊंगा। फिर उसे पसार छिटक दूँगा।

बड़ी आशाएं मुझे घेरे रहती हैं। बौड़म आदमी हूँ। न शास्त्र आता है। न साहित्य। न दर्शन। अध्ययन मैं करता नहीं। किताबें मेरे घर से उकता गईं हैं। उन्हें कहीं और घूमने भी नहीं भेजता। वे लौटकर नहीं आतीं। इसलिए वे मेरे पास किसी कोने में रहें। उनमें बंद शब्द संसार के पास होना भी एक प्रच्छन्न शक्ति की साधना है। जैसे उन पन्नों से कोई ऊर्जा उठ–उठ कर मेरे प्राणों में बस जाती हो।

यदा–कदा उन्हें छू लिया करता हूँ। पलट लेता हूँ तो चमकता हूँ। बंद करता हूँ तो अंधेरा घेरता है। फिर खिडकियां खोलता हूँ। उसी एक रस

अम्बर में कुछ ढूंढ़ता हूँ। जड़ पत्तों पर ठहरता हूँ। हर चक्कर के साथ नयी चाल चलता हूँ। जंगली फूलों को छूता हूँ। जिस दीवार के सहारे वो उठते खिलते हैं उस दीवार के पार नई भाषा सुनता हूँ। न जाने क्यूं दशकों से सुनी हुई भाषा में कुछ नया भासता है।

दिल्ली से नोएडा जाने के रास्ते पर वह बढ़ रहा था। बॉर्डर के पास लगी पुलिस की बैरिकेड अब सड़क किनारे कर दी गई थी। दो–तीन दिनों पहले तक वहाँ अंग्रेजी वाले एस अक्षर के आकार का रास्ता बनाया गया था। आज वह आकार सीधा हो गया ाि। पूरी सड़क खाली नहीं थी। बेरिकेड्स कोने में धकेल दिये गए थे। यह एक इशारा था कि दोनों ही प्रदेशों में लॉकडाउन और कर्फ्यू में ढील दी जाने की प्रक्रिया शुरू हो गई है। रास्ते में गाड़ियाँ भी अधिक नजर आने लगी थीं।

नोएडा की फिल्मसिटी में अब तक सूना पसरा था। कतार से खड़ी दुकानों के पास इक्के–दुक्के कुत्ते डोलते। एक दो दुकानदार चक्कर काटने आते। देखकर लौट जाते कि उनकी खाली पड़ी अमानत सुरक्षित है। उम्मीद बंध रही थी कि आने वाले दिनों में इन छोटे कारोबारियों को भी हाथ–पाँव खोलने की इजाज़त मिल जाएगी। यही वो लोग हैं जिन्हें महामारी ने खूब तोड़ा है।। हर दिन कमा कर खाने वाले लोग। इनके अलावा परिवहन... पर्यअन और निर्माण क्षेत्र पर वज्र गिरा। पिछले वर्ष उन्होंने लंबा त्रास झेला। एक बड़े झटके को सहने के बाद संभल ही रहे थे कि बाँध कर रख दिए गए। जैसे किसी ने बड़ी निष्ठुरता से जकड़ा हो।

दूसरी लहर इतनी तीव्र गति से आई कि संभलने का मौका नहीं मिला। पटक दिये गए। लोग आक्रान्त हो गए। दुकानें बंद कर जाने लगे। अब देश दुबारा देह झाड़ कर खड़ा हो रहा है। डर तो है लेकिन डर केवल दुख दे सकता है। वह अन्न नहीं देता। जीवन संग्राम में धंसना ही होगा। उसे उम्मीद है कि जल्दी ही इस आरोपित एकान्त से मुक्ति मिलेगी। इसे एकानत कहना भी अन्याय है.....! कैसी निर्जनता है! भुतहा वीराना है! अकाल का उजाड़!

वह ध्यानमग्न था। उसी अवस्था में उसने प्रकाश को आते हुए देखा। मानो धुंध के पीछे से कोई जाना पहचाना उभर रहा हो। वह अपने किसी मित्र के साथ कार से बाहर आया। माधव ने मुस्कुराते हुए उनका अभिवादन भी किया.....फिर न जाने कहाँ खो गया। वे दोनों एक–दूसरे से बातचीत में व्यस्त हो गए। उनकी वार्ता में प्रकाश अधिक बोल रहा था.....उसका साथी बीच में हो.....हाँ करता या कुछ टोक कर रह जाता। तभी माधव ने उड़ती

हुई एक पंक्ति सुनी–''बड़ी मौतें हुई हैं। अब तौ न्यूयॉर्क टाइम्स और दूसरे विदेशी समाचार पत्र भी यही रिपोर्ट छापे रहे हैं। बर्बाद कर के रख दिया है इस बार तो....!''

माधव एक पल के लिए सोचने लगा। न जाने किसने बर्बाद किया। कोविड ने या सरकार ने.....। पत्रकार महोदय की बातों से तो यही लगता है कि सरकार ने ही कोविड को बुलाया और उससे कहा कि तुम हमें बर्बाद कर चले जाओ!

प्रकाश लगातार बोल रहा था। हर बार जैसे एक ही बात को दुहराता कि यहाँ जो हम देख रहे.....या जान रहे वह सब झूठ है। सच केवल वही है जो न्यूयॉर्क टाइम्स जैसे अखबार लिखते हैं!

पाँच–सात मिनट तक वह खामोश रहा। फिर उसका धैर्य टूट गया। उसने पूछा; ''आपके मुताबिक न्यूयॉर्क टाइम्स वहाँ से बैठकर भारत की आंतरिक स्थिति की बेहतर समीक्षा कर रहा और यहाँ.....इस विशाल देश की सरकारी एजेंसियाँ.....स्वास्थ्य विभाग.....आम जनसमूह ये सब प्रलाप कर रहे? इनकी बातों में कोई सच्चाई नहीं। कोई दम नहीं.....क्यों?''

''देखिए...माधव जी आपको कुछ पता नहीं है.....हम दिन भर यही सब देख रहे हैं!''

आपको कुछ पता नहीं.....यह सुनकर उसकी त्योरियां चढ़ गईं।

''आपको कुछ पता नहीं है....! यानी मैंने आँख–कान बंद कर रखे हैं। आप न्यूज़ चैनल में काम करते हैं तो सच जाते हैं? मैं अखबार नहीं पढ़ता? मैं अपने आसपास का जीवन नहीं देखता! मुझे यह पता ही नहीं चलता कि कितने लोग बीमार पड़े हैं और कितने मर रहे?''

''आप देश के दूरदराज के इलाकों की खबर नहीं जानते। आपके आसपास क्या हो रह.....इससे क्या फर्क पड़ता है?'' प्रकाश ने कुछ झुंझलाहट के साथ कहा।

''इसे कहते हैं समझदारी का फेर। प्रकाश.....आपको सर्वज्ञ होने का अहंकार कब से हो गया? और मैं तो यही समझता हूँ कि जब यह बीमारी लगभग समान रूप से देश भर में फैल गई तो उसका पैटर्न एक छोटे से क्षेत्र से भी जाना जा सकता है। आपको शायद यह भी ध्यान न हो कि मैं दिल्ली में रहता हूँ.....जहाँ अप्रैल के आखिरी दिनों में हजारों हजार मरीज आ रहे थे। मेरी छोटी सी सोसाइटी में दस से बारह परिवार इसकी जकड़ में

थे। कम से कम चालीस लोग संक्रमित रहे होंगे। सौभाग्य से सभी ठीक हैं। एक दो लोगों को छोड़कर किसी को अस्पताल जाने की जरूरत भी नहीं पड़ी।''

''कुछ ऐसे ही हालात पास–पड़ोस की दूसरी सोसाइटीज में थे। धीरे–धीरे लोग इस पर विजय पाते चले गए। आप को ऐसा क्यों लगता है कि मैं केवल अपने क्षेत्र विशेष को आधार बनाकर यह कहता हूँ। मैंने तो उत्तर प्रदेश की सर्वाधिक घनी आबादी वाले कस्बों.....शहरों के लोगों से संपर्क बनाए रखा। बिहार के अपने ग्रामीण क्षेत्र का हाल जानता रहा। क्या मुझे यह समझ में नहीं आ रहा था कि वहाँ की स्थितियां कैसी हैं।''

प्रकाश चुप हो गया। चेहरा तमतमा उठा।

''छोड़िये.....मैं इस बारे में बातचीत ही नहीं करना चाहता!''

''आप बातचीत इसलिए नहीं करना चाहते कि यहाँ आपकी हाँ में हाँ मिलाने वाला नहीं है।''

प्रकाश का दूसरा साथी जो उसके ही साथ आया था.....मध्यस्थ बन गया।

''रहने दीजिए। इन सब बातों का अब क्या तुक है.....अब तो बड़ी तेजी से संक्रमण घट रहा। वह जिस तेजी से ऊपर चढ़ा था....उसी तेजी से नीचे लुढ़क रहा है।''

हाँ.....एक बार जब तीसरी चोट लगेगी तब यह सरकार समझेगी! अपने साथी की बात पर प्रकाश ने संपादकीय टिप्पणी की।

माधव समझ गया कि प्रकाश का पूरा जोर केवल यह सिद्ध करने पर था कि कोविड में भारत पूरी तरह नाकाम हो गया। सरकारी व्यवस्था फेल हो गई। आँकड़े गलत हो गए। पूरा का पूरा सिस्टम ध्वस्त हो गया। आगे भी कुछ कहक नहीं सकते कि क्या होगा।

वह चुप ही रहा। मगर यह सोचने की विवश हो गया कि पत्रकारों में आम तौर पर पर यह संदेहवाद जो कि सहज जीवनदृष्टि का अभाव है.....भला कैसे पनप जाता है। और उसी संदेहवाद पर गर्व करते हुए वे स्वयं को बुद्धि मान.....अलहदा.....अनूठा मानते हैं। मानों मुल्क के मॉनीटर हों! उनमें यह विचार गहरा पैठ जाता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है। भला यहाँ की सरकार सच कैसे कह सकती है.....सच तो न्यूयॉर्क टाइम्स ही कहता है! सच कहने वाले सात समंदर पार रहते हैं!

यह हिन्दी का एक विशेष समाज है। जो अंग्रेजीदां जब उनके आसपास नहीं होते हैं तो वह खुद उनकी भूमिका अदा करता है। तब उसके लिए प्रामाणिकता विदेशों की मोहताज होती है। खास कर अंग्रेजी–लिखने बोलने वालों की। गर वह अंग्रेजी बोलने लिखने वाला शुद्ध विलायती या अमरीकी हो तो क्या कहने!

प्रकाश के दुराग्रह और बार–बार सरकार.....देश की व्यवस्था को कोसने से उसका मन खिन्न हो गया। वह अधिक समय तक वहाँ रुकना नहीं चाहता था। एक विराम तो वहाँ पहले से ही आ चुका था। प्रकाश ने कुछ भौंडे लतीफों से उसे भंग करना चाहा। यह उसके स्वभाव का एक हिस्सा है। उसकी पसंद के लोगों.....व्यक्तित्वों पर सवाल करना कुफ्र। उसकी धारणाओं को गंभीर तर्क से काटना गुनाह! म्गर वह सर्वाधिकार से लैस मनुष्य है। उसे अपनी पत्रकारिता की समझ...अपने पठन–पाठन और दृष्टि का दर्प है। दूसरों को छेड़ना....उनका उपहास करना आदि को वह अपने इसी दर्प का अविभाज्य अंग मानता है। माधव आत्माभिमानी है। वह किसी की गरिमा या उसकी निजता को खण्डित नहीं करता। न अपने साथ वैसा किया जाना सह पाता है।

''मैं चलता हूँ। अब देर भी हो रही। कभी और मिलूँगा।''

माधव का यूँ चला जाना उसे अखर गया। प्रकाश का दर्पित मन आहत हो उठा। उसकी धूर्त...चालबाज़ आँखें लहक उठीं। बाय..वह बस इतना ही कह सका।

31 मई की सुबह कुछ अलग सी थी। मानो सूरज ने आसमां के उदास कैलेंडर में एक नया दिन भरा हो। 30 मई को भारत में डेढ़ लाख लोग संक्रमित हुए। यह राहत देने वाला समाचार था। उतार के दिन..... हैं! यह ढलान अब तेज हो गई है। इस ढलान में ही देश का उठना होगा। एक अच्छी बात तो यह भी है कि मृतकों का आंकड़ा घट रहा। उसमें लगभग एक हजार का गिरना दर्ज हुआ है। 31 मई को सांकेतिक कहा जाना चाहिए कि माह के आखिरी दिन एक संदेश मिल रहा है। एक आशा खिल रही कि जून बीतते–बीतते बहुत कुछ बदल जाएगा।

जून के सप्ताह के शुरुआती तीन–चार दिनों में बीमार पड़ने वाले लोग कम होते रहे। लोग आशावान हुए। जैसे कोई डरा हुआ शंकाग्रस्त बच्चा हुड़के के पीछे से आधी देह निकाले झाँक रहा हो। वह बाहर जाने को मचल भी रहा हो और भयातुर भी हो कि वहाँ कोई खतरा तो नहीं। लोगों का घर

से निकलना अब भी कम था। उसमें मामूली बढ़त आई थी। दिल्ली में हर दिन चार–पाँच सौ लोग संक्रमित हो रहे थे। सवा महीने पहले यह संख्या चौबीस हजार के विकराल आँकड़े को छू रही थी। लॉकडाउन खत्म नहीं हुआ था। कुछ फैक्टरियाँ और निर्माण क्षेत्र खोल दिये गए थे। सड़कों पर मोटरसाइकिल.....गाड़ियाँ पहले से अधिक दिखाई देती थीं।

कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जिन्हें देखकर इस बंदी की मार को समझा जा सकता था। पास के शॉपिंग प्लाजा में एक मिठाई की दुकान थी। उस दुकान का एक हिसा उसने किसी मद्रासी को किराए पर दे दिया था। मद्रासी हर दिन दक्षिण भारतीय व्यंजन बनाता। इडली...दोसा और सांभर बड़ा। ये ही प्रमुखता से बनाए जाते। इनकी ही मांग बहुत अधिक होती। दो दिन पहले वह मिठाई की दुकान खुल गई थी। मद्रासी गायब था। उसकी जगह वहाँ एक डेयरी वाला आ गया है। मद्रासी का गायब होना एक साधारण घटना है। किन्तु इस साधारणता की व्यापकता कौन जान सकता है! ऐसे कितने लोग इन डेढ़ महीनों में उखड़ गए होंगे। किसी महानगर में बिना रोजगार के जीवन कैसे चले.....! इस सप्ताह के बाद यह बंदी खत्म हो जाये...ऐसा लगता है। पिछले वर्ष की मार खाकर उठ रहे अति सामान्य लोगों के लिए यह दूसरी लहर दुर्जेय है। इसमें बहुत कुछ डूबा है। उसका पता भी चलता है.....जैसे–जैसे पानी घट रहा.....बर्बाद टीले उभर रहे।

पाँच जून की साँझ कुछ–कुछ बीते हुए सामान्य होते दिनों सी थी। वह नोएडा से घर वापस लौट रहा था। सड़क पर अधिक गाड़ियाँ थीं। जबकि वह शनिवार की शाम थी। मयूर विहार के लिए मुड़ते हुए उसने कोई बड़ा बदलाव नहीं देखा। मेट्रो स्टेशन के नीचे उदास पीली बत्ती जल रही थी। सीढ़ियाँ खाली थीं। उनके सामने न कोई रिक्शावाला.....न ऑटो। आमतौर पर वे सुबह के छह बजे से रात से साढ़े नौ दस बजे तक वहाँ लोगों का इंतजार करते मिलते। आगे की सड़क पर भी आठ–दस लोग आगे–पीछे दूर–दूर चले जा रहे थे। कुछ कारें.....मोटरसाइकिलें भी। उसकी अपनी सोसाइटी थोड़ी जीवंत हो उठी थी। जीने का पूर्वाभ्यास रकती हुई नजर आ रही थी। इतने दिनों के बाद उसने दुबकी हुई शामों को घरों से बाहर निकलकर नीचे चहलकदमी करते हुए देखा। कुछ महिलाएं सैर कर रही थीं। अपने ही घर के दूसरे सदस्यों के साथ नहीं...सोसाइटी की अन्य महिला मित्रों के साथ चल रही थीं। बच्चे खेल रहे थे। अरसा बाद लोगों ने अपनी देहरी पार की थी। बच्चों को खेलते हुए देखना रुचिर था। भय और शंका के जाले हट रहे थे।

पंद्रह

जिस दिन दिल्ली शहर को कर्फ्यू से मुक्त किया गया.....उसी दिन भीड़ बढ़ गई। बाजार की साठ से सत्तर प्रतिशत दुकानें खुल गईं। कुछ लोगों ने जान बूझकर अब भी दुकानें बंद ही रखी थीं। कुछ अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे। पैंतालीस–पचास दिनों के बाद दुकानों के शटर उठते हुए दिखे तो लगा जीवन में गति लौट रही है। गति के बिना तो जीवन जड़ है। मृत्यु समान। जीने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जीने के लिए क्रियाशील होना पड़ता है। जिसकी क्रियाशीलता जितनी अधिक होती है उसका जीवन उतना ही चमकदार होता है।

बाजार से इतर सड़कों पर फास्ट फूड सरीखी चीजें बेचने वाले अभी नहीं लौटे थे। छोले–कुलचे.....समोसे....चाट पकौड़ियां...रोल आदि बनाने वालों का रास्ता अभी तक सूना था। वहाँ किसी तरह की कोई हरकत भी नहीं हो रही थी। शायद वे भी दो–चार दिनों में लौट आएं। आना ही होगा!

एक बार चोट खाकर उठा आदमी बिना चिन्ता के चल पड़ता है। दुबारा जब वहीं चोट लग जाती है और पिछली चोट के मुकाबले जोर रसे लग जाती है तब वह हौले–हौले पाँव रखता है। इस बार न जाने क्यों ऐसा लगता था कि आदमी आश्वस्त भी है.....और कुछ संभला हुआ चेतस भी। बीते दिनों जिस रास्ते पर वह अपनी पत्नी के साथ यूँ ही चला गया था..... वहाँ अब ज्यादा गाड़ियाँ थीं। लेकिन सड़क अब भी खूब खाली दिखाई देती। अगर दिल्ली वालों से कोई पूछ ले तो वह तपाक कह दे कि काश इतने ही वाहन आम दिनों में चला करें।

माधव अकेला था.....मगर उसके होठों पर हल्की सी मुस्कुराहट आ गई। मनुष्य कितना स्वार्थी प्राणी है! उसे जब गृहकैद मिलता है तो उसका दम घुटता है....साँसें फूलती हैं। वह भाग जाना चाहता है। जब गृहकैद से छुटकारा पाता है तो उसे भीड़ परेशान करती है। तब वह एक आदर्श जीवन की व्यवस्थाएं चाहता है। उसे दिल्ली में यूरोपीय शहरों की कामना होती है। काश.....इतने ही लोग होते....इतनी ही गाड़ियां चला करतीं! इसी विरोधाभास के साथ वह मयूर विहार से निज़ामुद्दीन पुल की ओर मुड़ गया। जैसे समय की रेख पर बहता जा रहा हो....कोई एक अदृश्य सत्ता उसे खींच रही हो। कोई बुला रहा हो कि आज इस रास्ते पर चलते चलो। वही रास्ते हैं....वही शहर है.....वही वृक्ष हैं। मगर कितने नए.....कितने सुन्दर कितने अनदेखे और प्रिय लगते हैं।

रास्ते नहीं बदलते। समय उन पर चलने वालों का नजरिया बदल देता है। वह निज़ामुद्दीन पुल को कब का पार कर चुका। उसकी कार अब दिल्ली–नोएडा फ्लाईवे के ऊपर चढ़ रही थी। यह सब बस होता जा रहा था। सड़क के दोनों ओर भागती हुई गाड़ियाँ थीं। अत्यंत लंबे ग्रहण के बाद सूरज चमका था। वह डीएनडी फ्लाइवे के बीच में आकर रुक गया। उसने अपनी कार सड़क किनारे खड़ी की। उतर कर पुल की रेलिंग के पास जा पहुँचा। यमुना बह रही थीं। पानी कम था। प्रवाह नियत। बीच में यहाँ–वहाँ घास के छोटे–छोटे टापू जैसे टीले उभर आए थे। दोनों तटों से दूर–दूर कुछ अट्टालिकाएं दिखलाई देती थीं। नदी आगे खत्म होती सी मालूम पड़ती। जैसे वहाँ.....उस धरती–आकाश के मिलन स्थल पर नदी भी मिलकर समाप्त हो रही हो।जबकि वह तो उसके आगे सैकड़ों मील तक बहती चली जा रही है। न जाने कितने शहरों.....कस्बों और गाँवों से होकर। उसके देखने की सीमा के परे.....उसका प्रवाह है। और वह देखता है कि नदी तो वहीं उस अम्बरान्त के निलय में प्रवेश कर रही। मनुष्य को अपने देखे का बड़ा दंभ होता है। अपनी विज्ञता का अक्खड़ विश्वास.....! और वह दंभ.... विश्वास एक मामूली से बवंडर में तिनके की तरह उड़ जाता है। फिर भी वह मानता है कि जो देख रहा.....वही सच है। धरती आकाश और नदियाँ जहाँ मिलते दिखाई देते हैं....वह कोई बिन्दु नहीं है। बस आभास होता है..... आभास के उस पार होता है अदृश्य.....अनुभूत संसार। जिसे हम छूने का भ्रम पालते हैं.....छू नहीं पाते।

***